QES

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

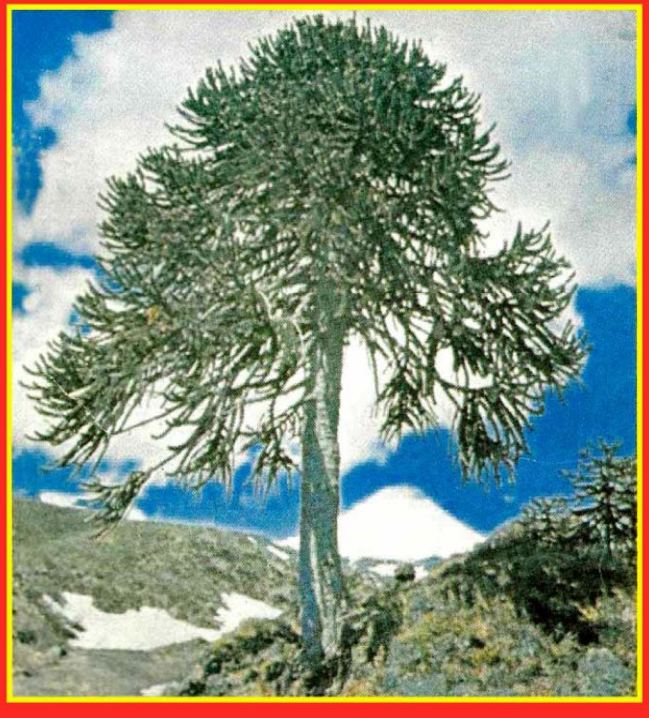

पर्यावरण अध्ययन

QES

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पर्यावरण अध्ययन

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक / समन्वयक

विषय समन्वयक

डॉ. नगेन्द्र भारद्वाज

प्रोफेसर एवं निदेशक

इन्दिरा गाँधी मानव पारिस्थिकी, पर्यावरण एवं जनसंख्या अध्ययन केन्द्र

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सदस्य सचिव / समन्वयक

डॉ. अशोक शर्मा

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,

कोटा

सदस्य

1. **डॉ. के. सी. शर्मा**
   प्रो. एवं अध्यक्ष, पर्यावरण अध्ययन विभाग
   महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर
2. **डॉ. जयमाला शर्मा**
   एसो. प्रो. प्राणीविज्ञान विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. **डॉ. अन्शु डाँडिया**
   एसो. प्रो., रसायन विज्ञान विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉ. पवन कसेरा**
   एसो. प्रो. वनस्पति विज्ञान विभाग
   जयनारायण व्यास वि. वि., जोधपुर
5. **डॉ. पुष्पा सांखला**
   प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

डॉ. नगेन्द्र भारद्वाज

प्रोफेसर एवं निदेशक

इंदिरा गांधी मानव पारिस्थिकी, पर्यावरण एवं जनसंख्या अध्ययन केन्द्र

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लेखक

1. **डॉ. के. सी. शर्मा**
   प्रो. एवं अध्यक्ष,
   पर्यावरण अध्ययन विभाग
   महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर
2. **डॉ. जयमाला शर्मा**
   एसो. प्रो., प्राणिविज्ञान विज्ञान
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. **डॉ. अन्शु डाँडिया**
   एसो. प्रो., रसायन विज्ञान विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय,
   जयपुर
4. **डॉ. पवन कसेरा**
   एसो. प्रो., वनस्पति विज्ञान विभाग
   जयनारायण व्यास वि. वि., जोधपुर
5. **डॉ. पुष्पा सांखला**
   प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, अजमेर
6. **डॉ. कल्पना शर्मा**
   प्रवक्ता रसायन विज्ञान विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
7. **डॉ. करुणा शोभावत**
   प्रवक्ता
8. **डॉ. मनोज यादव**
   प्रवक्ता वनस्पति विज्ञान विभाग
   राजकीय महाविद्यालय,
   अजमेर
9. **श्रीमती रेखा गुप्ता**
   कोटा
10. **डॉ. शेर मोहम्मद**
    प्रवक्ता वनस्पति विज्ञान विभाग
    लोहिया राजकीय महविद्यालय,
    चुरू
11. **डॉ. शुभ्रतो दत्ता**
    एसोसिएट प्रोफेसर, पर्या. अध्ययन विभाग
    महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर
12. **डॉ. लक्ष्मी ठाकुर**
    प्रोफेसर, जनसंख्या विभाग
    महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर
13. **नीशा जैन**
    प्रवक्ता प्राणी विज्ञान विभाग
    राजकीय महाविद्यालय, दौसा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. विनय कुमार पाठक	**प्रो. (डॉ.) बी. के. शर्मा**	**प्रो. पवन कुमार शर्मा**
कुलपति	निदेशक, संकाय विभाग	निदेशक, क्षेत्रीय सेवा विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

पुनः उत्पादन -फरवरी 2013 **ISBN No. : 13/978-81-8496-083-9**

इस सामग्री के किसी भी अंश की व.म.खु.वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है ।

पर्यावरण अध्ययन

इकाई सं.	इकाई	पृष्ठ सं.
1.	पर्यावरण (Environment)	9–19
2.	परिस्थितिकी - तंत्र (Ecosystem)	20–36
3.	परिस्थितिकी तंत्रों के प्रकार (Ecosystem Types)	37–50
4.	वन (Forest)	51–63
5.	जल (Water)	64–83
6.	खनिज सम्पदा (Mineral Resources)	84–98
7.	खाद्य (Food)	99–109
8.	ऊर्जा (Energy)	110–122
9.	भूमि (Land)	123–134
10.	जैव भौगोलिकी (Biogeography)	135–150
11.	जैव विविधतता (Biodiversity)	151–161
12.	वन्य एवं संरक्षण (Wildlife and Conservation)	162–175
13.	प्रदूषण (Pollution)	176–202
14.	ठोस कचरा तथा प्राकृतिक आपदाओं का प्रबन्धन (Solid Waste and Management Natural Disaster)	203–219
15.	जलवायु परिवर्तन (Climate Change)	220–240
16.	पर्यावरण कानून (Environmental Law)	241–252
17.	मानव जनसंख्या (Human Population)	253–268
18.	पर्यावरण सम्बन्धी आन्दोलन (Environmental Movement)	269–279

प्रस्तावना

पिछले कुछ दशकों में पारिस्थितिकी विज्ञान व पर्यावरण विज्ञान के अध्ययन को वैज्ञानिक दायरे में अधिक व्यापक रूप से समझा गया और पढ़ाया गया । विश्व में पर्यावरण, जीव - विविधता, संधृत विकास, पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरणीय विषाम्तीकरण आदि के कारण इस ओर ध्यान अधिक आकर्षित हुआ है । इन सबका समाधान केवल पारिस्थितिकी सिद्धांतों के अध्ययन के द्वारा ही संभव है । इस कारण पारिस्थितिकी विज्ञान और पर्यावरण विज्ञान की चर्चा जन- साधारण में होने लगी है । कुछ वैज्ञानिकों के प्रयासों के द्वारा इस विषय को विश्वविद्यालयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है, जो अब तक केवल विज्ञान संकाय तक ही सीमित था ।

माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश द्वारा सभी विश्वविद्यालयों के सभी संकायों के प्रथम वर्ष में पर्यावरण अध्ययन को अनिवार्य रूप से पढ़ाने के आदेश पारित किए गये, जिसके फलस्वरूप सभी विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रम में संशोधन कर इसे अनिवार्य रूप से पढ़ाने के निर्णय की क्रियान्विति के लिए कुछ विद्वानों की विशेष समिति के द्वारा हिन्दी में पाठ्यक्रम तैयार करवाकर उन पर विशेष सामग्री लिखवाकर संकलित किया । प्रस्तुत पुस्तक भी इस क्रम में एक प्रयास मात्र है । इसमें सरल एवं सरस भाषा का प्रयोग किया गया है जिससे ग्रामीण अंचल के विद्यार्थी आसानी से लाभान्वित हो सकें । विषय में स्थानीय उदाहरण देकर पाठ्य सामाग्री को रोचक बनाया गया है। आशा है, इसके द्वारा विद्यार्थी वर्ग लाभान्वित होगा । विशेष सामग्री संकलन में सभी बातों का पूर्णतया ध्यान रखा गया है, फिर भी कुछ त्रुटियों अवश्यम्भावी हैं । कृपया इन्हें हमारे ध्यान में लाने की कृपा करें ।

इकाई – 1

पर्यावरण

Environment

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 पर्यावरण

1.2.1 परिभाषा

1.2.2 पर्यावरण, अध्ययन की आवश्यकता

1.3 पर्यावरण से सम्बन्धित सिद्धान्त

1.4 पर्यावरण अध्ययन की बहु श्रेणिक प्रकृति एवं महत्व

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objective)

पर्यावरण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं उसके समग्र परिप्रेक्ष्य से समझने की कोशिश प्रस्तुत अध्याय में की गई है । इसी अध्याय में हम पर्यावरण अध्ययन की प्रकृति एवं महत्व की विवेचना करेंगे । साथ ही आप जान पायेंगे कि –

- विश्व में पर्यावरण चेतना जगाने व संरक्षण के लिए क्या क्या किया जा रहा है?
- कौन सी संस्थाऐं पर्यावरण संबंधी जानकारी व कार्य के लिये जिम्मेदार है?
- पर्यावरण संबंधी प्रमुख सिद्धान्त क्या हैं?
- पर्यावरण अध्ययन कैसे समाज के सभी वर्गो के लिए उपयोगी है?

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

पर्यावरण, यानि हमारें चारों ओर का परिवेश, जिसमें हवा, पानी, मिट्टी, प्रकाश, जलवायु, नदी, तालाब, पर्वत, पेड़-पौधें और जीव-जन्तु, सभी शामिल है । समस्त पृथ्वी पर एक जैसा भूगोल, जलवायु और वातावरण नहीं है और न ही एक जैसे पेड़ पौधे व जीव जन्तु हैं । मगर वे सब, सभी जगह कुछ खास रिश्तों में बंधे हैं । प्रकृति के नियम सभी जगह एक जैसे हैं । पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ सिद्धान्त भी हम इस अध्याय में पढ़ेंगे और यह भी कि कुछ पदार्थो की कमी या अधिकता कैसे जीवों को प्रभावित करती हे ।

पर्यावरण न केवल पर्यावरणविद् के जानने का विषय है बल्कि यह ऐसा विषय है जिसकी जानकारी सब के लिए आवश्यक है । इस जानकारी को प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाकर लगातार बिगड़ते जा रहे पर्यावरण को सन्तुलित रखा जा सकता है और विनाश को कम किया जा सकता है । आइये हम पर्यावरण के बारे में और अधिक जानें ।

1.2 पर्यावरण (Environment)

1.2.1 परिभाषा

"पर्यावरण उन समस्त जैविक व भौतिक कारकों का समग्र प्रभाव है जो सभी सजीवों को प्रभावित करते हैं ।"

इसमें वातावरणीय भौतिक व रासायनिक कारक जैसे जल, वायु, मृदा, प्रकाश, अग्नि, ताप, भौगोलिक स्थिति तथा जैविक कारक जैसे सूक्ष्म जीव, पेड़ पौधे और जीव जन्तु शामिल किए जाते हैं ।

1.2.2 पर्यावरण अध्ययन की आवश्यकता

विश्व के अधिकांश देशों में मानव-जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है । साथ-साथ ही तकनीकी विकास, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, यातायात के साधन भी बढ रहे है । बढ़ती जनसंख्या की भोजन, पानी, आवास व अन्य जरूरतें भी बढ़ रही हैं । साथ ही तेजी से बढ़ती तकनीकी वैज्ञानिक जानकारी के कारण मनुष्य का प्रकृति में हस्तक्षेप भी बढ़ रहा है । प्राकृतिक संसाधन घटते जा रहे हैं तथा प्रदूषण बढ़ रहा है । विश्व के विभिन्न देश विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हैं । हर देश शीघ्रातिशीर्ध विकसित देशों की श्रेणी में आ जाना चाहता है । विकास के साथ ही पर्यावरण सम्बन्धी समस्याऐं बढ़ रही है । विश्व की बडी आबादी को आज भी स्वच्छ जल व पर्याप्त भोजन तक उपलब्ध नहीं है । मानव के अत्यधिक हस्तक्षेप से जैव विविधता भी घटती जा रही है ।

सन् 1972 में स्टाकहोम में हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में हुए सम्मेलन में पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया गया तथा 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाने का आह्वान किया गया । इसके पश्चात् अनेक कार्यशालाऐं एवं सम्मेलन आयोजित किए जाते रहे हैं । जिनमें कुछ उद्देश्यों को लेकर चर्चा की गई तथा दिशा निर्देश बनाए गए तथा लक्ष्य तय किए गए । यूनेस्को के अनुसार आम जनता में पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता, ज्ञान, दृष्टिकोण एवं क्षमता विकसित की जानी चाहिए तथा उनकी पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने में भागीदारी होनी चाहिए । इसके लिए शिक्षा के सभी स्तरों तथा जीवन में पर्यावरण शिक्षा शामिल की जानी चाहिए । पर्यावरण की तत्कालीन स्थिति का लगातार आकलन करके चिन्हित किया जाना चाहिए एवं समस्याओं के प्रति जागरूकता व उनके निदान में जन सहयोग, राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग बनाए रखा जाना चाहिए । यह भी अनुशंसा की गई कि पर्यावरण अध्ययन शिक्षा की अभिगम बहुश्रेणिक (Multhidisciplinary) रखा जाए । पर्यावरण को सम्पूर्णता से अध्ययन करने के लिए उसके प्राकृतिक, कृत्रिम, तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, नैतिक एवं सौन्दर्यात्मक आदि पहलुओं पर गौर किया जाना चाहिए तभी पर्यावरण को बचाया जा सकता है ।

1.3 पर्यावरण से सम्बन्धित सिद्धान्त (Principles related to environment)

किसी भी पर्यावरण में एक जीव (Organism) को अपना अस्तित्व बनाने के लिए कुछ मूलभूत आवश्यकताऐं होती है । सामान्यतया जब तक सभी आवश्यकताऐं पूरी होती रहती हैं जीव की वृद्धि व प्रजनन चलता रहता है । जैसे ही कोई एक भी तत्व कम होने लगता है, यह वृद्धि प्रभावित होती है । ऐसी स्थिति में वह तत्व सीमाकारी कारक बन जाता है । यदि इस तत्व की कमी पूर्ति कर दी जाए तो पुन: सामान्य गति से वृद्धि व प्रजनन चलते रहते है जब तक कि किसी अन्य तत्व की कमी न हो जाए । ऐसी स्थिति में अब यह नया तत्व सीमाकारी कारक कहलाएगा । यही क्रम चलता रहता है ।

लीबिग का न्यूनतम का नियम

यह नियम जस्टस लीबिग द्वारा सन् 1980 में दिया गया था । उन्होंने अपने अध्ययन के दौरान पाया कि पौधें की वृद्धि उसे प्राप्य पदार्थो में जो तत्व सबसे कम मात्रा में उपस्थित होता है, पर निर्भर करती है । यदि केवल उस एक तत्व को छोडकर शेष सभी आवश्यक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपस्थित हों तब भी पौधे की वृद्धि उस एक न्यूनतम मात्रा वाले तत्व द्वारा नियंत्रित होती है ।

लीबिग का यह सिद्धान्त सभी कारकों के लिए सही हैं । मगर निम्न तथ्य भी इस नियम से जुड़े हैं-

1. यह लगातार बढ़ते तंत्र पर लागू होता है ।
2. हमेशा वही कारक सीमाकारी होगा, यह जरूरी नहीं है ।
3. कारकों की पारस्परिक अर्न्तक्रिया की भी इसमें भूमिका रहती है । सभी कारक एक दूसरे से भी प्रभावित होते हैं । इससे जीव की वृद्धि भी प्रभावित होती है ।
4. कभी कभी एक तत्व की कमी दूसरे तत्व द्वारा भी पूरी कर ली जाती है । जैसे कैल्शियम की कमी होने पर मोलस्का संघ के जीवों के कवच में कैल्शियम का स्थान स्ट्रांशियम ले लेता है। इसी तरह छाया में उगने वाले पौधे जिंक की कम मात्रा में भी काम चला लेते हैं, जबकि उसी जाति के धूप में उगने वाले पौधे नहीं चला पाते ।

ब्लैकमैन का नियम

एफ. एफ. ब्लैकमैन (1840) ने पाया कि किसी भी जीवन क्रिया की गति जीव को सीमाकारी मात्रा में मिल रहे भौतिक कारक पर निर्भर करती है । उदाहरण के लिए कार्बनडाईआक्साइड, प्रकाश, ताप आदि कारकों का उचित मात्रा में उपस्थित होना प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के लिए जरूरी है । यदि जरूरी कारकों में से किसी एक की मात्रा भी सीमित कर दी जाए तो प्रकाश संश्लेषण की दर निश्चित सीमा से अधिक तब तक नहीं बढ़ेगी जब तक कि उस कारक की मात्रा नहीं बढ़ाई जाए ।

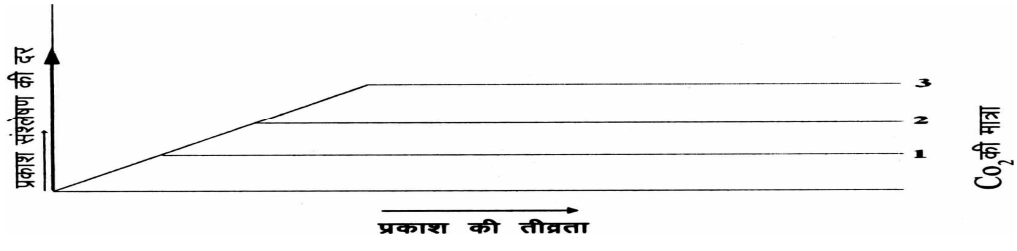

शैल्फोर्ड का सहनशीलता का नियम

वी. ई. शैल्फोर्ड ने 1913 में अधिकतम सीमा का नियम बनाया । शैल्फोर्ड ने पाया कि कोई भी आवश्यक तत्व या कारक यदि आवश्यकता से बहुत अधिक या बहुत कम मात्रा मेंउपलब्ध हो तो भी जीवों की वृद्धि तथा जनन पर बुरा प्रभाव पड़ता है ।

शैल्फोर्ड के अनुसार किसी भी जीव का जीवन बहुत सी स्थितियों के मिले जुले प्रभाव पर निर्भर करता है । किसी भी जीव की असफलता को उन बहुत से कारकों की मात्रात्मक या गुणात्मक कमी द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है जो उस जीव की सहनशीलता की सीमा तक उपस्थित हों ।

उन्होंने पाया कि किसी जैविक क्रिया के लिए भौतिक कारकों को सहन कर सकने की एक न्यूनतम और एक अधिकतम सीमा होती है । इन दोनों सीमाओं के बीच उस जैविक क्रिया की दर सर्वाधिक होगी । इसे ही "उपयुक्ततम सीमा" (Optimum Limit) कहते है ।

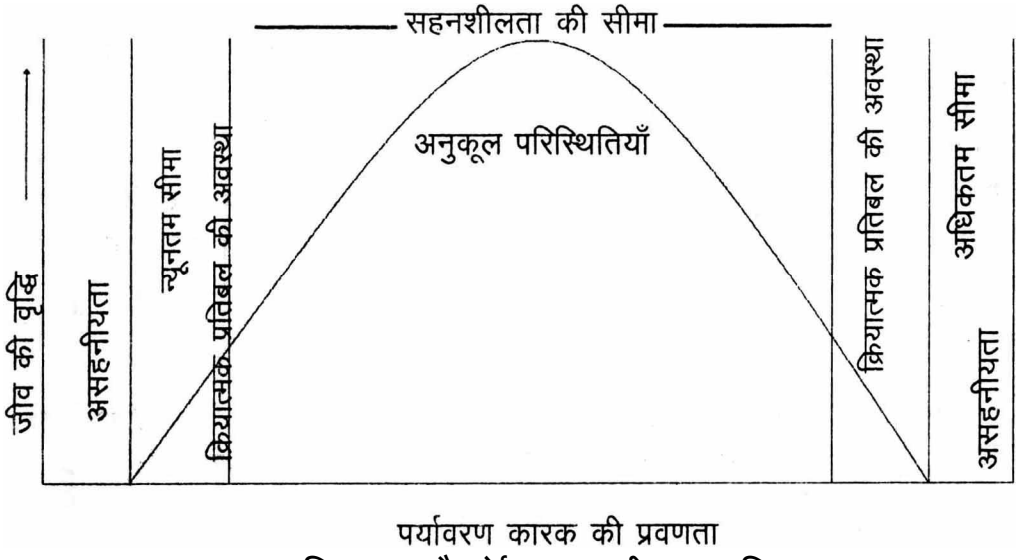

चित्र 1.2 : शैल्फोर्ड का सहनशीलता का नियम

यह भी जानना जरूरी है कि -

1. किसी प्राणी की एक कारक के प्रति सहनशीलता की सीमा बहुत अधिक तथा किसी अन्य कारक के प्रति बहुत कम हो सकती है ।
2. जिन जीवों की सहनशीलता अधिक होती है । उनका भौगोलिक प्रसार (distribution) अधिक होता है।
3. यदि किसी एक पारिस्थितिकीय कारक के प्रति स्थिति अनुकूल नहीं हो तो शेष पारिस्थितिकीय स्थिति की सहनशीलता की सीमा भी कम हो सकती है । उदाहरण के तौर पर जब मृदा में नाइट्रोजन सीमाकारी हो तो पौधों की सूखे के प्रति सहनशीलता कम हो जाती है ।
4. प्रकृति में प्राणी हमेशा अनुकूल परिस्थितियों तथा कारकों की उपयुक्ततम सीमा (Optimum range) में नहीं रहते है । अत: विभिन्न कारकों का महत्व बदलता रहता है ।
5. प्रजनन अवस्था में जीव तथा उनके शिशु या बीज इत्यादि की सीमाकारी कारकों के प्रति सहनशीलता वयस्कों की अपेक्षा कम होती है ।

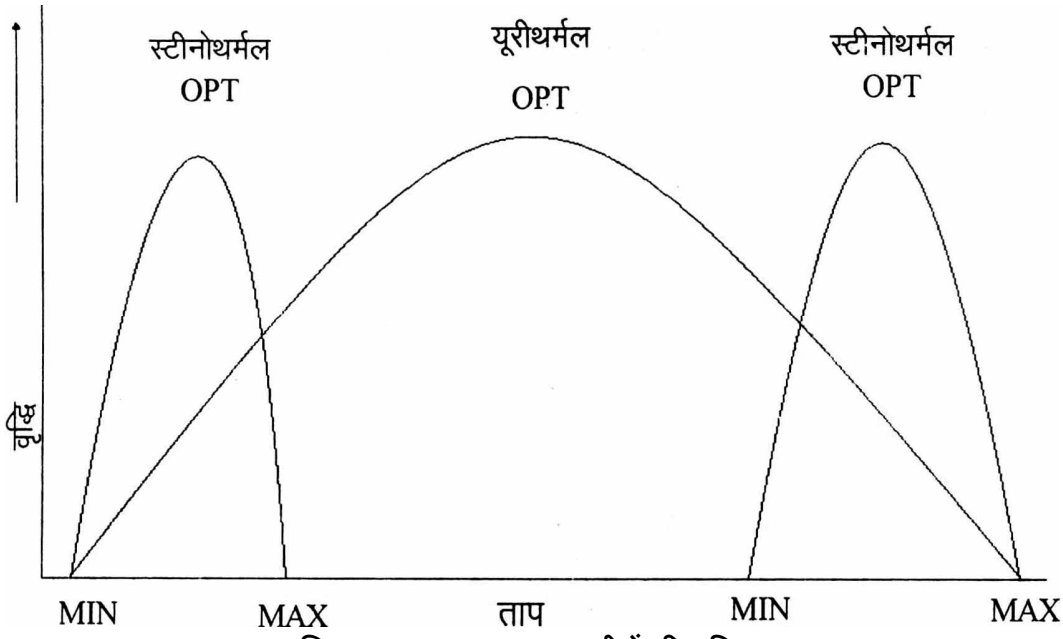

चित्र : 1.3 : तापमान का जीवों की वृद्धि पर प्रभाव

यदि उपरोक्त चित्र का ध्यान से अवलोकन करें तो पता चलता है कि तापमान किस तरह से जीवों की वृद्धि को प्रभावित करता है । कुछ जीव अधिक तापमान पर व कुछ कम तापमान पर वृद्धि करते है । कुछ जीवों की ताप सह सीमा बहुत कम होती है उन्हें स्टीनोथर्मल प्राणी कहते है । इसके विपरीत कुछ प्राणी तापमान में काफी विभिन्नता सहन कर सकते है ऐसे प्राणियों को यूरीथर्मल कहा जाता है ।

बोध प्रश्न

1. किसी सीमाकारी कारक की अधिकतम व न्यूनतम सीमा के मध्य की रेन्ज क्या कहलाती है?

---

2. कौन सा कारक समान्यतया सीमाकारी होता है ?

---

3. पृथ्वी सम्मेलन कहाँ और कब हुआ ?

---

4. विश्व पर्यावरण दिवस कब मनाया जाता है ?

1.4 पर्यावरण अध्ययन की बहुश्रेणिक प्रकृति (Multidisciplinary nature of Environmental studies)

जैसा कि स्टाकहोम में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन तथा उसके बाद कई आयोजनों में तथा 1992 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा रियो-डि-जेनेरियो (ब्राजील) में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन में तय किया गया था कि पर्यावरण अध्ययन को केवल पर्यावरणविदों व वैज्ञानिकों के अध्ययन का विषय न रखकर सभी लोगों को इसकी शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि अधिकतम लोगों की भागीदारी पर्यावरण संरक्षण हेतु सुनिश्चित हो सके ।

पर्यावरण मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है । प्रागऐतिहासिक काल से ही मानव में तकनीकी क्षमताओं व कलाओं का विकास प्रारंभ हो चुका था । प्राचीन मानव द्वारा बनाए औजारों, शैल चित्रों, मूर्तियों व भवनों से पता चलता है कि मानव अपने परिवेश से ही प्रेरणा लेता रहा है । वह जीव जन्तुओं के व्यवहार से भी शिक्षा लेता रहा है । प्रकृति की ध्वनियों से ही उसने संगीत सीखा तथा राग-रागनियों की रचना की । चिड़ियों का करलव, उनका व्यवहार, झरने की कलकल ध्वनि, समुद्रों की गर्जन, सूखे पत्तों की चरमराहट, पेड़ों की सरसराहट सभी ने उसे विभिन्न ध्वनियों का ज्ञान कराया । चित्रकारों की प्रेरणा भी प्रकृति ही रही है ।

पेड़ पौधे व जन्तु चूँकि मानव जीवन का अभिन्न अंग रहे हैं । उसके द्वारा निर्मित चित्रों मृद्भांडों, मूर्तियों, मंदिरों में तत्कालीन जीवों की झलक मिलती है । इसी तरह जीवों की संरचना व क्रिया कलापों का अध्ययन जिसे जीव विज्ञान कहा जाता है, भी पर्यावरण के अध्ययन में उपयोगी है । मनुष्य का सामाजिक इतिहास, राजनैतिक सोच, नैतिक विचारधारा एवं इतिहास सभी कुछ उसके परिवेश से प्रभावित रहा है । उसका सौन्दर्य बोध भी प्रकृति से ही प्रेरित होता आया है । अत: सभी विषयों के अध्येताओं के लिए पर्यावरण अध्ययन उपयोगी है । किसी स्थान की भूआकृति (Topography) के अध्ययन हेतु भूगर्भशास्त्र (Geology) तथा भूगोल (Geography) की जरूरत पड़ती है । मौसम विज्ञान (Meteorology) में मौसम का, पर्यावरण के भौतिक घटकों के अध्ययन के लिए भौतिकी (Physics) का, रासायनिक घटकों के अध्ययन के लिए रसायन शास्त्र (Chemistry) का व जैविक घटकों के अध्ययन के लिए जीव विज्ञान (Biology) का ज्ञान जरूरी है । इसी तरह यदि आपको जीवों का क्रमवार वैज्ञानिक अध्ययन करना हो तो वर्गिकी (Taxonomy) का ज्ञान जरूरी है ।

पर्यावरण अध्ययन (Environmental Studies) के अन्तर्गत पर्यावरण सम्बन्धी अनियमितताओं तथा समाज के जागरण के द्वारा उनका प्रभाव न्यूनतम करने का प्रयास किया जाता है ।

पर्यावरण विज्ञान (Environmental Science) के अन्र्तगत पर्यावरण के 'भौतिक व जैविक कारकों को हो रही हानि तथा सुरक्षित व स्वस्थ वातावरण रखने का वैज्ञानिक तरीकों से अध्ययन किया जाना है ।

पर्यावरण अभियांत्रिकी (Environmental Engineering) में प्रदूषण का मापन एवं उसको न्यूनतम रखने की तकनीको का अध्ययन किया जाता है ताकि पर्यावरण पर प्रदूषण का प्रभाव न्यूनतम पड़े ।

मानव ने पर्यावरण पर बहुत प्रभाव डाला है । पर्यावरण को भलि भांति समझने हेतु कृषि (Agriculture), खनन (Mining), अभियांत्रिकी (Engineering), वानिकी (Forestry), विधि (Law), समाजशास्त्र (Sociology), सूक्ष्मजीव विज्ञान (Microbiology) तथा अर्थशास्त्र (Economics) के अध्ययन की आवश्यकता होती है । इसी तरह हरेक विषय के विशेषज्ञ को भी पर्यावरण की जानकारी होनी चाहिए । तभी पर्यावरण संरक्षण के प्रत्येक पहलू पर विचार हो सकता है ।

पर्यावरण अध्ययन का क्षेत्र व परिधि अत्यंत व्यापक है और यह एक बहुआयामी विषय है जिसका जीवन में वृहद उपयोग है ।

इसे एक उदाहरण के जरिये समझने की कोशिश करते है । एक किसान खेती करता है । खेत बनाने, जोतने, सफाई, निराई गुड़ाई करते वक्त वह असंख्य पेड़-पौधों व जीवों(जैव-विविधता) को नष्ट कर देता है । फसल बोते व उगाते समय वह एक ही प्रजाति के बहुत से पौधे उस स्थान पर उगाता है । फसल को रोगों व खरपतवार से बचाने के लिए रासायनिक पदार्थो (खरपतवार व कीटनाशकों) का प्रयोग करता है । पौधों की वृद्धि के लिए खेत में रासायनिक खाद भी डालता है । खेत में पानी डालने के लिए सिंचाई के साधनों की जरूरत होती है । खेत जोतने के लिए पशु या तकनीकी साधनों का इस्तेमाल होता है । ट्रेक्टर में डीजल व खेती के उपकरणों को चलाने के लिए बिजली का उपयोग भी करता है । मानव की इस एकमात्र गतिविधि से अनेक चीजें जुड़ी है । फसल को मंडी ले जाकर बेचेगा । कर चुकाएगा । फसल बेचने से प्राप्त धन से अपनी दैनिक उपयोग की वस्तुऐं खरीदेगा । इस तरह उन वस्तुओं के व्यापार व अंततः उत्पादन पर प्रभाव पड़ेगा । इस प्रकार उसकी स्वयं की, उस स्थान की और अंततः सम्पूर्ण देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित होगी ।

मनुष्य की अनेक गतिविधियाँ पर्यावरण पर प्रभाव डालती है । गाँवों और शहरों का बसना, सड़कें, खेत, नहरें, बाँध, औद्योगिक ईकाइयाँ, वाहन, लगभग सभी पर्यावरण को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं । मानवीय गतिविधियाँ पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं को नष्ट करती हैं । साथ ही पर्यावरण में अवांछनीय तत्वों की मात्रा बढ़ रही है जिसे प्रदूषण कहते है । चूंकि मानव अपनी सभी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर ही निर्भर है । अतः यह मानव के हित में है कि वह प्रदूषण बढ़ने से रोके और पर्यावरण के बारे में पर्याप्त जानकारी रखे ताकि पर्यावरण को हानि पहुँचाए बगैर जीवनयापन होता रहे ।

प्राकृतिक उत्पादों या उनसे बनी वस्तुओं का व्यापार करने वाले लोगों के लिए पर्यावरण की समझ होना जरूरी है । इससे उन्हें अपने रोजगार से जुडे विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद मिलती है ।

अच्छा स्वच्छ पर्यावरण न केवल मनुष्य अपितु अन्य जीवों को भी मानसिक व शारीरिक रूप से स्वास्थ्य रखता है । पर्यावरण शिक्षा के महत्व को देखते हुए देश का मानव संसाधन व पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, कई अर्न्तराष्ट्रीय संस्थाऐं एवं स्वयं सेवी संस्थाऐं इस क्षेत्र में कार्यरत है । पर्यावरण संरक्षण हेतु कार्यरत कुछ संस्थाऐं एवं महत्वपुर्ण आयोजन निम्न हैं ।

स्टाकहोम में 1972 में आयोजित सम्मेलन की संस्तुति से संयुक्त राष्ट्रसंघ पर्यावरण प्रोग्राम (UNEP) की स्थापना की गई ।

पर्यावरण शिक्षा पर एक कार्यशाला "द बेल्ग्रेड चार्टर" बेल्ग्रेड (यूगोस्लाविया) में 1975 में यूनेस्को द्वारा आयोजित की गई । बाद में पर्यावरण शिक्षा पर यूनेस्को व UNEP ने Tbilisi, USSR में 1977 में अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन हुआ । इन दोनों में स्टाकहोम सम्मेलन में तय किए लक्ष्यों को पूरा करने की कोशिश की गई ।

संयुक्त राष्ट्र संघ की 3 से 14 जून 1992 को रियो-डी-जेनेरियो (ब्राजील) में आयोजित सम्मेलन में पर्यावरण एवं विकास से सम्बन्धित उद्देश्यों पर चर्चा की गई । तथा "अर्थ चार्टर" बनाया गया । इसमें "कॉमन फ्यूचर" के लिए लोगों व देशों के आर्थिक व पर्यावरण सम्बन्धी व्यवहार हेतु मूल सिद्धान्त तय किए गए । जिसे आचरण संहिता भी कहा गया ।

इसमें समानता के सिद्धान्त पर जोर दिया गया तथा माना गया कि भूत काल में की गई भूलों को वर्तमान में सुधारा जा सकता है तथा भविष्य की चिन्ता करना हमारी जिम्मेदारी है । यह भी माना गया कि विकसित एवं विकासशील देशों की प्राथमिकताएँ तथा उद्देश्य भिन्न-भिन्न है । इसमें अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार नीति, तकनीकी उपलब्धियाँ, जीवनस्तर में असमानताऐं, प्रदूषण इत्यादि अनेक विषयों पर चर्चा होना जरूरी समझा गया ।

उन सभी मुख्य विषयों जो कि पर्यावरण व अर्थ व्यवस्था को आगामी दशकों में प्रभावित कर सकते हैं पर कार्य योजना का खाका बनाया गया जिसे 'एजेण्डा – 21' कहा गया ।

इसके अतिरिक्त भी अन्य कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए "Save the Earth" इस सम्मेलन का नारा रहा । चार प्रमुख दस्तावेज बनाना स्वीकार किया गया ।

(1) Draft Earth Charter
(2) Convention on Climate change and biodiversity
(3) Convention on forestry
(4) Agenda -21 or action plan.

ऐसा नहीं है कि इस बीच (1972–1992) में और बाद में कुछ नहीं हुआ । 1983 में संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा ने "पर्यावरण पर वैश्विक आयोग" बनाया जिसे तत्कालीन पर्यावरण की स्थिति व वर्ष 2000 के बाद क्या होगा पर रिपोर्ट देनी थी । इस आयोग ने "हमारा साझा भविष्य"(Our Common Future)नाम से अपनी रिपोर्ट दी ।

ओजोन परत क्षीणन, ग्लोबल वार्मिग, ग्रीन हाउस प्रभाव तथा प्रदूषण मुद्दों पर भी समय समय पर चर्चा की जाती रही है । विश्व पर्यावरण दिवस प्रतिवर्ष 5 जून को मनाया जाता है । 1992 में इस दिन डॉ. टोल्बा ने "Care and Share" को 1992 की थीम बनाया । उनके अनुसार लोग पर्यावरण की Care जरूर करते है मगर यह नहीं जानते कि इससे जुड़े मुद्दों को Share कैसे किया जाए ।

जीन कैंपेन (Gene Campaign)

यह एक संस्था है जो विकासशील देशों के कृषकों के हितों व विश्व के जेनेटिक रिसोर्सेज की रक्षा के लिए काम करती है । इन्होंने जीन पेटेन्टिंग की शर्तो का विरोध किया ।

डुंकेल ड्राफ्ट (Dunkel Draft)

यह GATT अनुबंधों का हिस्सा है । इसके अनुसार कुछ देश जीवों के जेनेटिक वैराइटीज को भी पेटेन्ट करवा लेने के पक्ष में थे । इसमें अन्य देशों के किसानों को बहुत नुकसान होता ।

ग्रीन फण्ड (Green Fund)

41 विकासशील देशों ने जून 1991 में बीजिंग (चीन) में पर्यावरण संबंधी मुद्दों के लिए पर्याप्त धन जुटाने हेतु नए फण्ड की स्थापना की ।

विश्व पर्यावरण सुविधा (Global Environmental Facility)

यह सुविधा भी विकासशील देशों के धन उपलब्ध कराने हेतु "एजेण्डा–21" में जोड़ी गई । पर्यावरण के क्षेत्र में काम करने वाली प्रमुख संस्थाऐं निम्न है –

Environmental Protection Agency (EPA)

यह संस्था अमरीकी सरकार द्वारा 1970 में स्थापित की गई । इसका उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण है ।

United Nations Environment Programme (UNEP)

यह संयुक्त राष्ट्र की एक संस्था है जिसे पर्यावरण मॉनीटरिंग व संरक्षण हेतु 1972 में स्थापित किया गया । इसका प्रधान कार्यालय नैरोबी (कीनिया) में है ।

Earthscan

यह UNEP द्वारा 1976 में स्थापित की गई । यह पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दों पर निबंध, लेख इत्यादि समाचार पत्रों व पत्रिकाओं को उपलब्ध करवाती है ।

International Union for Conservation of Nature and Natural Resources (IUCN)

यह एक स्वयंशासी संस्था है जिसकी स्थापना 1948 में हुई थी । यह स्विजरलैण्ड में है तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए अन्य संस्थाओं से मिलकर काम करती है ।

World wide fund for Nature (WWF)

यह भी पर्यावरण संरक्षण क्षेत्र में काम कर रही स्वशाषी संस्था है ।

Earthwatch Programme

पर्यावरण मॉनिटरिंग हेतु 1972 में बनाया गया । UNEP द्वारा संचालित है ।

Project Earth

इसके अन्तर्गत युवाओं को पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न मुद्दों पर प्रेरित एवं शिक्षित किया जाता है । UNEP के साथ मिलकर काम करता है ।

Main and Biosphere Programme (MAB)

यह यूनेस्को द्वारा 1971 में प्रारंभ किया गया । इसके अन्तर्गत 14 प्रोग्राम विभिन्न देशों में चल रहे है ।

पर्यावरण की दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण दिवस

पृथ्वी दिवस (Earth day)	–	22 अप्रेल
विश्व पर्यावरण दिवस (World Environment day)	–	5 जून
विश्व वन दिवस (World Forestry day)	–	21 मार्च

वन्य जीव सप्ताह (Wildlife week)	–	1 अक्टूबर से 7 अक्टूबर
विश्व नम भूमि दिवस (World Wetland day)	–	2 फरवरी
ग्रीन उपभोक्ता दिवस (Green Consumer day)	–	28 सितम्बर
विश्व जनसंख्या दिवस (World Population Days)	–	11 जून

1.5 सारांश (Summary)

पर्यावरण उन समस्त जैविक व भौतिक कारकों का समग्र प्रभाव है जो सभी सजीवों को प्रभावित करते है । स्वच्छ पर्यावरण मानव स्वास्थ्य और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जरूरी है ।

लीबिग, ब्लैकमैन और शैल्फोर्ड के नियम सीमाकारी कारकों के सिद्धान्त के बारें में बताते हैं । इनके अनुसार किसी जीव को न्यूनतम मात्रा में उपलब्ध कारक सर्वाधिक प्रभावित करता है । मगर जीव की किसी कारक को सहने करने की एक न्यूनतम व एक अधिकतम सीमा होती है । इन दोनों के मध्य कहीं उपयुक्ततम सीमा होती है ।सीमाकारी कारक तत्व या भौतिक कारक हो सकते है ।

पर्यावरण का अध्ययन सभी क्षेत्रों में जरूरी है । पर्यावरण संरक्षण में प्रत्येक का योगदान मिले इसलिए सभी को पर्यावरण की जानकारी जरूरी है । पर्यावरण अध्ययन की प्रकृति बहु श्रेणिक है । प्रत्येक विषय में पर्यावरण अध्ययन की जरूरत है तथा पर्यावरणविद् को भी सभी विषयों की जानकारी जरूरी है । इस क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर जागरूकता बढाने हेतु अनेक संस्थाऐं काम कर रही हैं ।

1.6 शब्दावली(Glossary)

पर्यावरण है जो सभी	–	पर्यावरण उन समस्त जैविक व भौतिक कारकों का समग्र प्रभाव सजीवों को प्रभावित करते है ।
प्रदूषण का दूषित	–	अवांछित व हानिकारक तत्वों की उपस्थिति के कारण वातावरण होना ।
सीमाकारी कारक सर्वाधिक प्रभावित	–	वह कारक जो किसी जीव की वृद्धि को उस समय विशेष पर करता है सीमाकारी कारक कहलाता है ।
उपयुक्ततम सीमा उपयुक्ततम सीमा	–	वह सीमा जिसमें किसी जीव की वृद्धि व जनन अधिकतम हो कहलाती है ।

1.7 संदर्भ गन्थ (References)

1. E.P. Odum - Fundamentals of Ecology
2. R.L. Smith - Ecology and Field Biology
3. हरिश्चन्द्र भारतीय एवं अरविन्द भाटिया – परिचयात्मक पर्यावरण जैविकी

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. उपयुक्ततम सीमा
2. जो उस समय न्यूनतम मात्रा में उपस्थित हो
3. स्टाकहोम, 1972 में

4. 5 जून को

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पर्यावरण क्या है? इसकी परिभाषा लिखिए ।
2. सीमाकारी कारकों की अवधारणा क्या है ?
3. पर्यावरण की बहुश्रेणिक प्रवृति से आप क्या समझते हैं ?
4. शैल्फोर्ड के सहनशीलता के नियम का सचित्र वर्णन करो ।
5. लीबिग के न्यूनकारी सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं ?
6. पर्यावरण संरक्षण की क्या आवश्यकता है ?
7. ब्लैकमैन के नियम को समझाइए ।

इकाई – 2

पारिस्थितिकी–तंत्र

Ecosystem

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 पारिस्थितिकी तंत्र

- 2.2.1 पारिस्थितिकी तंत्र की अवधारणा
- 2.2.2 पारिस्थितिकी तंत्र के घटक
- 2.2.3 खाद्य श्रृंखला एवम् खाद्य जाल
- 2.2.4 पारिस्थितिकी तंत्र में पोषण स्तर
- 2.2.5 पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह
- 2.2.6 पारिस्थितिकी स्तूप (पिरामिड)
- 2.2.7 जैव भू–रासायनिक चक्र

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 संदर्भ ग्रन्थ

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2. उद्देश्य (Objective)

किसी भी स्थान के वातावरण के अध्ययन के लिए जरूरी है कि वहाँ के जैविक एवं भौतिक कारकों और उनके अर्न्तसम्बन्धों का अध्ययन किया जाए । इस अध्याय में हम पारिस्थितिकी तंत्र की अवधारणा व इसके विभिन्न घटकों तथा कार्यो के बारे में जानेंगे । इस अध्याय में हमें यह भी पता चलेगा कि –

- कैसे जीवन विभिन्न भौतिक कारकों व तत्वों से प्रभावित होता है ?
- प्रकृति में विभिन्न जीवनोपयोगी तत्व कैसे वातावरण व जैविक चक्र से गुजरते हुए पुन: अपनी मूल अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं?
- पारिस्थितिकी तंत्र में विभिन्न घटकों का तालमेल कैसे होता है?

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

पूर्व इकाई में आप पर्यावरण के बारे में परिचय प्राप्त कर चुके हैं । पर्यावरण जैव मण्डल पर पाये जाने वाली वनस्पति व प्राणियों को प्रभावित करता है और सभी वनस्पति व प्राणी पर्यावरण के घटकों को प्रभावित कर एक तन्त्र की तरह कार्य करते हैं, जिसे सर्वप्रथम ए.जी. टेन्स्ले ने (1935)

पारिस्थितिकी तंत्र कहा । इस तंत्र की संरचना व कार्यो के बारें में जानना पर्यावरण को समझने के लिए आवश्यक है ।

2.2 पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem)

पारिस्थितिकी तंत्र पारिस्थितिकी की इकाई है । सम्पूर्ण जैवमण्डल पर अनेक प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र पाए जाते हैं जिनके सभी घटक परस्पर संबंधित रहते हैं । यहाँ हम पारिस्थितिकी तंत्र की सामान्य संरचना एवं कार्यो का अध्ययन करेंगे ।

2.2.1 पारिस्थितिकी तंत्र की अवधारणा

जरा निम्न चित्र को ध्यान से देखिए यह पृथ्वी की काट का चित्र है ।

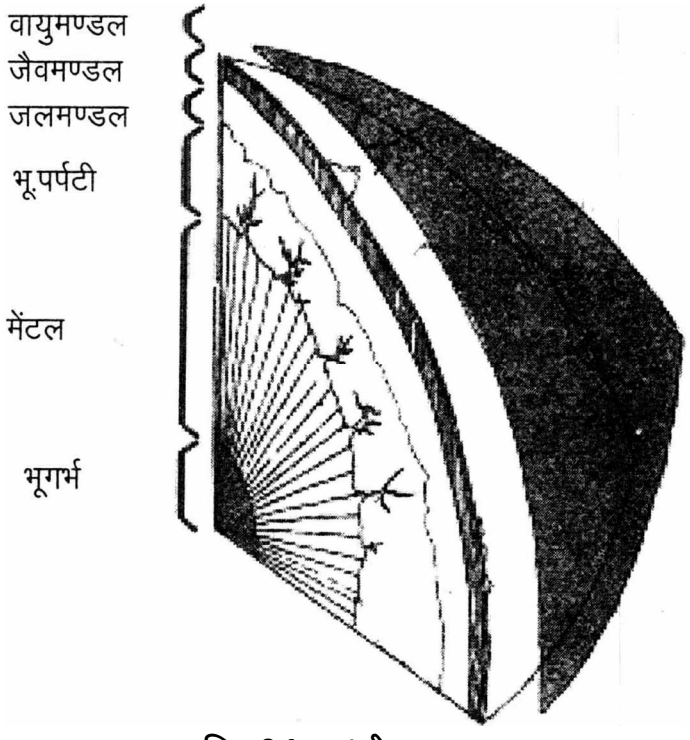

चित्र 2.1 : पृथ्वी का काट

पृथ्वी का वह भाग जिस पर जीवित प्राणी रहते हैं वह बायोस्फीयर या जैवमण्डल कहलाता है । यह समुद्र के तल से लेकर वायुमंडल तक फैला है । यह अनेक छोटी छोटी क्रियात्मक इकाईयों से बना होता है जिन्हें पारिस्थितिकी तंत्र **(Ecosystem)** कहा जाता है । जैसे वन, घास का मैदान, झील, समुद्र इत्यादि पारिस्थितिकी तंत्र के कुछ प्रकार हैं । पृथ्वी पर अनेक प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र पाए जाते हैं जिनमें से कुछ के बारे में हम आगामी अध्याय में पढ़ेंगे ।

जैव मण्डल के तीन अजैविक घटक हैं :–

(i) भूमि (भूमण्डल या लिथोस्फीयर)

(ii) जल (जलमण्डल या हाइड्रोस्फीयर)

(iii) वायु (वायुमण्डल या एटमोस्फीयर)

इन्हीं तीनों के संयोग से पृथ्वी पर जीवन है । पृथ्वी की सतह पर उपस्थित चट्टानें पत्थर व मिट्टी इत्यादि भूमण्डल कहलाते हैं ।

पृथ्वी की 73 प्रतिशत सतह जल से ढकी है । पृथ्वी का वह भाग जो जल से ढका रहता है, जलमण्डल कहलाता है ।

पृथ्वी के चारों ओर का गैसीय आवरण वायुमण्डल कहलाता है ।

यही तीनों भू जल एवं वायुमण्डल जैव मण्डल के अजैविक (Abiotic) घटक हैं । इसी तरह पृथ्वी पर उपस्थित सूक्ष्मजीव, पादप तथा जन्तु जैवमण्डल के जैविक घटक कहलाते हैं । जैवमण्डल के दोनों प्रकार के घटक परस्पर निर्भर रहते हैं ।

अजैविक घटकों को अकार्बनिक, कार्बनिक एवं जलवायवीय घटकों में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1935 में टेन्सले ने किया था । पारिस्थितिकी तंत्र के अन्तर्गत वातावरण के जैविक व भौतिक कारक जिन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है ।

पारिस्थितिकी तंत्र में समस्थिरता और पुर्नभरण के गुण पाए जाते है । इसमें समाविष्ट तत्वों के सैट विभिन्न प्रावस्थाओं में पाए जाते है ।

पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा मुख्यत: सौर ऊर्जा से प्राप्त होती है । खाद्य पदार्थो का उत्पादन होता है यही खाद्य पदार्थ पारिस्थितिकी तंत्र के जीवों का भोजन बनकर उन्हें पोषण प्रदान करता है । पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह होता है । खनिज तत्वों से कार्बनिक पदार्थो का निर्माण होता है तथा अंत में सभी पदार्थ अपघटित होकर पुन: खनिज तत्वों में परिवर्तित हो जाते है । यही चक्र चलता रहता है ।

आइऐ! इसे हम एक उदाहरण के द्वारा समझने की कोशिश करें । एक गाजर के खेत में गाजर उगाऐं । उसे सब ओर से संरक्षित रखें । अब उसका उत्पादन ज्ञात करें । इसी तरह प्रायोगिक स्थिति में एक जोड़ा खरगोश रखें और उनका भी उत्पादन (संतति) ज्ञात करें । दोनों की उत्पादकता अजैविक घटकों पर निर्भर है । अब एक बड़ा संरक्षित गाजर का खेत चुनें तथा उसमें एक जोड़ा खरगोश छोड़ दें । उतने ही समय बाद दोनों की उत्पादकता ज्ञात करने पर यह अलग- - अलग किए गए अध्ययन से पूर्णत: भिन्न होती है । क्यों ?

प्रारम्भ में गाजरों की संख्या अधिक होती है । मगर जैसे जैसे खरगोशों की संख्या बढ़ेगी वे अधिक गाजर खायेंगे । एक निश्चित संख्या से अधिक हो जाने पर उनकी भोजन आवश्यकता गाजर के खेत के उत्पादन से अधिक हो जायेगी । अब इस हाल में दो सभावनाऐं बनेंगी -

(i) गाजरों की मात्रा शेष सभी स्थितियाँ पूर्ववत रहने पर भी कम होती जाएगी ।

(ii) खरगोशों को भरपेट भोजन नहीं मिलने से बहुत से खरगोश मर जाऐंगे जबकि बहुत से खरगोश बीमार होने से उनकी प्रजनन क्षमता कम हो जाऐगी । इस तरह खरगोशों की संख्या घट जाऐगी।

अधिकांश पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक रूप से पाए जाते है इन्हें प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र कहा जाता है । कुछ तंत्र जैसे पार्क, बगीचे, खेत, तालाब, झीलें, नहरें इत्यादि मानव निर्मित होते है इन्हें कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र कहा जाता है ।

ओडम के अनुसार "पारिस्थितिकी तंत्र पारिस्थितिकी की वह आधारभूत इकाई है, जिसमें जैविक व अजैविक वातावरण एक दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हुए पारस्परिक अनुक्रिया से ऊर्जा और रासायनिक पदार्थो के निरन्तर प्रवाह से तंत्र की कार्यात्मक गतिशीलता बनाए रखते है"

बोध प्रश्न A

1. पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषा लिखिए ।

---

2. जैव मण्डल किसे कहते हैं?

---

3. जैवमण्डल के कितने अजैविक घटक हैं? उनके नाम लिखिए ।

2.2.2 पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना

किसी भी सन्तुलित पारिस्थितिकी तंत्र में दो प्रमुख घटक होते हैं

(A) अजैविक घटक -- यह तीन प्रकार के होते हैं ।

(a) अकार्बनिक पदार्थ

(b) कार्बनिक पदार्थ

(c) भौतिक वातावरण

(B) जैविक घटक - इसमें जीवित पादप, सूक्ष्मजीव व प्राणियों को सम्मिलित किया जाता है । ये भी तीन प्रकार के होते हैं ।

(a) उत्पादक या स्वपोषी

(b) उपभोक्ता

(c) अपघटक या विघटनकारी

सबसे पहले हम अजैविक घटकों के बारे में जानेंगे ।

अकार्बनिक पदार्थ

ये वातावरण में सदैव गतिशील स्थिति में रहते हैं मगर इनकी कुल मात्रा लगभग स्थिर बनी रहती है । जीव मुख्यतया कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन एवं नाईट्रोजन से बने होते है । फास्फोरस, कैल्शियम, मैगनीशियम, सोडियम, पोटेशियम तथा लोहा भी जीवों की क्रियाओं व संरचना में महत्वपूर्ण

है । कई अन्य तत्व भी सूक्ष्म मात्रा में जीवों में उपस्थित होते है । सभी खनिज तत्व एक निश्चित चक्र से गुजर कर पुन: उसी स्थिति में आ जाते है । इन्हें पोषक तत्व भी कहा जाता है ।

वायुमण्डलीय गैसें भी जीवधारियों को प्रभावित करती हैं । वायुमण्डल में 79% नाइट्रोजन 20% आक्सीजन तथा 0.03% कार्बनडाईआक्साइड तथा शेष अन्य गैसें होती हैं । इन तीनों गैसों की मात्रा जीवों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । हाईड्रोजन आयन की सांद्रता या pH मान भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है । 0 से 14 तक की pH अम्लीय से उदासीन होते हुए क्षारीय होती है । pH-7 उदासीन होती है ।

कार्बनिक पदार्थ

कार्बनिक पदार्थ तीन प्रमुख तत्वों कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन व अन्य तत्वों के मेल से बनते हैं । यह जीवों के शरीर निर्माण व क्रियाओं में भाग लेने के अतिरिक्त वातावरण का भी एक हिस्सा है । इनमें कार्बोहाइड्रेट्स, लिपिड, प्रोटीन इत्यादि है । पर्णहरित, हीमोग्लोबिन, न्यूक्लीक अम्ल इत्यादि कार्बनिक पदार्थ हैं ।

भौतिक वातावरण या जलवायवीय कारक

भौतिक कारकों में तापमान, प्रकाश की उपलब्धता, जल की गुणवत्ता व मात्रा, वर्षा वायुमण्डल की आर्द्रता व मृदा का प्रकार महत्वपूर्ण है । हवा का दबाव व प्रवाह तथा जल प्रवाह व वायुमण्डलीय दवाब भी महत्वपूर्ण होते हैं ।

हम सभी जानते है कि पृथ्वी की जलवायु सम्पूर्ण क्षेत्र में एक जैसी नहीं है । सभी जलवायवीय कारक अलग–अलग स्थानों पर भिन्न–भिन्न मात्रा में होते हैं । उदाहरण के तौर पर तापमान को ही लें । ध्रुवीय एवं अन्य कई प्रदेश इतने ठण्डे होते है कि हमेशा बर्फ. जमी रहती है जबकि अन्य कई प्रदेश बहुत ज्यादा गर्म होते हैं । जीव तापमान की एक निश्चित सीमा ही सहन कर पाते हैं । इस सीमा से अधिक या कम होने पर वे मर जाते हैं । सामान्यतया यह सीमा 10–48° से. है । ताप जीवों की उपापचयी क्रियाओं, वृद्धि, विकास प्रजनन, व्यवहार यही तक कि वितरण को भी प्रभावित करता है ।

इसी तरह सूर्य का प्रकाश भी जीवों के उपापचय, शरीर के रंग, रचना, प्रजनन, वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करता है । स्वपोषी पौधों द्वारा प्रकाश की उपस्थिति में बनाये गये कार्बनिक पदार्थ ही लगभग सभी जीवों की खाद्य आवश्यकता की पूर्ति करते हैं । प्रकाश की अवधि व तीव्रता भी जीवों की क्रियाओं और क्रमिक गतियों को प्रभावित करती है । हम सभी जानते है कि कैसे फूलों का खिलना प्रकाश पर निर्भर करता है ।

जल

जल भी प्रमुख कारक है जो एक पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करता है । जल की विशिष्टता इसके भौतिक व रासायनिक गुणों में निहित है । सभी जीवों के शरीर में कम से कम 70 प्रतिशत या अधिक जल होता है । पृथ्वी का भी लगभग 73 प्रतिशत भाग जल से ढका है । इस कारण यह प्राणियों के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । स्थान विशेष में वर्षाकाल, कुल वर्षा की मात्रा उस स्थान के पारिस्थितिकी तंत्र के लिए बहुत महत्वपूर्ण है ।

वायु में उपस्थित जल वाष्प या आर्द्रता भी जीवों के लिए महत्वपूर्ण होती है । आर्द्रता की कमी व अधिकता दोनों ही परेशानी का कारण बनते हैं ।

मृदा

स्थलीय तंत्रों में मिट्टी के प्रकार से वहाँ की वनस्पति व जीवों पर बहुत प्रभाव पड़ता है । मृदा की pH, आर्द्रता व परत की मोटाई भी महत्वपूर्ण होते हैं । मृदा द्वारा ही अधिकांश जीव (पौधे व सुक्ष्म जीव) खनिज तत्व प्राप्त करते है । तथा अधिकांश विघटनकारी जीव भी यहीं रहते हैं । मृदा अनेक प्रकार के जीवों को आवास प्रदान करती है ।

वायुमण्डलीय दबाव (Atmospheric Pressure)

ऊँचे पहाड़ों पर जहाँ वायुदाब कम होता है तथा गहरे समुद्रतलों में जहाँ यह अत्यधिक होता है, विशेष प्रकार के जीव ही जीवित रह पाते है । वहाँ जीवन अपेक्षाकृत कठिन होता है । इसी तरह स आँधियाँ, तूफान, चक्रवात व अन्य प्राकृतिक आपदायें भी जीवन को प्रभावित करती हैं ।

जैविक घटक

पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक घटकों में पादप, जन्तु व सूक्ष्मजीव शामिल हैं । इन्हें तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है ।

(i) उत्पादक

वे जीव जो खनिज तत्वों व प्रकाश या रासायनिक क्रियाओं द्वारा कार्बनिक पदार्थो का संश्लेषण करते हैं उत्पादक कहलाते हैं । प्रकाश संश्लेषी पादप व सूक्ष्मजीव तथा रसायन संश्लेषी सूक्ष्मजीव उत्पादक होते हैं ।

(ii) उपभोक्ता

जो जीव जन्तु अपना भोजन स्वयं नहीं बनाते अपितु अन्य पेड़–पौधों या जीवों को खाकर प्राप्त करते हैं, उपभोक्ता कहलाते हैं ।

चीटियाँ, कीड़े, खरगोश, हिरण, कुछ मछलियाँ, घोड़े, हाथी व अन्य सभी जीव जो अपना भोजन वनस्पतियों (पेड़–पौधो) से प्राप्त करते हैं शाकाहारी (Herbivores) कहलाते हैं ।

वे जीव जो शाकाहारी जीवों को खाकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं जैसे सांप, चिडियाँ, छिपकलियाँ, मेंढ़क, सियार आदि छोटे मांसाहारी (Carnivorus) जीव हैं । कुछ जीव शाकाहारियों के अतिरिक्त छोटे मांसाहारी जीवों को भी खाते हैं जैसे शेर, शार्क, चीते इत्यादि, यह बड़े मांसाहारी जीव हैं ।

उपरोक्त सभी जीव उपभोक्ता कहलाते हैं ।

(iii) अपघटक (Decomposers)

ये वे छोटे–छोटे सूक्ष्मजीव हैं जो मृत जीवों, उनके सड़े गले अंशों व अन्य कार्बनिक अपशिष्टों पर जीवित रहते है तथा उन जीवों के अंशों को नष्ट कर वातावरण को स्वच्छ रखते हैं । इनके कारण कार्बनिक पदार्थ पुन: अकार्बनिक पदार्थो में परिवर्तित हो जाते हैं ।

फफूंद व जीवाणु तथा केंचुआ इस तरह के जीव हैं ।

2.2.3 खाद्य श्रृंखला एवं खाद्य जाल

पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक की ऊर्जा के द्वारा उत्पादित ऊर्जा का एक जीव से दूसरे जीव में स्थानान्तरण की क्रिया को खाद्य श्रृंखला कहते हैं जैसे –

घास – खरगोश – लोमड़ी

घास – खरगोश – लोमड़ी – शेर

घास – कीड़ा – चिड़िया – बाज

घास – कीड़ा – मेढ़क – साँप – चील

बीज – चूहा – उल्लू

जलीय तंत्र में खाद्य श्रृंखला इस प्रकार होती है ।

प्लवक – मछली – मगरमच्छ

पादपप्लवक – प्राणी प्लवक – छोटी मछलियाँ – शार्क मछली

खाद्य जाल

पारिस्थितिकी तंत्र में खाद्य श्रृंखला सीधी न होकर जटिल हो जाती है इसे खाद्य जाल कहते हैं । कुछ जीव एक से अधिक प्रकार का भोजन करते है वे सर्वाहारी कहलाते हैं । एक प्रकार का भोजन कई प्रकार के जीवों द्वारा खाया जाता है । ऐसी स्थिति में खाद्य जाल बनते हैं ।

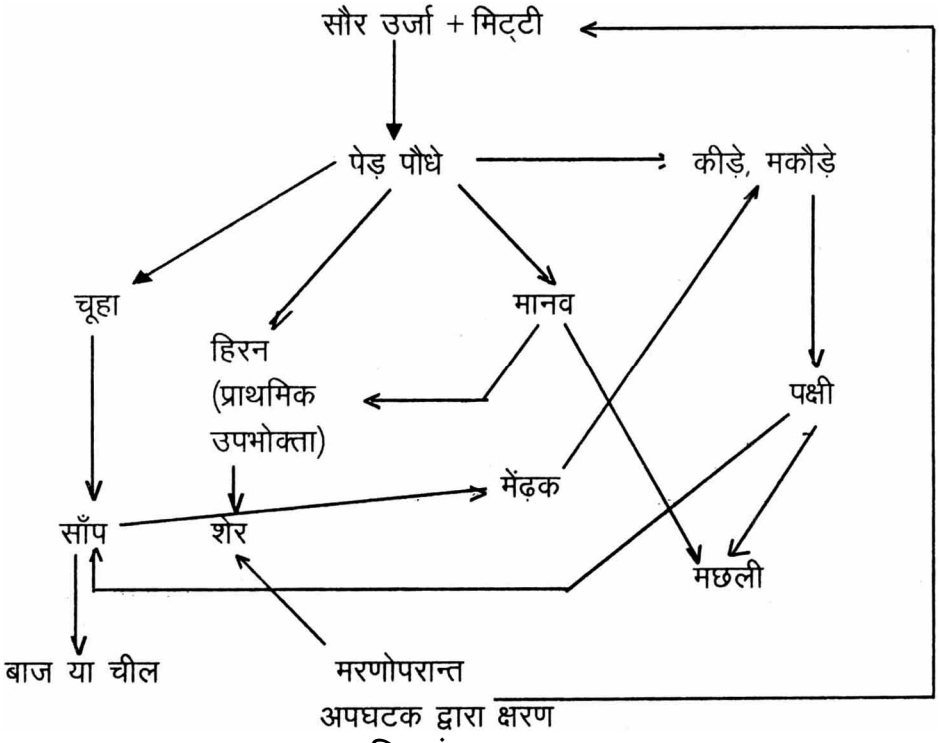

चित्र सं. 2.2 : खाद्य जाल

2.2.4 पारिस्थितिकी तंत्र में पोषण स्तर

पारिस्थितिकी तंत्र में विभिन्न पोषण स्तर पाए जाते है –

प्रथम स्तर -- उत्पादक

ये सम्पूर्ण तंत्र के पोषण हेतु भोजन का उत्पादन करते हैं । जैसे – पेड़ पौधे व शैवाल ।

द्वितीय स्तर -- प्राथमिक उपभोक्ता

ये उत्पादित भोजन के कुछ भाग का उपभोग करते है । प्राथमिक उपभोक्ता शाकाहारी जीव होते हैं जो वनस्पतियाँ खाते हैं । जैसे – गाय, बकरी, खरगोश, छोटी मछलियाँ, कीट ।

तृतीय स्तर -- द्वितीयक उपभोक्ता

ये छोटे मांसाहारी जीव है जो शाकाहारी जीवों को खाते हैं । जैसे – लोमडी, सियार, मेंढ़क।

चतुर्थ स्तर -- तृतीयक उपभोक्ता

बडे मांसाहारी जीव जो छोटे मांसाहारी जीवों को खाते हैं तृतीयक उपभोक्ता कहलाते हैं । जैसे – शेर ।

पंचम स्तर -- अपमार्जक

वे जीव जो मृत जीवों व उनके अवशेषा को खाते है, अपमार्जक कहलाते है । जैसे गिद्ध व जरख ।

षष्ठम स्तर -- अपघटक

वे जीव जो मृत पेड-पौधों, जन्तुओं व अन्य अवशेषों को पुन: मूल तत्वों में बदल देते हैं, अपघटक कहलाते हैं । जैसे फफूँद व जीवाणु ।

सप्तम स्तर

जीवाणुओं को भी खाने वाले वाइरस व वाइरस को खाने वाले बैक्टीरियोफाज, यह अंतिम स्तर है ।

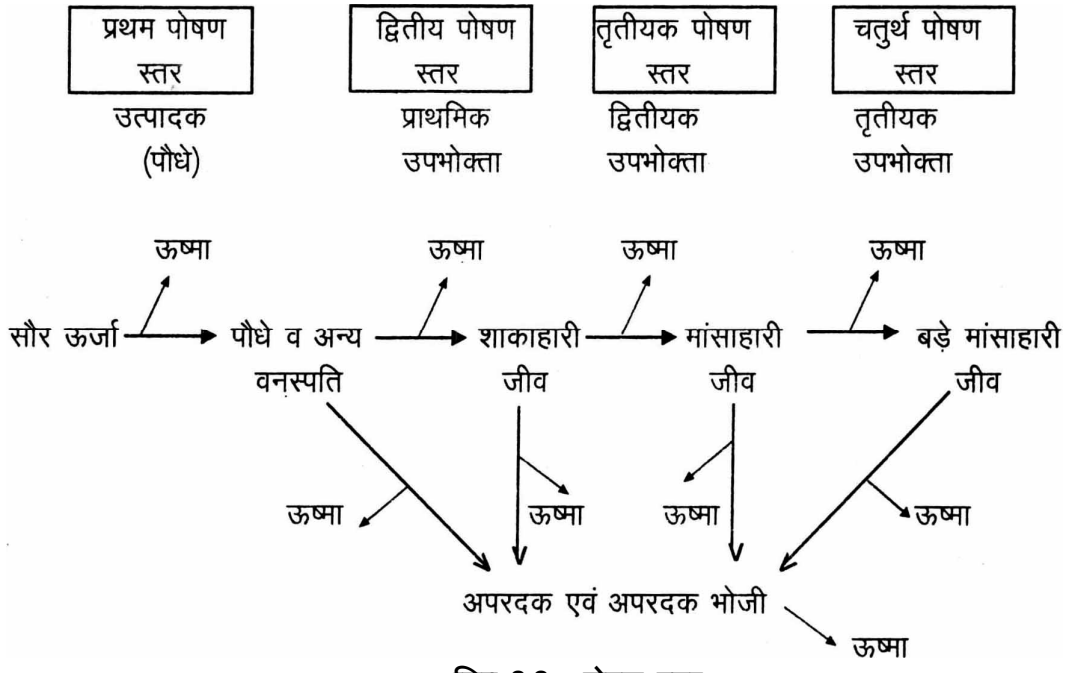

चित्र 2.3 : पोषण स्तर

Detritiores - अपरदक भोजी, Solar Energy - सौर ऊर्जा

बोध प्रश्न B

1. पारिस्थितिकी तंत्र में विभिन्न पोषण स्तरों के नाम लिखिए ।

---

2. पारिस्थितिकी तंत्र को कौन-कौन से अजैविक घटक प्रभावित करते हैं ?

---

3. पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक घटकों के नाम बताइए ।

---

4. पारिस्थितिकी तंत्र के तीन प्रमुख कार्य लिखो ।

पारिस्थितिकी तंत्र के तीन प्रमुख कार्य हैं

1. ऊर्जा प्रवाह
2. जैव भू–रासायनिक चक्र
3. उत्पादन

2.2.5 पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह

इस तंत्र में ऊर्जा का स्त्रोत सूर्य है । सूर्य के प्रकाश में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा कार्बनडाईऑक्साइड व जल प्रयोग करके कार्बनिक पदार्थो (स्टार्च) का संश्लेषण होता है । पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह उष्मागतिकी के प्रथम दो नियमों के अनुसार होता है ।

पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह का अध्ययन सर्वप्रथम ब्रिटेन के वैज्ञानिक लिन्डमैन ने 1942 में एक मॉडल में किया । इसके आधार पर बहुत से वैज्ञानिकों ने (जैसे ओडम भाइयों ने) कई प्रकार के मॉडल बनाए । सूर्य के प्रकाश का केवल 42 प्रतिशत भाग ही दृश्य प्रकाश है । इसके अतिरिक्त अवरक्त व पराबैगनी किरणें व अन्य विकिरण होती हैं । अधिकांश पराबैगनी किरणें तो ओजोन परत द्वारा सोख ली जाती है और बहुत सी धूलकणों इत्यादि द्वारा आस पास छितरा दी जाती हैं । पृथ्वी की सतह तक सूर्य की आधी प्रकाश ऊर्जा भी नहीं पहुँच पाती । पृथ्वी की सतह से भी अधिकांश ऊर्जा परिवर्तित कर दी जाती है व कुछ अवशोषित कर ली जाती है । यह अवशोषित ऊर्जा पृथ्वी की सतह को गर्म कर देती है । स्वपोषी पौधे पृथ्वी तक पहुँचने वाली सौर ऊर्जा का 21 प्रतिशत भाग प्रकाश संश्लेषण में खर्च करते है । इस क्रिया में 470 Kilojoule ऊर्जा प्रतिमोल संश्लेषित कार्बन खर्च होती है । उक्त क्रिया क्लोरोफिल की उपस्थिति में होती है ।

पोषक चक्र (Nutrient Cycle)

एक पारिस्थितिकी तंत्र में वांछित पोषक तत्वों का प्रवाह एक निश्चित क्रम में होता है । खनिज तत्वों का प्रवाह पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक व अजैविक दोनों घटकों में होता है तथा सम्पूर्ण जैव मण्डल में खनिज विशेष की मात्रा लगभग स्थिर रहती है इसे पोषक चक्र कहते हैं ।

दस प्रतिशत का नियम

इस नियम के अनुसार उत्पादक से अंतिम उपभोक्ता तक खाद्यश्रृंखला की हर स्तर पर पिछली स्तर को उपलब्ध ऊर्जा का 10 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध हो पाता है । शेष वातावरण में वितरित हो जाता है ।

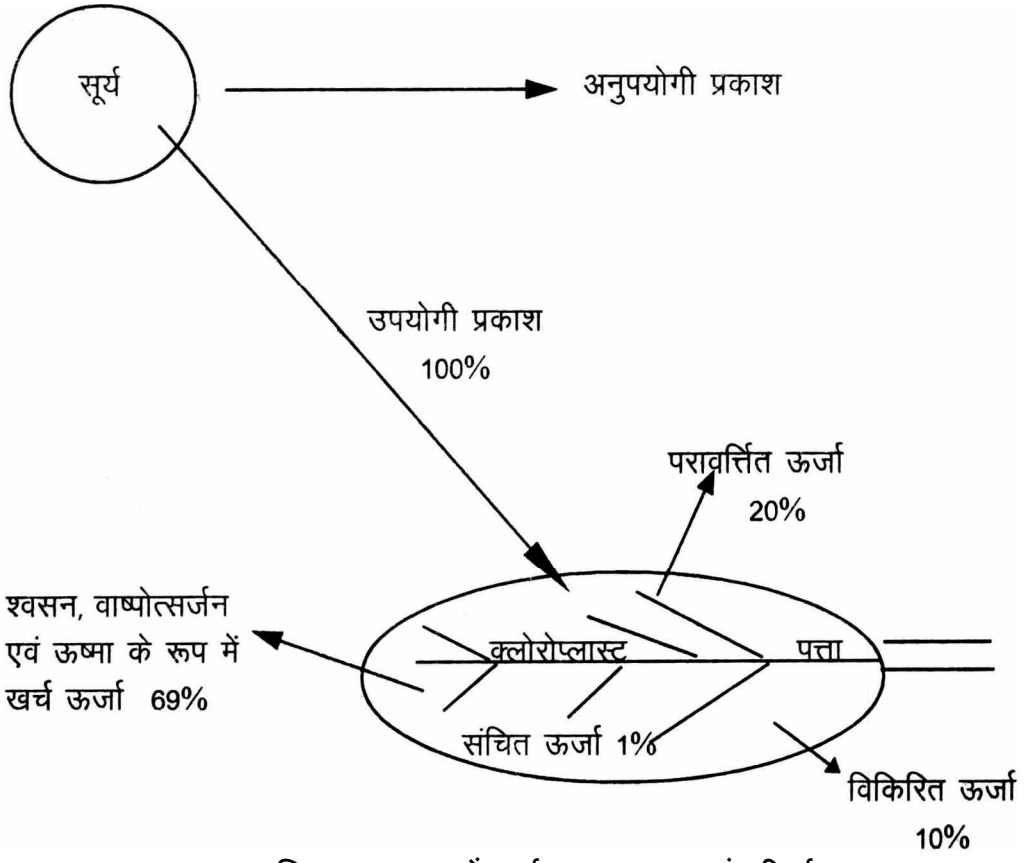

चित्र 2.4 प्रकाश में ऊर्जा स्थानान्तरण एवं परिवर्तन

Non usable wavelength – अनुपयोगी तरंगदैर्ध्य, Transmitted Energy – विकिरित ऊर्जा, Respiration – श्वसन, Transpiration – वाष्पोत्सर्जन, Reflected Energy – परावर्तित ऊर्जा

प्राथमिक उत्पादन

खनिज पदार्थ की दी गई मात्रा के निश्चित समय में उत्पादित कार्बनिक पदार्थ एवं ऊर्जा प्राथमिक-उत्पादन कहलाता है इसे प्रति यूनिट समय में संश्लेषित कार्बनिक पदार्थ की मात्रा के रूप में निरूपित किया जाता है । यह कार्य स्वपोषियों विशेषत: प्रकाश संश्लेषी पौधों द्वारा किया जाता है । अत: वे प्राथमिक उत्पादक कहलाते हैं ।

उत्पादकता

उत्पादकता एक आवास में दिए गए निश्चित समय में उत्पादन एवं कुल उपस्थित जैव भार का अनुपात है ।

$$\text{उत्पादकता} = \frac{\text{उत्पादन}}{\text{जैवभार}} \text{ प्रति इकाई समय}$$

कुल उत्पादन

प्रकाश एवं खनिज तत्वों की उपस्थिति में पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा निश्चित मात्रा में कार्बनिक पदार्थ प्रति इकाई समय में उत्पादित करते है, इसे कुल उत्पादन कहा जाता है ।

नैट उत्पादन

पौधे की चयापचयी क्रियाओं में खर्च ऊर्जा को कुल उत्पादन में से घटा दें तो नैट उत्पादन प्राप्त होता है ।

नैट उत्पादन = कुल उत्पादन -- उपापचयी खर्च

द्वितीयक उत्पादन

यह उपभोक्ता द्वारा उत्पादित जैव भार है अत: उपभोक्ता द्वारा उत्पादित जैवभार को द्वितीय उत्पादन कहते हैं । उपभोक्ता उत्पादकों द्वारा उत्पादित जैवभार को ही परिवर्तित करके जैवभार बनाते हैं अत: वे विषम भोजी (Heterotropic) कहलाते हैं ।

ऊर्जा, जो उत्पादकों (प्रकाश संश्लेषी जीवों) द्वारा ग्रहण की जाती है । पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न स्तरों से गुजरती हुई क्रमश: दस प्रतिशत के नियमानुसार कम होती जाती है । इन पोषण स्तरों के बीच बीच में कुछ अन्य स्तर भी होते है । ये निम्न हैं –

परजीवी

परजीवी भोजन श्रृंखला में साथ साथ चलते हैं । उदाहरण के लिए टिक्स जो मांसाहारी जीवों का भी खून चूसती है । टिक्स के शरीर पर भी परजीवी जीवाणु व वाइरस रह सकते है तथा जीवाणु भी जीवाणुभोजी वाइरस द्वारा खाए जा सकते हैं ।

अपरदक भोजी (Detritus feeders)

वह जीव जो मृत जीवों के सड़े गले अवशेषों से भोजन प्राप्त करते हैं अपरदक भोजी कहलाते हैं । ये कई प्रकार के हो सकते है । जो केवल मृत प्राणियों के शवों को खाकर जीवित रहते हैं जैसे कोलियोप्टेरा वर्ग के प्राणी व मक्खियाँ नेक्रोफेजेज कहलाते हैं । कोप्रोफेजेज (विष्ठा भोजी) वे जीव है जो अन्य जीवों का मल या उत्सर्जित पदार्थ खाकर जीवित रहते है, जैसे – डग बीटल्स ।

मृतोपजीवी

जो सड़े–गले पौधों के अवशेषों को खाते हैं जैसे वुड लाउस ।

जीयोफेजेज (मृदाभोजी)

ये वे प्राणी हैं जो मृदा में रहते है तथा मिट्टी खाकर जीवित रहते है जैसे केंचुए, मकड़ी जाति के जीव, कोलेम्बोला इत्यादि ।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि विभिन्न पोषण स्तरों के मध्य भी अनेक कारणों से ऊर्जा का क्षय होता है । प्राणी की उपापचयी ऊर्जा के अतिरिक्त अन्य जीव जो उसे सीधे–सीधे नहीं खाते हैं, भी उस जीव से ऊर्जा प्राप्त करते हैं ।

2.2.6 पारिस्थितिकी खूप (पिरामिड)

यदि विभिन्न पोषण स्तरों के जैव भार की मात्रा के आधार या जीवों की संख्या के आधार पर जमाया जाए तो इससे पिरामिड की आकृति प्राप्त होती है इसे पारिस्थितिकी साप या पिरामिड कहते हैं । ऐसी ही आकृति उपभोग की गई ऊर्जा के लिए भी प्राप्त होती है । मगर ऊर्जा का साप सदैव सीधा ही होता है ।

उदाहरण के तौर पर उत्पादक जैसे पेड़ पौधे, घास इत्यादि बड़ी मात्रा में पैदा होते हैं । उनका जैव भार बहुत अधिक होता है । इनको खाकर जीने वाले शाकाहारी जीवों का जैव भार अपेक्षाकृत काफी कम होता है । क्योंकि उन जीवों की उपापचयी क्रियाओं में बहुत सी ऊर्जा खर्च होती है तथा सभी उत्पादक शाकाहारियों द्वारा नहीं खाये जाते । इसी तरह से शाकाहारियों को खाने वाले मांसाहारी जीवों का जैव भार शाकाहारियों की तुलना में बहुत कम होता है । मांसाहारी जीवों को खाने वाले जीव जैसे गिद्व जरख इत्यादि का जैव भार मांसाहारियों की तुलना में काफी कम होता है ।

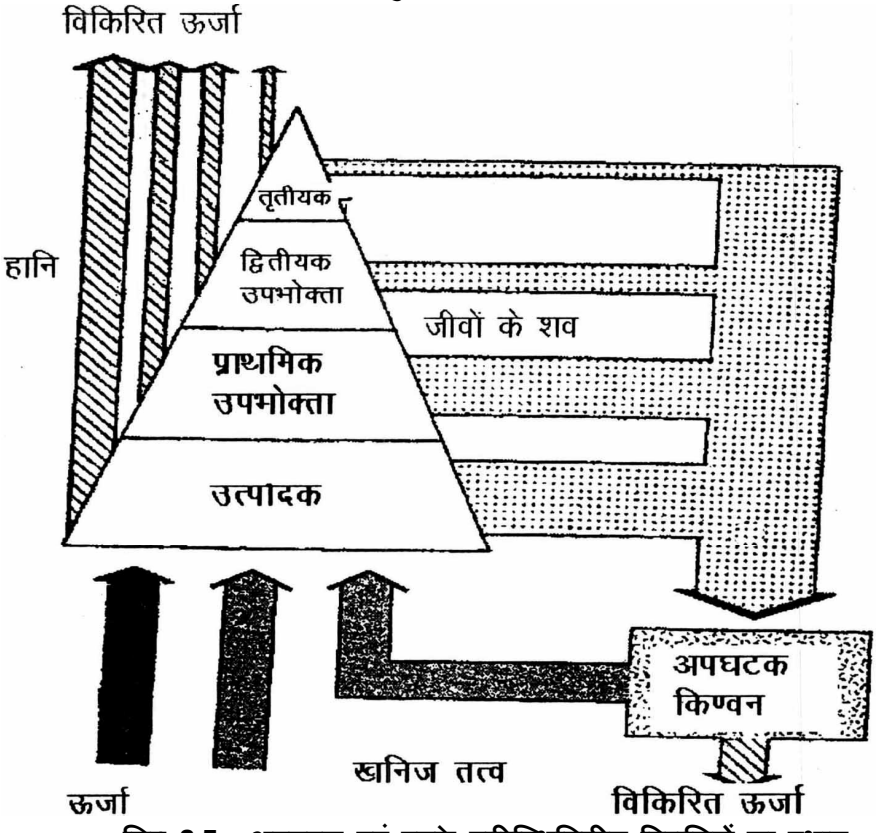

चित्र 2.5 : अपघटक एवं उनके पारिस्थितिकीय पिरामिडों का स्थान

बोध प्रश्न C

1. नैट उत्पादन क्या है ?

---

2. अपदरक भोजी कितने प्रकार के होते हैं 7

---

3. कैंचुए किस प्रकार का भोजन करते हैं 7

---

4. दस प्रतिशत का नियम क्या है 7

2.2.7 जैव भू-रासायनिक चक्र (Biogeochemical Cycles)

जैव मण्डल में सभी रासायनिक तत्व एक निश्चित चक्र से गुजरते हैं । हम यहाँ उन कुछ महत्वपूर्ण तत्वों के चक्र का अध्ययन करेंगे जो कि जीवों की संरचना में भाग लेते हैं । इनमें कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन एवम् फास्फोरस प्रमुख हैं । सभी तत्व दो प्रमुख पूल्स का हिस्सा होते हैं । पहला तो रिजर्व पूल जिसमें तत्वों की गति धीमी होती है । यह बड़ा पूल है । दूसरा चक्रीय पूल जो कि अपेक्षाकृत बहुत छोटा होता है मगर इसकी गति तेज होती है । सभी जैव भू-रासायनिक चक्र दो प्रकार के होते हैं (1) गैसीय (2) निक्षेप (sedimentary) गैसीय चक्रों का रिजर्व पूल वायुमण्डल या जलमण्डल में होता है तथा निक्षेप चक्रों का रिजर्व पूल भूपर्पटी में होता है ।

प्रत्येक तत्व के चक्रीय पूल में वह तत्व जीवों के शरीर का हिस्सा बनता है । एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में स्थानान्तरित होता है तथा अंत में अपघटकों की क्रिया द्वारा पुन: अपने रासायनिक खनिज रूप में बदल जाता है । यह क्रम चलता रहता है ।

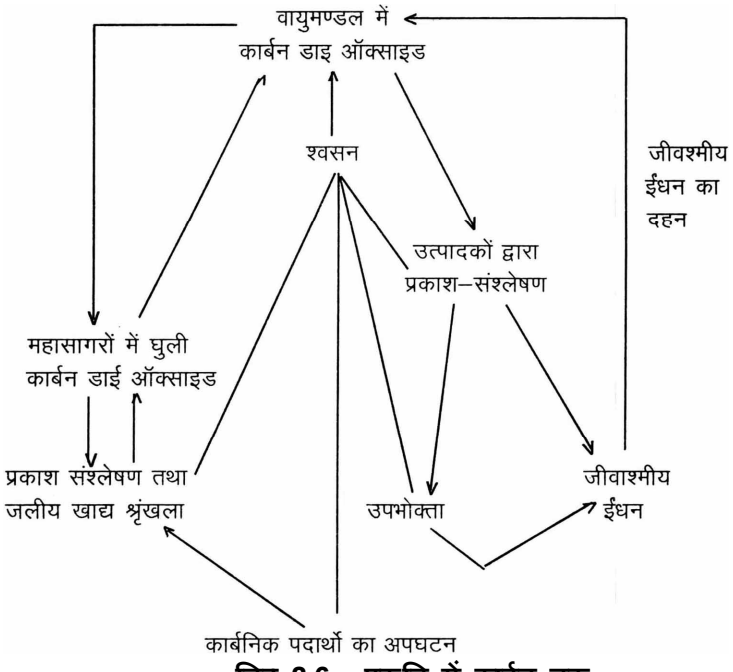

चित्र 2.6 : प्रकृति में कार्बन चक्र

पर्ण हरित युक्त पेड़ पौधे एवं सूक्ष्म जीव प्रकाश की उपस्थिति में वायुमण्डलीय कार्बनडाईआक्साइड एवं जल के द्वारा खाद्य पदार्थो का निर्माण करते हैं यह खाद्य पदार्थ समस्त उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । उत्पादकों सहित समस्त उपभोक्ताओं की ऊर्जा आवश्यकताओं को खाद्य पदार्थ पूरी करते हैं तथा श्वसन के समय पुन: कार्बनडाईआक्साइड वायुमण्डल में छोड़ते हैं । जब यह जीव मर जाते हैं तो इनके शरीर में उपस्थित कार्बन अपघटकों की क्रिया द्वारा पुन: कार्बन डाई आक्साइड या अन्य रूप में वायुमण्डल में छोड़ दिया जाता है । कुछ जीवों के शरीर जीवाश्मीय ईधन जैसे कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस इत्यादि में बदल जाते हैं । इनके दहन पर पुन: कार्बनडाईआक्साइड वायुमण्डल में मुक्त की जाती है । यही क्रम चलता रहता है । निम्नलिखित चित्रों में कुछ अन्य तत्वों का चक्र समझाया गया है ।

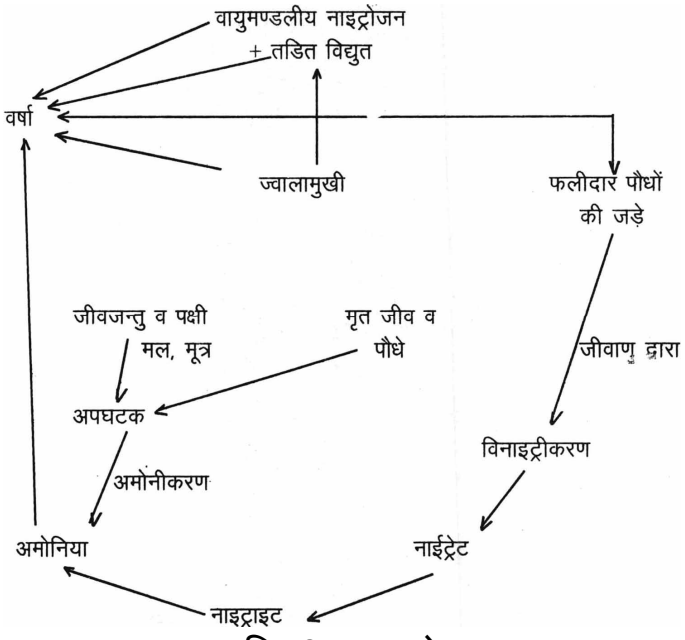

चित्र 2.7 : नाइट्रोजन चक्र

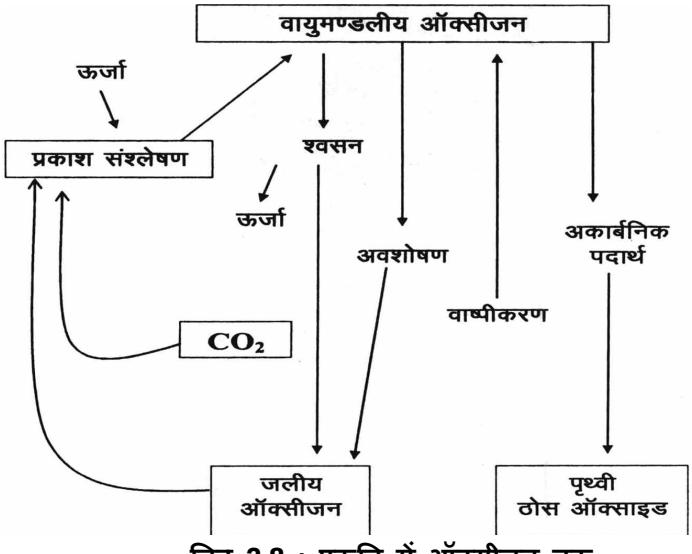

चित्र 2.8 : प्रकृति में ऑक्सीजन चक्र

2.3 सारांश (Summary)

पारिस्थितिकी तंत्र पारिस्थितिकी की वह आधारभूत इकाई है जिसमें जैविक व अजैविक वातावरण एक दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हुए पारस्परिक अनुक्रिया से ऊर्जा और रासायनिक पदार्थो के निरन्तर प्रवाह से तंत्र की कार्यात्मक गतिशीलता बनाए रखते हैं । एक सन्तुलित पारिस्थितिकी तंत्र में कार्बनिक, अकार्बनिक पदार्थ व भौतिक वातावरण (अजैविक घटक) तथा उत्पादन उपभोक्ता व अपघटक (जैविक घटक) होते हैं । पारिस्थितिकी तंत्र में सौर ऊर्जा प्राप्त कर उत्पादक उत्पादन करते हैं व शेष सभी जीव उस ऊर्जा का उपभोग कर जीवन यापन करते हैं । यह ऊर्जा एक पोषण स्तर से दूसरे तक क्रमश: स्थानान्तरित होती रहती है । यह ऊर्जा उत्पादक से अंतिम पोषण स्तर तक आते आते लगातार घटती जाती है । इन स्तरों के बीच हर बार ऊर्जा की बड़ी मात्रा छीजत के रूप में खर्च होती है तथा साथ ही जीवों की उपापचय में भी उपयोग ली जाती है । एक पारिस्थितिकी तंत्र में समस्थिरता बनी रहती है तथा खनिज पदार्थ एक चक्रीय रूप में भौतिक व जैविक घटकों क मध्य गुजरते रहते हैं मगर किसी भी विशेष तत्व को मात्रा जैवमण्डल में लगभग स्थिर रहती है ।

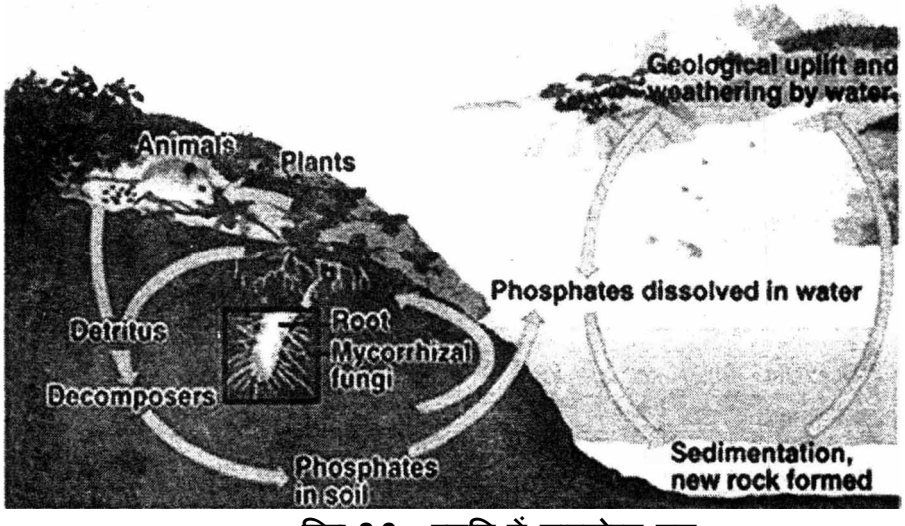

चित्र 2.9 : प्रकृति में फास्फोरस चक्र

2.4 शब्दावली (Glossary)

वायुमण्डल	–	पृथ्वी के चारों ओर का गैसीय आवरण
जैव मण्डल	–	पृथ्वी के जिस भाग में जीव पाया जाता है उसे जैव मण्डल कहते हैं ।
पोषण स्तर	–	उत्पादकों द्वारा खानिज तत्वों व सौर ऊर्जा के उत्पादित खाद्य पदार्थ विभिन्न प्रकार के जीवों द्वारा खाया जाता है और अंत में यह पुन: खानिज तत्वों में बदल जाता है । विभिन्न स्तरों पर उन्हें उपयोग करने वाले जीव विभिन्न पोषण स्तर बनाते है । जैसे प्राथमिक, द्वितीयक व तृतीयक उपभोक्ता, अपघटक इत्यादि ।
खाद्य श्रृंखला	–	प्रत्येक जीव किसी जीव को खाता है और स्वयं भी किसी अन्य जीव द्वारा खाया जाता है इसे खाद्य श्रृंखला कहते हैं ।
खाद्य जाल	–	जब खाद्य श्रृंखलाऐं सीधी न होकर शाखित होती हैं यानि एक भोजन

के अनेक उपभोक्ता होते है तो खाद्य जाल बनता है ।

पारिस्थितिकीय पिरामिड़ – एक पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न पोषण स्तरों को जीवों को संख्या, जैवभार या ऊर्जा के आधार पर जमाया जाऐ तो पिरामिड आकृति प्राप्त होती है । इन्हें पारिस्थितिकीय पिरामिड कहा जाता है ।

2.5 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. Odum E.P - Fundamentals of Ecology
2. Faurie C. et al - Ecology science and practice
3. हरिश्चन्द्र भारतीय एवं ए.एल. भाटिया – परिचयात्मक पर्यावरण जैविकी
4. इन्टरनेट

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

A.

1. पारिस्थितिकी तंत्र पारिस्थितिकी की वह आधार भूत इकाई है, जिसमें जैविक व अजैविक वातावरण एक दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हुए पारस्पारिक अनुक्रिया से ऊर्जा और रासायनिक पदार्थ के निरन्तर प्रवाह से तंत्र की कार्यात्मक गतिशीलता बनाए रखते हैं ।
2. पृथ्वी का वह भाग जिस पर जीवित प्राणी रहते हैं, जैव मण्डल कहलाता है ।
3. भूमि, जल व वायु ।

B.

1. उत्पादक, उपभोक्ता, अपमार्जक, अपघटक ।
2. अकार्बनिक पदार्थ, अकार्बनिक पदार्थ व भौतिक वातावरण ।
3. उत्पादक, उपभोक्ता, अपघटक ।
4. ऊर्जा प्रवाह, जैव भूरासायनिक चक्र, उत्पादन ।

C.

1. कुल उत्पादन में से उत्पादक के उपापचय में खर्च ऊर्जा घटाने पर नैट उत्पादन प्राप्त होता है ।
2. सड़ते जीवों को खाने वाले नेक्रोफेजेज व मल खाने वाले कोप्रोफेजेज, ये दो प्रकार के अपरदक भोजी हैं ।
3. ये मृदाभोजी हैं ।
4. 4. इस नियम के अनुसार खाद्य श्रृंखला के हर स्तर पर पिछले स्तर को उपलब्ध ऊर्जा का 10% भाग ही उपलब्ध हो पाता है । शेष वातावरण में विसरित हो जाता है ।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पारिस्थितिकी तंत्र क्या है? पारिस्थितिकी तंत्र के घटकों का वर्णन कीजिए ।
2. पारिस्थितिकी तंत्र की अवधारणा को समझाइए । किसी एक तंत्र का उदाहरण देते हुए इसके घटकों के कार्य समझाइए ।

3. खाद्य श्रृंखला व खाद्य जाल से आप क्या समझते हैं । पारिस्थितिकी तंत्र में खाद्य श्रृंखला में ऊर्जा वितरण को समझाइए ।
4. "पोषण स्तर" से पारिस्थितिकी तंत्र में क्या तात्पर्य है ? एक पारिरिथतिकी तंत्र में विभिन्न पोषण स्तरों का वर्णन कीजिए ।
5. पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह चित्रों की सहायता से समझाइए ।
6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।
   (i) पारिस्थितिकी स्तूप (पिरामिड)
   (ii) पारिस्थितिकी तंत्र का विनाश
   (iii) पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण

इकाई – 3

परिस्थिति तंत्रों के प्रकार

Eosystem Types

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पारिस्थितिकी तत्रों के प्रकार, संरचना एवं कार्य

3.2.1 वन

3.2.2 मरूस्थल

3.2.3 घास के मैदान

3.2.4 जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

3.3 सारांश

3.4 शब्दावली

3.5 संदर्भ ग्रन्थ

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

3. उद्देश्य (Objective)

जैवमण्डल पर पाये जाने वाले विभिन्न पारिस्थितिकीय तंत्रों का ज्ञान और उनकी संरचना एवं कार्यो के बारें में जानकारी ।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

पूर्व इकाई में आप पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना एवं कार्यो के बारे में अध्ययन कर चुके हैं । पारिस्थितिकी तंत्र, पारिस्थतिकी विज्ञान की इकाई है । जैवमण्डल में विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र पाये जाते है, जैसे– वन, घास के मैदान, मरूस्थल, एवं जलीय पारिस्थितिकी तंत्र आदि । जैसा कि पूर्व में पारिस्थितिकी तंत्र के घटकों एवं कार्यो के बारें में अध्ययन से ज्ञात हुआ होगा कि पारिस्थितिकी तंत्र एक सम्पूर्ण इकाई की तरह कार्य करता है, जिनके प्रत्येक घटक एक दूसरे से सम्बन्धित है । जैसे – जैसे हम विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों का अध्ययन करेंगे तो स्पष्ट होगा कि उनमें आधारभूत घटक तो वही है, लेकिन उनमें पाये जाने वाले वनस्पति जात एवं प्राणी जात विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों में एक जैसे न होकर भिन्न होते है । इसी प्रकार इनमें कार्य समान परन्तु क्षमताऐं भिन्न भिन्न होती है । अत: विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों का अध्ययन अति आवश्यक है । यहाँ हम वन, घास के मैदान, मरूस्थल और जलीय पारिस्थितिकी तंत्रों का अध्ययन करेंगे ।

3.2 पारिस्थितिकी तंत्रों के प्रकार, संरचना एवं कार्य (Structure, types and function of ecosystem)

3.2.1 वन (Forest)

समग्र भू-धरातल का 40 प्रतिशत भाग वनों द्वारा आच्छादित है । भारत वर्ष में सम्पूर्ण क्षेत्रफल के दसवें भाग में वन पाये जाते है । वन प्राकृतिक पादपों का एक समुदाय है, जिसमें फेनेरोफाइट्स की अधिकता पाई जाती है । पारिस्थितिकीय स्थिति के अनुसार वन वही पाये जाते है जहाँ पूरे वर्ष वर्षण/जलवाष्पन अनुपात अधिक होता है और पूरे वर्ष भर अनुकूल तापमान एवं कम जैविक व्यवधान पाया जाता है ।

P – Precipitation (वर्षण)

E – Evaporation (जल–वाष्पन)

वनों का वर्गीकरण

जलवायु, उनकी बाह्याकृति (Physiognomy), फ्लोरिस्टिक संघटन एवं प्रभाविता (dominance) के आधार पर विश्व के समस्त वनों को 7 वर्गो में वर्गीकृत किया गया है –

1. उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन (Tropical rain forest)
2. शुष्क पर्णपाती वन (Dry deciduous forest)
3. कटीले वन (Thorny forest)
4. हापड़ी वन (Sclerophyllous bush type forest)
5. पर्णपाती वन (Deciduous forest)
6. शीतोष्ण वर्षा वन (Temperate rain forest)
7. कोणधारी वन (Coniferous forest)

चैम्पियन एवं सेठ (1968) ने भारत के वनों को 14 प्रकारों में बांटा है --

1. उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वन (Tropical wet evergreen forest)
2. उष्ण कटिबंधीय अर्ध सदाबहार वन (Tropical semi evergreen forest)
3. उष्ण कटिबंधीय आर्द्र पर्णपाती वन (Tropical moist deciduous forest)
4. तरक्षेणीय एवं दलदली वन (Littoral and swamp forest)
5. उष्ण कटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वन (Tropical dry deciduous forest)
6. उष्ण कटिबंधीय कांटेदार वन (Tropical thorn forest)
7. उष्ण कटिबंधीय शुष्क सदाबहार वन (Tropical dry evergreen forest)
8. उपोष्ण चौड़ी पत्ती वाले वन (Sub Tropical broad leaved hill forest)
9. उपोष्ण चीड़ वन (Sub tropical pine forest)
10. उपोष्ण शुष्क सदाबहार वन (Sub tropical dry evergreen forest)
11. पर्वतीय आर्द्र शीतोष्ण वन (Mountain wet temperature forest)
12. हिमालयी आर्द्र शीतोष्ण वन (Himalayan moist temperature forest)

13. हिमालयी शुष्क शीतोष्ण वन (Himalayan dry temperature forest)

14. अल्पाइन एवं सब–अल्पाइन वन (Alpine and sub alpine forest)

वन पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना

इस तंत्र के सम्पूर्ण घटकों को दो भागों में बाँटा जा सकता है -

1. **अजैविक घटक --** इनमें मृदा में उपस्थित कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ के अलावा मृत कार्बनिक पदार्थ, जिसे लिटर (Litter) कहते है सम्मिलित है । लिटर (Litter) शीतोष्ण जलवायु में उष्ण कटिबंधीय जलवायु की अपेक्षा अधिक मिलता है । क्योंकि शीतोष्ण क्षेत्रों में सूक्ष्म जीवों द्वारा कार्बनिक पदार्थो का विघटित करने की दर कम होती है । इसके अलावा वायु, (प्रवाह दिशा एवं तीव्रता), जल उपलब्धता, प्रकाश (मात्रा, तीव्रता एवं अवधि), नमी एवं तापमान आदि जलवायवीय कारक भी अजैविक घटकों में सम्मिलित है । प्रकाश की तीव्रता वनों के विभिन्न संस्तरों में अलग – अलग पाई जाती है ।
2. **जैविक घटक --** वनों में जीवित प्राणी एक निश्चित क्रम में एक दूसरे से सम्बन्धित होते है, वे खाद्य श्रृंखला में निम्न क्रम में पाये जाते हैं –

(A) उत्पादक -- ये प्राय: वृक्ष होते है, जो विभिन्न जातियों के एवं विभिन्न अनुपात में पाये जाते हैं । ये वृक्ष विभिन्न स्तरों में पाये जाते है, जो विभिन्न जलवायु के अनुसार विभिन्न प्रकार के वनों का निर्माण करते है, इनके अलावा क्षय एवं कठलताएँ भी पाई जाती है । प्रभावी वनस्पति में टीक (Tectona grandis), ढाक (Butea monsperma), साल (Shorea robusta) आदि पाये जाते है । शीतोष्ण कोणधारी वनों में धुजा, एसर, बेदुला, सिट्रस, पाइनस, देवदार, एवीज व रोडोडेन्ड्रोन आदि पाये जाते है । शुष्क पर्णपाती वनों में शीशम (डेलबर्जिया), धोंक (एनोजिसस), ढाक आदि पाये जाते है ।

(B) उपभोक्ता -- ये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादकों पर आश्रित रहते हैं । इन्हें निम्न पोषण स्तरों में बाँटा गया है :–

(a) प्राथमिक उपभोक्ता -- ये प्राय: शाकाहारी होते है, जो पेड़ों की पत्तियों, फलों एवं फूलों पर निर्भर रहते है । उदाहरण – भृंग, मक्खी, चीटियाँ, बग्स, मकड़ियाँ, हाथी, हिरन, मोल्स, गिलहरी, चमगादड़, आदि ।

(b) द्वितीयक उपभोक्ता -- ये मांसाहारी होते हैं एवं प्राथमिक उपभोक्ताओं पर आश्रित होते हैं । उदाहरण – लोमड़ी, सॉप, मेढ़क, छिपकली आदि ।

(c) तृतीयक उपभोक्ता -- ये मांसाहारी होते हैं एवं प्राथमिक एवं द्वितीयक उपभोक्ताओं पर जीवन यापन करते है । उदाहरण – शेर, भेड़िया, चीता आदि ।

(C) अपघटक -- ये प्राय: सूक्ष्म जीव होते हैं, जैसे – बैक्टीरिया, कवक, एक्टिनोमाइसिटिज, जो मृत जीवों एवं वानस्पतिक लिटर को अपघटित कर मृदा में मिला देते है ।

उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय वनों में इन अपघटकों की क्रिया समशीतोष्ण वनों की अपेक्षा अधिक होती है ।

वन तंत्र में कुछ जीव अपमार्जकों की भूमिका निभाते हैं, ये मृत जीवों को खाकर पारिस्थितिकी तंत्र को साफ सुथरा बनाये रखने में मदद करते हैं । जैसे – गिद्ध, चील, जरख आदि ।

वनों के कार्य

(I) मृदा अपरदन को रोकते हैं ।

(II) वनों से विभिन्न प्रकार की लकड़ियाँ, औषधियाँ एवं खाद्य सामग्री आदि प्राप्त होती है ।

(III) पर्यावरण संतुलन में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं ।

(IV) जैविक विविधता को बनाये रखते हैं ।

बोध प्रश्न

1. समस्त भू--भाग के कितने प्रतिशत भाग पर वन आच्छादित है ?

---

2. पारिस्थितिकीय स्थिति के अनुसार वन कहाँ--कहॉ पाये जाते हैं ?

---

3. विश्व के वनों को कितने वर्गो में वर्गीकृत किया गया है ?

---

4. किन वनों में जैव--अपघटकों की क्रिया अपेक्षाकृत अधिक होती है ?

3.2.2 मरुस्थल पारिस्थितिकी तंत्र (Desert ecosystem)

अत्यन्त कम व अनियमित वर्षा, शुष्क जलवायु, मरूस्थल पारिस्थितिकी तंत्र का अभिलाक्षणिक गुण है । तापमान के आधार पर मरूस्थल दो प्रकार के होते है – शुष्क उष्ण मरूस्थल – जैसे थार, सहारा तथा शुष्क ठंडे मरूस्थल – जैसे टुण्ड्रा प्रदेश । दोनों ही प्रकार के मरूस्थलों में जन व वनस्पति न्यूनता सामान्य है । यहाँ हम केवल शुष्क उष्ण मरूस्थलों के बारे में अध्ययन करेंगे । उष्ण मरूस्थल 30^0 उत्तरी एवं 30^0 दक्षिणी अक्षांश के मध्य पाये जाते है । अफ्रीका में सहारा, नामिव एशिया में गोबी, थार कुछ मुख्य मरूस्थलों में से एक है । मरूस्थलों में वार्षिक वर्षा औसत 50 mm से कम, गर्म दिन (तापमान अधिकतम 48^0C) तथा ठंडी रातें (तापमान न्यूनतम 5^0C) होती है । भारत का थार मरूस्थल 13 लाख किमी वर्ग क्षेत्र (भारत–पाक) में फैला हुआ है । तथा 22^0 30'N – 32^0 05'N अक्षांश तथा 68^0 5'E – 75^0 45'E देशान्तर के बीच स्थित है । मई–जून में धूल भरी आधियाँ यहाँ का प्रमुख लक्षण है । वाष्पन, वर्षण से ज्यादा होता है ।

मरूस्थल पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना

(I) अजैविक घटक

मृदा में उपस्थित कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ तथा अन्य जलवायवीय कारक जैसे – वायु, प्रकाश, तापमान, वर्षा आदि । उच्च तापमान, धूलभरी ऑधियॉ सूखा यही की जलवायु की विशेषता है ।

(II) जैविक घटक

(A) उत्पादक

अल्पजीवी घास जातियाँ जैसे – सैकेरम, डाइकैन्थियम, लेजुरस (सेंवण घास) तथा क्षुप जैसे – कैपेरिस, लेप्टोडेनिया, स्पाइसिजेरिया, खेजड़ी, बबूल, नागफनी आदि । अधिकांश पादप जातियाँ (क्षुप तथा वृक्ष को छोड़कर) केवल वर्षाकाल में ही जीवित रहती है, ग्रीष्म काल के शुरू होते ही समाप्त हो जाती है ।

(B) उपभोक्ता

(I) प्राथमिक उपभोक्ता – टिड्डी, मकड़ी, दीमक, चूहा, खरगोश, हिरण, एंटीलोप्स, धारीदार गधा, ऊँट, कुछ पक्षी, गोडावन, छोटे स्तनपयी जैसे रेगिस्तानी चूहा ।

(II) द्वितीयक उपभोक्ता – सॉप, छिपकली, लोमड़ी आदि ।

(III) तृतीयक या उच्च उपभोक्ता – भेड़िया, बाज आदि ।

(C) अपघटक

कुछ कवक, जीवाणु तथा एक्टीनोमाइसिटिज । इनकी मात्रा वर्षा काल में बढ़ जाती है ।

कार्य

1. यह स्तनधारी, पक्षियों एवं सरीसृप की शरणस्थली का कार्य करते है ।
2. विशिष्ट पादप जातियों को संरक्षण देते है ।
3. राजस्थान का राज्य वृक्ष खेजड़ी, राज्य फूल रोहिड़ा एवं राज्य पक्षी गोडावण घोषित किया गया है ।
4. प्रदेश में ग्वारपाठा की प्रमुख जातियाँ पाई जाती है जिनका औषधि, सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में काम लिया जाता है ।

बोध प्रश्न

1. ठण्डे मरूस्थल व उष्ण मरूस्थल के 2 भेद लिखों ।

---

2. भारत में मरुस्थल किस प्रदेश में अधिक पाया जाता है ।

---

3. मरूस्थल के अजैविक घटक की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखो ।

---

4. राजस्थान के राज्य वृक्ष, राज्य पुष्प एवं राज्य पक्षी के नाम लिखो ।

---

5. मरूस्थल का जैव विविधता संरक्षण में दो प्रमुख योगदान लिखिए ।

3.2.3 घास के मैदान (Grassland Ecosystem)

घास क्षेत्र सम्पूर्ण विश्व में 45–46 मिलियन वर्ग किलोमीटर में विस्तृत है । उष्ण कटिबंधीय, शीतोष्ण तथा अल्पाइन क्षेत्रों में फैले ये क्षेत्र सम्पूर्ण वनस्पति आच्छद का लगभग 24 प्रतिशत है । (शेन्ट्ज 1954)

घास क्षेत्र वहाँ पाये जाते है, जहाँ औसत वर्षा वन तथा मरूस्थल क्षेत्र की मध्यवर्ती होती है । तापमान के आधार पर घास के मैदानों को दो वर्गो में वर्गीकृत किया जाता है ।

(A) उष्ण कटिबंधीय घास के मैदान (Tropical grassland)

सवाना (वर्षा 60 इंच के लगभग) अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका ।

(B) शीतोष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान (Temperate Grassland)

दक्षिण एशिया(वर्षा 10–30 इंच) स्टेपीज–पूर्वी यूरोप, प्रेयरीज–उत्तरी अमेरिका, पम्पास–दक्षिणी अमेरिका ।

घास के मैदान में पारिस्थितिकी तंत्र की प्राथमिक उत्पादकता उच्च परन्तु जैवभार अपेक्षाकृत कम होता है । इस पारिस्थितिकी तंत्र मे घास समुदाय की प्रभाविता या अधिकता होती है । परन्तु कुछ वृक्ष भी सामान्य रूप से छितरे हुए पाए जाते है । जैसे – अफ्रीकन सवाना क्षेत्र में अकेशिया के वृक्ष ।

डबडगाऊ व शंकरनारायण ने 1973 में भारत के घास के मैदानों को निम्न 5 श्रेणियों में बांटा है:–

1. **सेहिमा -- डाईकेन्थियम** प्रकार, जो मध्य भारत, छोटा नागपुर व अरावली पर्वत श्रृंखलाओं में विस्तृत हैं, जहां औसत वर्षा 300–6350 मिमी तक होती है । इस क्षेत्र में 24 बहुवर्षीय घास जातियां पाई जाती हैं । इसके अलावा 129 शाक, जिनमें 56 जातियां लेग्यूम कुल की पाई जाती है ।
2. **डाईकेन्थियम -- सेन्क्रस -- लेसुरस** प्रकार, जो गुजरात व राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश व पंजाब में पाई जाती है । यहां औसत वर्षा, 100–700 मिमी तक होती है । यहाँ 11 बहुवर्षीय घास जातियां पाई जाती हैं । इसके अलावा 45 शाक जातियां जिनमें 19 दाल कुल (लेग्यूम) के पौधे पाए जाते हैं ।

3. **फ्रैग्माइटिस--सेकेरम--इम्प्रेटेटा** प्रकार, ये ब्रह्ममपुत्र घाटी, गंगा के मैदान और पंजाब के मैदानों में पाई जाती है । इनमें 19 घास की जातियां, 56 शाक जातियां जिनमें 16 लेग्यूम कुल की जातियां पाई जाती हैं ।
4. **थिमेडा--अरूडिनेला** प्रकार, ये 350 मीटर – 2100 मीटर की ऊँचाई पर पाई जाती है । यहाँ औसतन वर्षा 1000–2000 मिमी तथा सर्दी में हिमपात होता है । 16 बहु वर्षीय घास जातियां पाई जाती है । 34 शाक जातियां, जिनमें 9 लेग्यूम जातियां पाई जाती है ।
5. **शीतोष्ण--अल्पाइन** प्रकार, ये 2100 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले स्थानों पर पाई जाती हैं । यहाँ हमेशा हिमपात होता रहता है । यहाँ 35 महत्वपूर्ण बहु वर्षीय घास जातियां, 68 शाकीय जातियां जिनमें 6 लेग्यूम पाए जाते हैं ।

घास पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना

1. **अजैविक घटक --** मृदा में उपस्थित कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ जैसे कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, सल्फर, फास्फोरस, मृदा, तापमान, प्रकाश, वर्षा, वायु आदि इसमें शामिल किये जाते है ।
2. **जैविक घटक --** इस घटक को खाद्य श्रृंखला के आधार पर तीन प्रमुख भागों में विभक्त कर सकते है ।

(A) स्वपोषित या उत्पादक -- ये प्रकाश संश्लेषण द्वारा अकार्बनिक पदार्थो जैसे कार्बन डाई आक्साइड तथा जल को कार्बनिक खाद्य में बदलते है ।

इस वर्ग में विभिन्न प्रकार की घास की जातियाँ जैसे – सेहिना, डाईकेन्थिसम, फ्रैरगमिटिस, सइनोडोन एवं कुछ वृक्ष एवं क्षुप जैसे – अकेशिया आदि होते है ।

(B) उपभोक्ता -- ये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पेड़ पौधों पर आश्रित रहते हैं । इनको पुन: तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं ।

(i) प्राथमिक उपभोक्ता -- शाकाहारी होते है जैसे – टिड्डा, चूहा, कीट, बकरी, गाय, खरगोश एवं हिरण आदि ।

(ii) द्वितीयक उपभोक्ता -- ये प्राथमिक उपभोक्ताओं पर आश्रित मांसाहारी जीव होते हैं । जैसे लोमड़ी, सियार, सर्प, बिल्ली आदि

(iii) तृतीयक या उच्च उपभोक्ता - ये द्वितीयक या मांसाहारी उपभोक्तओ पर भोजन के लिए निर्भर रहते है । ये सर्वाहारी होते है और शाकाहारी का भी भक्षण कर लेते हैं । जैसे भेडिया, बाज, गिद्ध आदि । (प्राथमिक उपभोक्ता)

(C) अपघटक -- ये वे मृतपोषी कवक व जीवाणु हैं जो धरातल पर या इससे कुछ नीचे के तल पर रहते हैं । सभी प्रकार जीवों के मरने पर मृत शरीरों या उनके अवशेषों को अपघटित कर उनके अवयवों को फिर से कार्बन, नाईट्रोजन, फास्फोरस आदि खनिज तत्वों में बदल देते हैं । अपघटक किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र में खनिज लवण व अन्य कच्ची सामग्री (Raw Material) के पुन:चक्रण (Recycling) का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं ।

कार्य

1. ये चरागाह के रूप में कार्य करते हैं ।

2. ये प्रवासी पक्षियों (Migratory birds) के लिए शरणस्थली का कार्य करते हैं ।
3. मृदा अपरदन को रोकने में सहायक होते है ।
4. स्टेपीज घास स्थल में घोड़ों की एक विशेष प्रजाति (इक्वस प्रीजेवलस्की) को संरक्षण मिला एवं प्रेरीज घास स्थल में बिलहारी जातियों (Burrowing species) को संरक्षण मिलता है ।

बोध प्रश्न

1. घास के मैदानों को तापमान के आधार पर कितने प्रकारों में बाँटा गया है ?

---

2. उत्तरी अमेरिका में किस प्रकार के घास के मैदान पाए जाते हैं ?

---

3. सवाना घास के मैदान कहाँ कही पाए जाते हैं ?

---

4. घास के मैदानों के दो प्रमुख कार्य लिखो ।

---

5. घास के मैदानों के प्राथमिक उपभोक्ता के दो उदाहरण लिखें ।

3.2.4 जलीय पारिस्थितिकीय तंत्र (Aquatic Ecosystems)

जल में उपस्थित विभिन्न अकार्बनिक लवणों की मात्रा के आधार पर जलीय पारिस्थितिकी तंत्र दो प्रकार के होते है –

(A) स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

(B) लवणीय या लवण जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

यहाँ हम केवल स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र का ही अध्ययन करेंगे । स्वच्छ जल पृथ्वी पर उपलब्ध जल का 1 प्रतिशत से भी कम है । जो कि नदियों, झीलों, हिमनद आदि रूपों में मिलता है ।

स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र दो प्रकार के होते हैं –

(i) स्थिर जल (Lentic) जैसे – झील, तालाब, आदि ।

(ii) प्रवाहित जल (Lotic) जैसे – झरना, नदी आदि ।

(i) स्थिर जल पारिस्थितिकी तंत्र

इसमें हम तालाब व झील का अध्ययन करते है । तालाब व झील प्रकाश की उपलब्धता के आधार पर तीन संस्तरों में विभाजित किए गये हैं –

(a) तटीय क्षेत्र (Littoral Zone) -- यह सबसे ऊपरी स्तर होता है, जो किनारों पर पाया जाता है । यह प्राय: गर्म होता है क्योंकि कम गहराई के कारण सूर्य की ऊर्जा को अधिक अवशोषित करता है । इस भाग में विविध जैव समुदाय पाये जाते है । उत्पादकों के रूप में–शैवाल (हरित व नीलहरित), डाएटम्स, जलीय मूलयुक्त पुष्पीय पादप जैसे–वेलिसनेरिया, ट्रापा, यूट्रीकुलेरिया, कारा, टाइफा, निम्फिया, लेम्ना पिस्टिया आदि पाये जाते हैं एवं प्राथमिक, द्‌वितीयक व तृतीयक उपभोक्ता के रूप में कीड़े, मकोड़े, छोटी मछलियाँ, उभयचारी जन्तु जैसे–मेढ़क, ड्रेगनफ्लाई, सॉप, कछुए व बतख पाये जाते है ।

(b) प्रकाशित क्षेत्र (Limnetic Zone) -- तटीय क्षेत्र के नीचे प्रकाशित क्षेत्र पाया जाता है, जिसमें प्रकाश की मात्रा तृतीय क्षेत्र से कम पाई जाती है । इस क्षेत्र में उत्पादकों के रूप में पादप प्लवक तथा उपभोक्ताओं के रूप में जन्तु प्लवक व कई तरह की मछलियाँ पाई जाती हैं ।

(c) गंभीर क्षेत्र (Profundal Zone) -- प्रकाशित क्षेत्र के नीचे गंभीर क्षेत्र पाया जाता है । यह तालाब का गहरा भाग है जो ठण्डा व सघन होता है । इसमें प्रकाश की मात्रा बहुत कम पाई जाती है । इस क्षेत्र में बहुत सारे परपोषित जीव पाये जाते हैं, जो जल में घुली ऑक्सीजन की मात्रा को ग्रहण करते हैं । जन्तु व पादप प्लवकों की जीवन अवधि कम होने के कारण उनके मृत कार्बनिक पदार्थ इसी क्षेत्र में निक्षेपित होते रहते हैं ।

इन जलीय तंत्रो का तापमान भी ऋतु के अनुसार बदलता रहता है।

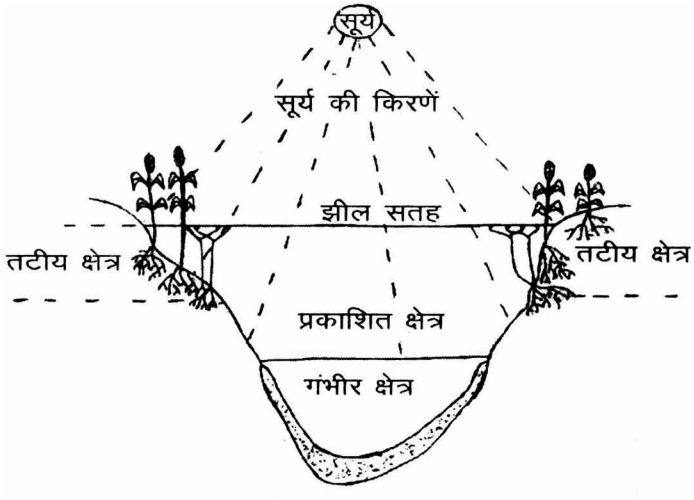

झील में क्षेत्रीयकरण

चित्र 3.1 : तालाब में क्षेत्रीयकरण

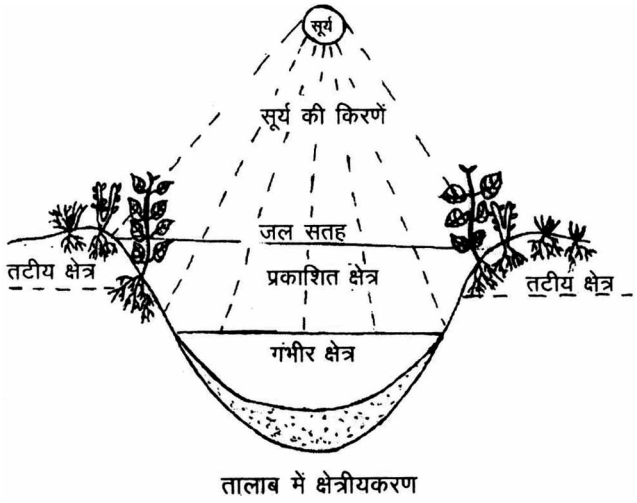

चित्र 3.2 : तालाब में क्षेत्रीयकरण

(ii) प्रवाहित जल पारिस्थितिकी तंत्र

इसमें हम झरने व नदी का अध्ययन करेंगे । इनमें जल एक निश्चित दिशा में बहता है । ये अपने उद्‌गम स्थल से प्रारम्भ होकर प्रवाहित होती है व एक अन्य जल स्त्रोत से मिल जाती है । इनमें जल के भौतिक व रासायनिक गुण उद्‌गम से अंत तक बदलते रहते है । इनका पानी अपेक्षाकृत साफ होता है । इनमें ऑक्सीजन की मात्रा स्थिर जल की अपेक्षा अधिक होती है । इनका ताप स्थिर नहीं रहता है । इनमें पादप विविधता कम होती है । परन्तु मछलियाँ (केट फिश व कार्प) पाई जाती है ।

गहराई के आधार पर इस तंत्र में तीन स्पष्ट स्तर होते हैं –

(i) प्रवाहित जल क्षेत्र (Flowing water zone)

इस क्षेत्र में जल का प्रवाह रैखिक या अस्त व्यस्त होता है परन्तु सतही जल की गति, तलीय जल की अपेक्षा अधिक होती हैं ।

(ii) तीव्र गति क्षेत्र (Rapid or Riffle zone)

नदियों के किनारे का उथला भाग, जहॉ जलधारा का वेग तीव्र होता है "तीव्र गति क्षेत्र" कहलाता है । जल की तीव्र गति के कारण तल में गाद (Silt) व अन्य सम्बन्धित पदार्थ नहीं पाये जाते है ।

(iii) कुण्ड क्षेत्र (Pool zone)

यह गहराई वाला क्षेत्र होता है, जहाँ धारा का वेग कम होता है । इसमें तल में गाद व अन्य पदार्थ निक्षेपित होते रहते है ।

प्रवाहित जल में ऑक्सीजन व खाद्‌य पदार्थो की उपलब्धता के कारण इनमें जैव–विविधता प्रचुर होती है । उत्पादकों में नील हरित व हरित शैवाल, डायटम्स, क्लेडोफोरा, फोन्टोनोलिस व उपभोक्ताओं में ड्रेगनफ्लाई, मेफ्लाई, स्टोनफ्लाई के निम्फ, सीपिया, प्लेनेरिया, कटला, कार्प, क्लेरिएस, मेढ़क आदि होते है । कुछ वर्ग जैसे – जोंक, कीट व माइट भी पाये जाते है ।

कार्य

(i) जल जीवन का आधार है और यह पानी में पाये जाने वाले विविध जीवों को जीवन करता है ।
(ii) पानी वातावरणीय ताप को नियमित बनाये रखने में सहायता करता है ।

(iii) पानी की विशिष्ट ऊष्मा अधिक होने के कारण यह एक उपयुक्त जैव माध्यम का कार्य करता है।

बोध प्रश्न

1. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र कितने प्रकार के होते है ?

   ---

2. तटीय क्षेत्र व प्रकाशित क्षेत्र के जीव जात (Biota) लिखिए ।

   ---

3. गहराई के आधार पर प्रवाहित जल पारिस्थितिकी तंत्र को कितने भागों में बांटा गया है?

   ---

4. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र के महत्व के बारे में लिखिए ।

3.3 सारांश (Summary)

इस इकाई में वन, घास के मैदान, मरूस्थल एवं जलीय पारिस्थितिकी तंत्रों की संरचना एवं कार्यो का विस्तृत वर्णन किया गया है । समग्र भू धरातल पर 40 प्रतिशत वन पाए जाते हैं और भारत में सम्पूर्ण क्षेत्रफल के दसवें भाग में वन हैं । पारिस्थितिकी तंत्र के अनुसार वन वहाँ पाए जाते है जहाँ वर्ष भर वर्षण/ जल वाष्पन का अनुपात अधिक रहता है । विश्व में सात प्रकार के वन पाए जाते है जबकि भारत में वनों को चौदह प्रकारों में बाँटा गया है । इनके प्रमुख जैविक घटकों में वृक्ष, शेर, तेंदुआ, हिरण, लोमड़ी, साँप, मेढक, चूहे आदि पाए जाते हैं । अजैविक घटकों में प्रकाश की उपलब्ध्ता, तीव्रता एवं अवधि, नमी, तापमान आदि घटक अधिक प्रभावशाली है ।

कम वर्षा एवं अधिक तापमान वाले क्षेत्रों में मरूस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र पाए जाते हैं । भारतवर्ष में थार का रेगिस्तान पाया जाता है जहाँ औसत वर्षा 50 मि.मि प्रतिवर्ष से कम होती है तथा अधिकतम तापमान 48^0 से. के आसपास रहता है । यहाँ प्राय: बबूल, केपेरिस, खेजड़ी, नागफनी आदि पादप पाए जाते है और चूहा, खरगोश, हिरण, गधा, ऊँट, पक्षियों में गोडावन पक्षी प्रमुख रूप से पाए जाते है ।

घास के मैदान सम्पूर्ण विश्व में 45 से 46 मिलियन वर्ग किलो मीटर में फैंले है । यह दो वर्गो में बाँटे गए है । (i) उष्ण कटिबंधीय घास के मैदान तथा (ii) शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान

उष्ण कटिबंधीय घास के मैदान में वर्षा 60 इंच के लगभग तथा शोताष्ण कटिबंधीय घास के मैदान में 10 इंच से 30 इंच वर्षा होती है । इनमें प्रमुख रूप से घास ही उत्पादक है । इसमें टिड्डा, चूहा, बकरी, गाय, खरगोश, हिरण आदि उपभोक्ता रहते है । भारत में पांच प्रकार के घास के मैदान पाये जाते है ।

जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को दो प्रकारों में विभाजित किया गया है । (i) स्वच्छ जल एवं (ii) लवणीय जल । स्वच्छ जल पारिस्थितिकी तंत्र सम्पूर्ण पृथ्वी पर 1 प्रतिशत से भी कम पाए जाते है । यह दो प्रकार के होते हैं (a) स्थिर तथा (b) प्रवाहित जल । इनमें प्रमुख रूप से जलीय पादप पाए जाते है जैसे वेलिस्नेरिया, निम्फिया, यूट्रीकुलेरिया आदि । इन पारिस्थितिकी तंत्रों में तापमान गर्मी व सर्दी में भिन्न होता है ।

3.4 शब्दावली (Glossary)

फेनेरोफाइटस, वाष्पकृति, लिटर, खाद्य श्रृंखला, उपभोक्ता, अपघटक अपमार्जक, P/E अनुपात, स्वपोषित, पुन:चक्रण, जैव विविधता, स्तरीकरण

3.5 संदर्भ ग्रन्थ (Reference)

1. Odum E.P - Fundamentals of Ecology
2. Smith R.L - Ecology and field Biology
3. Singh J.S., Singh S.P. and Gupta S.R.-Ecology Environment and Resource Conservation.

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वन पारिस्थितिकी तंत्र

1. समस्त भू–भाग के 40 प्रतिशत भाग पर वन आच्छादित हैं ।
2. पारिस्थितिकीय स्थिति के अनुसार वन वहाँ पाए जाते हैं, जहाँ पूरे वर्ष वर्षण/जलवाष्पन अनुपात अधिक होता है, एवं पूरे वर्ष अनुकूल तापमान व कम जैविक व्यवधान पाया जाता है ।
3. विश्व के समस्त वनों को निम्नलिखित 7 वर्गो में वर्गीकृत किया गया है –
   (1) उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन
   (2) शुष्क पर्णपाती वन
   (3) कंटीले वन
   (4) हापड़ी वन
   (5) पर्णपाती वन
   (6) शीतोष्ण वर्षा वन
   (7) कोणधारी वन
4. उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय वनों में अपघटकों की क्रिया अधिक होती है ।

2. मरूथल पारिस्थितिकी तंत्र

ठंडे मरूस्थल　　गर्म मरूस्थल

1. इनमें तापमान अत्याधिक कम पाया जाता है। जबकि इसमें तापमान अधिक पाया जाता है ।
2. यहाँ वर्षण हिमपात के रूप में होता है, जो कि अवशोषण योग्य नहीं होता है। यहाँ वर्षण कम तथा जल के रूप में ही होता है।

2. भारत में मरूस्थल राजस्थान राज्य में अधिक पाया जाता है ।
3. मरूस्थल के अजैविक घटकों में प्रमुख रूप से धूलभरी आंधिया, सूखा, उच्च तापमान पाया जाता है ।
4. राजस्थान का राज्य वृक्ष – खेजड़ी
   राज्य पुष्प – रोहिड़ा
   राज्य पक्षी – गोडावण
5. मरूस्थल को जैव विविधता संरक्षण में 2 योगदान निम्न हैं :–
   (1) मरूस्थल विभिन्न स्तनधारी, पक्षियों एवं सरीसृप की शरण स्थली का कार्य करते हैं ।
   (2) विशिष्ट पादप जातियों को संरक्षण देते हैं ।

3. घास के मैदान

1. तापमान के आधार पर घास के मैदानों को निम्नलिखित 2 वर्गो में बांटा गया है –
   (1) ऊष्ण कटिबंधीय घास के मैदान
   (2) शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान
2. उत्तरी अमेरिका में प्रेयरीज़ घास के मैदान पाएं जाते हैं ।
3. घास के मैदान अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका में पाए जाते हैं ।
4. घास के मैदानों के 2 प्रमुख कार्य निम्न हैं :–
   (1) ये चरागाह के रूप में कार्य करते हैं ।
   (2) प्रवासी पक्षियों के लिए शरणस्थली का कार्य करते हैं ।
5. घास के मैदानों के प्राथमिक उपभोक्ताओं के 2 उदाहरण निम्न हैं :–
6. टिड्डा चूहा बकरी इत्यादि ।

4. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

1. जल में उपस्थित विभिन्न अकार्बनिक लवणों की मात्रा के आधार पर जलीय पारिस्थितिकी तंत्र निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं :–
   (1) स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र
   (2) लवणीय या लवण जलीय पारिस्थितिकी तंत्र
2. तटीय व प्रकाशित क्षेत्र के जीव–जात में :–
   (1) <u>तटीय क्षेत्र</u> – सैवाल, डायटम्स, जलीय मूलयुक्त पुष्पीय पादप जैसे – ट्रापा, यूट्रीकूलेरिया, कारा, टाइका, निम्फिया, लेम्ना, पिस्टिया आदि ।
   (2) प्रकाशित क्षेत्र – पादप प्लवक, जन्तु (प्लवक) कई तरह की मछलियाँ ।
3. गहराई के आधार पर प्रवाहित जल पारिस्थितिकी तंत्र को निम्नलिखित तीन क्षेत्रों में बांटा गया है :–

(1) प्रवाहित जल क्षेत्र

(2) तीव्र गति क्षेत्र

(3) कुण्ड क्षेत्र

4. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र का महत्व :–

(1) जल जीवन का आधार है, वह यह पानी में पाए जाने वाले विविध जीवों को संरक्षण प्रदान करता है ।

(2) पानी वातावरण वातावरणीय ताप को नियमित रखने में सहायता करता है ।

(3) पानी की विशिष्ट ऊष्मा अधिक होने के कारण यह एक उपयुक्त जैव माध्यम का कार्य करता है ।

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न (Question for Practice)

1. भारत में पाए जाने वाले वनों के प्रकार लिखो ।

2. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में पाई जाने वाली वनस्पति एवं प्राणियों के प्रमुख नाम लिखिए ।

3. मरूस्थल कहॉ पाया जाता है ? इनके अजैविक घटकों के बारें में लिखिए ।

4. घास के मैदान कितने प्रकार के होते है ? उनमें क्या भेद है ?

इकाई – 4

वन

Forest

इकाई संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 भारत में वनों की स्थिति

4.3 वनों के महत्व

4.4 वनों का अतिदोहन

4.5 इमारती लकड़ी का निष्कर्षण

4.6 खनन का वनों पर प्रभाव

4.7 जन जातियों द्वारा वन संरक्षण के उपाय

4.8 इकाई सारांश एवं अभ्यास कार्य

4.9 संदर्भ ग्रन्थ

4. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य

- भारत में वनों की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करना ।
- भारत की अर्थव्यवस्था एवं पर्यावरण संतुलन में वनों की भूमिका का अध्ययन करना ।
- - वन किसी भी देश के पर्यावरण के प्रमुख अंग तथा महत्वपूर्ण प्राकृतिक सम्पदा होते है । वनों के अतिदोहन के साथ मानव का विनाश भी जुडा हुआ हैं ।
- इमारती लकड़ी का निष्कर्षण एवं खनन का वनों पर पड़ने वाला प्रभाव ।
- खनिज एक महत्वपूर्ण संसाधन हैं लेकिन वर्तमान में अत्यधिक खनन क्रिया द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण की एक चिन्ताजनक स्थिति पैदा हो गई हैं ।
- - वनों के विनाश का एक मुख्य कारण मानव द्वारा विभिन्न उपयोगों के लिये वनों के पेड़ों को काटकर लकड़ी प्राप्त करना हैं । वन संरक्षण के लिये वनों की सुरक्षा करना आज अत्यधिक आवश्यक हो गया हैं ।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय संस्कृति में वनों का अत्याधिक महत्व रहा हैं । हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों में वनों का महत्व वर्णित हैं । वन ऋषि मुनियों की तपोभूमि में रहे हैं । हमारे धर्म ग्रंथों में वनों को देवता तुल्य मानकर पूजने की परम्परा रही हैं । लेकिन यह अत्यन्त ही दुख की बात हैं कि आधुनिक समय में मनुष्य ने वनों का निर्दयता से शोषण / विनाश किया है । वनों में ही हजारों वर्षो की सम्पदा 1950–1960 तक के बीच ही कई कारणों से पूरी तरह नष्ट हो गई हैं । विविध प्रकार के कच्चे माल

के लिये मनुष्य वनों पर ही आश्रित रहता हैं । प्राचीनकाल में जब मानव सभ्यता विकसित हो रही थी उस समय मनुष्य पूर्ण रूप से वनों पर ही आश्रित था । धीरे–धीरे जब मानव सभ्यता विकसित हो गई तथा जनंसख्या बढ़ती गई तो मानव अपने निजी स्वार्थो की पूर्ति हेतु असीमित रूप से वनों को काटता गया । इमारती लकड़ी तथा अन्य वन उपजों को प्राप्त करने के लिये भी वनों को अत्यधिक मात्रा में काटा जा रहा हैं यदि हमारे देख में इसी तरह वनों का विनाश होता गया तो यहां की अनेक बहुमूल्य वृक्ष प्रजातियाँ लुप्त हो जायेंगी । देश में प्रतिदिन लगभग 500 हैक्टर वनों का सफाया किया जा रहा हैं । अत: वनों का अति दोहन देश के लिये चिन्ता का विषय है ।

वन महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन तथा प्रमुख राष्ट्रीय, आय का स्त्रोत हैं जो आदिकाल से ही मनुष्य की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करते आ रहे है । वनों का पर्यावरण तथा भौगोलिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान हैं तथा मानव की दैनिक क्रियाओं को सम्पन्न करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं ।

4.2 भारत में वनों की स्थिति

पृथ्वी के कुल स्थालीय क्षेत्रों का लगभग एक–तिहाई भाग, वनों से भरा हैं । उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के आर्द्र या अर्ध–आर्द्र भागों में वन तथा वनस्थली का प्राकृतिक प्रकार का वनस्पति आवरण होता हैं ।

20वीं सदी की शुरूआत में लगभग 30 प्रतिशत भूमि वनों से धरी थी, परन्तु 20वीं सदी के अंत में यह घटकर 19.4 प्रतिशत रह गई । नेशनल फॉरेस्ट पॉलिसी(1988) द्वारा निर्देशित मैदानी क्षेत्र में 33 प्रतिशत वन क्षेत्र से यह कम हैं । पहाड़ी इलाकों में कम से कम 67 प्रतिशत भूमि वन से धिरी होना चाहिए । उपस्थित वनों मे केवल दो तिहाई संरक्षित वन हैं, जबकि बचे हुए सारे वन निम्नीकृत वन है । आज प्रति व्यक्ति वनों की उपलब्धता 0.06 हैंक्टर हैं जो विश्व स्तर पर बहुत कम हैं(0.064 हैक्टर प्रति व्यक्ति) ।

वर्ग	क्षेत्र(घन कि.मी.)	प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र
घने वन	3,77,358	11.5
खुले वन	2,55,065	7.8
मैंग्रोव	4,871	0.1
योग	6,37,293	19.4
गुल्म वन	5,896	1.6
वन रहित(अन्य भूमि)	25,98,074	79
योग	32,87,263	100.00

भारतीय वनों का वर्गीकरण

चैम्पियन व सेठ (1967) ने भारतीय वनों के कुल 116 प्रकार बताए हैं । सेठ ने चैम्पियन की योजना को संशोधित करके भारतीय वनों को चारप्रमुख वर्गो व 163 उपवर्गी में बाँटा हैं । उपवर्गो को जलवायु, धरातलीय विशेषता व पौधों के प्रकार के आधार पर सुनिश्चित किया हैं:–

1. **आर्द्र उष्ण कटिबंधीय वन :** यह भारत के महत्वपूर्ण वन हैं इनको पाँच उपवर्गो में विभाजित किया गया हैं:

   (i) उष्ण कटिबंधीय आर्द्र सदाबहार वन : इन वनों का विस्तार 250 सेमी. वर्षा वाले प्रदेशों सं मिलता हें । यह अत्यन्त घने व उँचे वृक्षों वाले वन हैं । इनके महत्वपूर्ण वृक्ष महोगनी, लाप्लास, तुल्सर आदि हैं । ये वन असम, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, नागालैण्ड और अण्डमान निकोबार द्वीप समूहों में ये पाये जाते हैं ।

   (ii) उष्ण कटिबंधीय आर्द्र अर्थ सदाबहार वन : इन वनों का विस्तार 200 से 250 सेमी. वर्षा वाले भागों में मिलता हैं । बाँस, ईधन, लकड़ी इनसे प्राप्त होती हैं । इनसे वैसे अनेक तरह की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं । इन वनों ने कागज, दियासलाई उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया हैं । ये वन असम घाटी, पश्चिमी घाट पर्वत की पतली पट्टी, पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा के तटीय भाग पर मिलते हैं ।

   (iii) आर्द्र पतझड़ वन : यह मानसून वन हैं । इनका विस्तार पूर्व व पश्चिमी घाट के बीच फैले प्रायद्वीपीय पठार पर मध्यप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल में मिलता हैं प्रमुख वृक्ष सागवान, शीशम, चंदन, रोजवुड हैं । साल, सागवन के वृक्ष बहुतायत से मध्य प्रदेश में मिलते हैं । उप हिमालय व कर्नाटक में शीशम काफी मिलता हैं । कर्नाटक चंदन की लकडी के लिये महत्वपूर्ण हैं । पहुआ और खैर के वृक्ष यही पर काफी मिलते है । ये वन आर्थिक दृष्टि से काफी उपयोगी हैं ।

   (iv) साल वन : यह सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक वन हैं इसकी लकड़ी भवन निर्माण तथा रेल की पटरियों के लिये उपयोगी हैं । यह कुल वनों के 12 प्रतिशत भाग पर विस्तृत हैं । इनका क्षेत्र छोटा नागरपुर का पठार, बघेलखण्ड, उडीसा की पहाडियों और समीपवर्ती पूर्वी घाट पर विस्तृत मिलता है । ये वन आर्द्रता की दृष्टि से मध्यम परिस्थितियों में अधिक पनपते हैं ।

   (v) ज्वारीय वन : समुद्री तटों पर निचले दलदली भागों में व नदियों के डेल्टा भाग में मिलते है । गंगा–डेल्टा के सुन्दरवन इसी प्रकार के वन हैं । डेल्टा के ऊपरी भाग में केतकी, बेंत तथा ताड़ के वृक्ष पाये जाते हैं ।

2. **उष्ण कटिबंधीय शुष्क वन :** ये वन 100 सेमी. से कम वर्षा वाले प्रदेशों में मिलते है तथा स्थानीय विभिन्नताएँ रखते हैं । ये चार प्रकार के है:

   (vi) शुष्क सदाबहार वन : इनका विस्तार तमिलनाडु के तटीय भाग तथा आन्ध्र प्रदेश के दक्षिण–पूर्वी प्रदेश पर मिलता हैं । यह लौटते मानसून से प्राप्त वर्षा वाले क्षेत्र हैं । इन वनों को कृषि के लिये साफ कर दिया गया हैं । केजुराइना प्रमुख वृक्ष है ।

   (vii) शुष्क पतझड़ वन : इनका विस्तार प्रायद्वीपीय पठार के मध्यवर्ती भाग, हिमालय के तराई भाग व नदियों किनारों पर मिलता है । साल, बाँस, खैर तथा पैडूला प्रमुख वृक्ष हैं । सवाई घास भी यहाँ काफी होती है ।

   (viii) शुष्क कंटकी झाड़ी वाले वन : ये वन देश के उत्तरी–पश्चिमी भाग तथा पश्चिमी घाट के पूर्व में वृष्टि छाया प्रदेश में पाए जाते हैं । इनके प्रमुख वृक्ष बबूल, झाऊ तथा खेजडा हैं ।

(ix) मरूस्थलीय वन : दक्षिणी तथा पश्चिमी मरूस्थल में इसी प्रकार के वन मिलते हैं इनमें खजूर, नागफनी, ताड़ के वृक्ष व कंटीली झाडियाँ है ।

3. उपोष्ण कटिबंधीय पर्वतीय वन : ये वन नीलगिरि और पालनी पहाड़ियों की 1,070 से 1,525 मीटर की ऊँचाई पर तथा उच्च सहयाद्रि, सतपुड़ा व मैकाल पर्वतों के क्षेत्र में मिलते हैं । ये हिमालय में 1,000–2,000 मीटर की ऊँचाई पर भी मिलते हैं । प्रमुख वृक्ष ओक, चेस्टनट, एश, बीच है । निचले ढालों पर साल भी मिलता हैं ।

(x) उपोष्ण कटिबंधीय पाइन वन : पश्चिमी हिमालय में 1 000 मीटर तक की ऊँचाई पर पाइन (चाड़) के वृक्ष मिलते हैं ।

(xi) उपोष्ण कटिबंधीय शुष्क सदाबहार वन : यह कश्मीर में हिमालय के पार प्रदेशों में मिलते हैं । यहाँ पर वर्षा की मात्रा 50 से 100 सेमी. के बीच रहती हैं । इस वर्षा का लगभग एक चौथाई भाग शीत ऋतु में प्राप्त होता हैं । जैतून यहाँ का प्रमुख वृक्ष हैं । ईधन व चारे के उपयुक्त भी अनेक पौधे उगते हैं ।

4. पर्वतीय शीतोष्ण कटिबंधीय वन : ये अधिक ऊँचाई वाले वन हैं ।

(xii) आर्द्र शीतोष्ण वन : ये वन 700 से 1,800 मीटर की ऊँचाई पर 125 से 200 सेमी. वर्षा वाले भूभाग पर पाए जाते हैं । यहाँ के प्रमुख वृक्ष लारेल हैं । ये नीलगिरि व अन्नामलाई पहाड़ियों के निकवर्ती भागों में पाए जाते है । स्थानीय तौर पर इन्हें शोला कहते हैं । मंगोलिया, सिनकोना वाटल और यूकेलिप्टस वृक्ष भी यहां पर मिलते हैं ।

(xiii)कम आर्द्र शीतोष्ण वन : ये वन 1500 से 3,400 मीटर की ऊँचाई पर 100 से 125 सेमी. वर्षा वाले भूभाग पर पाए जाते हैं । यहाँ पर चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार वृक्षों की अनेक किस्में मिश्रित रूप से पाई जाती हैं । ओक, लारेल और चेस्टनट प्रमुख वृक्ष हैं । पाइन, सीडन, सिल्वर, फर, देवदार के वृक्ष भी बहुतायत से पाए जाते हैं । पश्चिमी भागों में देवदार अधिक मिलता हैं । इसमें अच्छी उपयोगी लकड़ी प्राप्त होती हैं ।

(xiv)शुष्क शीतोष्ण वन : ये हिमालय के वृष्टि छाया प्रदेशों में जहाँ वर्षा 100 सेमी. से कम होती हैं, में पाए जाते हैं । ये कोणधारी वन हैं देवदार, जूनियर प्रमुख वृक्ष हैं । कहीं–कहीं साइप्रस, एल्डर वृक्ष भी पाए जाते हैं ।

5. उच्च प्रदेशीय वन : हिमालय में 3,400 मीटर से अधिक ऊँचाई पर सिल्वर, फर, जूनियर, पाइन, बर्च, रोडोडेन्ट्रोन वृक्ष भी मिलते हैं । यह वृक्ष सघन झाड़ी के रूप में दिखाई पड़ते हैं । ये वृक्ष बौने, सुंदर व मनोहारी होते हैं । अल्पाइन घास भी यहाँ पर पाई जाती हैं ।

बोध प्रश्न :

1. 20वीं सदी के शुरुआत में लगभग कितने प्रतिशत भूमि वनों से घिरी हैं ?
2. चैम्पियन ने भारतीय वनों के कुल कितने प्रकार बताए ?

4.3 वनों का महत्व

वनों के महत्व के लिये अग्नि पुराण में कहा गया हैं, एक वृक्ष दस पुत्रों के बराबर होता हैं, और पुत्र भी वह जिससे भूमि को आर्द्रता, शीतल वायु, छाया मिलती हैं । भूमि का अपरदन रूकता हैं तथा खाद के लिये शुष्क पत्तियाँ मिलती हैं और खाने के लिये अनेक प्रकार के कन्द, मूल, फल । ऐसा पुत्र जिसकी देखभाल 5 वर्षा तक करनी पड़ती हैं, उसके उपरांत उसे न दूध की आवश्यकता है और न परिचारिका की ।" वन सकल प्राणी जगत को विविध रूप, प्रकार एवं व्यवस्था से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से भोजन प्रदान कर उनके प्राणाधार हैं, पोषक हैं ।

वनों में सभ्यता का जन्म, उस का विकास एवं फूलना–फलना हु आ हैं । जहाँ कहीं इनका विकास रूक़ जाता हैं वहीं अन्ततः शुष्कता का साम्राज्य होकर मरूस्थलों की उत्पत्ति हो जाती हैं । वनों के महत्व इस प्रकार हैं :

1. वनों से ईधन, इमारती लकड़ी तथा अन्य पदार्थ कच्चे माल के रूप में प्राप्त होते हैं ।
2. वन मिट्टी एवं जल जैसे महत्वपूर्ण संसाधनों की सुरक्षा एवं संरक्षण करते हैं ।
3. वन आच्छादित क्षेत्र वायु मण्डल की आर्द्रता बनाये रखते हैं, जिससे अधिक वर्षा होने की संभावना रहती हैं ।
4. ये नदियों के प्रवाह को नियमित करते हैं, बाढ़ रोकते या कम करते हैं ।
5. वन अनेक पशु–पक्षियों और जीव–जन्तुओं का आश्रय स्थल होते हैं । शेर जैसे वन्य जीव को आश्रय देकर पर्यावरण संतुलन की भूमिका निर्वाह करने में सहायक बनते हैं ।
6. वनों से औषधियाँ प्राप्त होती हैं । जिनसे अनेक अस्वस्थ्य लोगों का उपचार संभव होता हैं ।
7. कई प्रकार के कुटीर उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं, जैसे बेंत फर्नीचर, खिलौने आदि।
8. गोंद लाख, कत्था, रबर, शहद, मोम आदि न जाने कितने प्रकार की गौण उपजें वनों से प्राप्त होती हैं ।
9. वन ऑक्सीजन अर्थात प्राण वायु के संचित कोष स्थल हैं जो कार्बनडाईऑक्साइड को अवशोषित कर ऑक्सीजन देते हैं । विश्व तापन को अप्रत्यक्ष रूप से रोकने वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं ।
10. जल–चक्र तथा वायु–चक्र में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करते हैं ।
11. वन भूमि की उर्वरता को बढ़ाते हैं । वृक्षों से भूमि पर गिरने वाली पत्तियां सड़–गलकर मिट्टी में मिल जाती हैं, जिनसे मिट्टी को जीवाश्म की प्राप्ति होती हैं ।
12. वन उद्योगों से होने वले प्रदूषण को रोकते हैं । वनों की घनी वृक्षावली कई प्रकार की विषैली गैसों का अवशोषण करती हैं ।
13. भारत की अर्थव्यवस्था में वनों का महत्वपूर्ण स्थान हैं । वर्तमान में देश की राष्ट्रीय आय का लगभग 29 प्रतिशत कृषि उद्योग से प्राप्त होता हैं । इसमें लगभग 2 प्रतिशत वन सम्पत्ति द्वारा मिला हैं ।
14. भारत में वन पशुओं के लिये उत्तम चारागाह उपलब्ध करवाते हैं । इसके अलावा यही ग्रामीणों द्वारा अपने जीवन यापन के लिए कन्दमूल फल एकत्रित किए जाते हैं ।

15. वन बड़ी संख्या में विभिन्न कार्यो के अन्तर्गत रोजगार उपलब्ध कराते है । ये लोग वनों में लकड़ी काटने, चीरने, वस्तुएँ ढोने, नाव, रस्सी, बना आदि तैयार करने तथा लाख, गोंद, राल, कंदमूल, फल, जड़ी बूटियाँ, दवाईयाँ आदि एकत्रीकरण का कार्य करते हैं । वनों में लगभग 2.5 करोड़ आदिवासी निवासित हैं और उनके जीवनयापन एवं अनेक कुटीर उद्योगों ' का यही वन आधारभूत महत्वपूर्ण साधन हैं ।

4.4 वनों का अतिदोहन

वन किसी भी देश के पर्यावरण के प्रमुख अंग तथा महत्वपूर्ण प्राकृतिक सम्पदा होते हैं । वनों के अतिदोहन के साथ मानव का विनाश भी जुड़ा हुआ हैं । इसके बावजूद भी वनों का तेजी से उन्मूलन हो रहा हैं अर्थात वनों को काटा जा रहा हैं और उनका ह्रास हो रहा हैं । विनाश के अनेक कारण हैं जिनमें निरन्तर बढती जनसंख्या प्रमुख कारण हैं । जनसंख्या वृद्धि के साथ कृषि योग्य भूमि में वृद्धि करने, भवन, सड़क, बाँध एवं अनेक परियोजनाओं के निर्माण, फर्नीचर, ईधन, पशुपालन, चारा, शहरीकरण, औद्योगीकरण, कृषि योग्यभूमि आदि के लिये वनों की कटाई का काम तीव्र गति से करना आदि वन विनाश के प्रमुख कारण हैं इस प्रकार वनों के कटने व ह्रास होने का प्रमुख कारण यहां वनों की क्षमता से अधिक जैविक दबाव होना हैं ।

वन प्राकृतिक संसाधन हैं तथा ऐसी सम्पदा हैं, जिसका उपयोग मानव आदिकाल से करता आया हैं और आज भी कर रहा हैं, किन्तु आज के तकनीकी व वैज्ञानिक युग में बढती जनसंख्या के दबाव और मानव की स्वार्थपरता ने इस प्राकृतिक सम्पदा के पर्यावरणीय महत्व को समझा तथा उसके उन्मूलन में ही प्रवृत हो गया । यह वनोन्मूलन मानव–सभ्यता की विकास यात्रा का परिणाम हैं, यद्यपि यदा–कदा प्राकृतिक कारण और वन की आग भी इन्हें नष्ट करती हैं, परन्तु यह उतनी हानिप्रद नहीं हैं, जितना की मानव द्वारा वनों का विनाश हैं ।

वन विनाश के कारण - वनोन्मूलन अथवा वन विनाश के मुख्य कारणों को निम्न प्रकार समझाया जा सकता हैं ।

1. कृषि के लिये वन विनाश

आज हमें विश्व में जो कृषि–क्षेत्र दिखाई देता हैं, उसमें से अधिकांश वनों को नष्ट व साफ करके प्राप्त किया गया हैं । यह मानव के लिये आवश्यक भी था क्योंकि कृषि–क्षेत्रों से प्राप्त अन्न रूपी भोजन मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता हैं, परन्तु जब जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होने से जनसंख्या विस्फोट हुआ तो वनोन्मूलन का प्रारम्भ हुआ, जो आज एक समस्या बन गया हैं । कृषि अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि कृषि–उपज से मनुष्यों के पेट भरते हैं, लेकिन यदि इसके लिये वनों को नष्ट तथा समाप्त किया जायेगा तो पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और कृषि पर भी । यहीं नहीं अफ्रीका, एशिया तथा दक्षिणी अमेरिका में आज भी स्थानान्तरित कृषि करने के लिये वनों को जलाया जाता हैं, उसके बाद कृषि–भूमि प्राप्त की जाती हैं तथा कुछ वर्षो तक वहाँ कृषि करके अन्य स्थानों पर पुनः यही क्रिया की जाती हैं । एक अनुमान के अनुसार दुनिया में लगभग 4 करोड़ वर्गमीटर क्षेत्र में बसने वाले 20 करोड़ आदिवासी इसी पद्धति से कृषि–कार्य करते हैं । इस प्रकार की स्थानान्तरित कृषि से होने वाली क्षति का अनुमान इससे लगाया जा सकता हैं कि अकेले आइवरी कोस्ट में 1956 से 1966 तक के दस वर्षो में 40 प्रतिशत वन स्थाई रूप से नष्ट हो गये । भारत में भी इस प्रकार की खेती

मिजोरम, नागालैण्ड, मणिपुर, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, व असम में की जा रही हैं । एक अनुमान के आधार पर भारत में 1951–52 तथा 1987–88 के मध्य कृषि कार्य के लिये 29.7 लाख हेक्टर भूमि से वनोन्मूलन किया गया । इस प्रकार निरन्तर बढ़ते जनसंख्या के दबाव के कारण कृषि के लिये वनों का विनाश किया जा रहा है । दूसरे शब्दों में जनसंख्या वृद्धि कृषि, वनोन्मूलन का एक मुख्य कारण हैं ।

2. निर्माण कार्यो हेतु वनोन्मूलन

जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ आवासीय भूमि की अधिक आवश्यकता, उद्योगों, रेल लाईनों, तथा सड़कों का विस्तार, शहरीकरण और नगरों का फलाव तथा नदियों पर बड़े बाँधों का निर्माण भी वनोन्मूलन का मुख्य कारण रहा हैं, क्योंकि भूमि का विस्तार तो सीमित हैं तथा अधिक क्षेत्र की आवश्यकता को वनों को समाप्त करके ही पूरा किया जा सकता हैं । भारत में ही वर्ष 1951 -52 से 1985-86 के मध्य नदी घाटी योजनाओं के निर्माण के अन्तर्गत 584 लाख हेक्टेयर, सडक निर्माण कार्यो में 73000 हेक्टेयर, उद्योगों में 146 लाख हेक्टेयर और अन्य विधि निर्माण कार्यो हेतु 938 लाख हेक्टेयर भूमि से वनों को काटा गया । इसके बाद के वर्षा में तो इससे भी अधिक वनों को नष्ट किया गया । जितने भी बड़े बाँध बनाये जाते हैं । उनमें हजारों किमी. का क्षेत्र जलमग्न हो जाता हैं तथा उसी के साथ वन भी समाप्त हो जाते हैं । ये बाँध लाभप्रद होते हुए भी पारिस्थितिकी पर विपरीत प्रभाव डालते हैं ।

3. खनिज–खनन के लिये वन विनाश

विश्व में खनिज–खनन के लिये विस्तृत भू–भाग की खुदाई की जाती हैं, परिणास्वरूप उन क्षेत्रों के व निश्चित रूप से नष्ट हो जाते है । विश्व के अधिकांश देशों में जहाँ खनिजों का व्यापारिक खनन होता हैं, वहां के वनों के क्षेत्र में कमी आ जाती हैं । भारत में बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश के खनिज प्रदेश इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । स्थानीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर भी इसका प्रभाव वन विनाश के रूप में पड़ता है, परन्तु खनिजों से होने वाले लाभों के अधिक होने से वनों विनाश अवश्यम्भावी हो जाता है ।

4. काष्ठ, ईधन तथा अन्य उपयोग हेतु वन विनाश

वनों से प्राप्त लकड़ी को विविध रूप में उपयोग में लेने की मानव की प्रवृत्ति रही हैं तथा सभ्यता के विकास के साथ–साथ यह प्रवृत्ति कम होने के स्थान पर अधिक से अधिकतर तथा अधिकतर से अधिकतम होती जा रही हैं । ईधन के लिये वनों से प्राप्त लकड़ी का उपयोग तो मानव अग्नि के अविष्कार के समय से ही करता आ रहा हैं । यद्यपि विकसित देशों अन्य वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का विकास हो जाने से ईधन के रूप में लकड़ी का उपयोग भवन–निर्माण, जहाज, फर्नीचर, रेल के डिब्बे, रेल लाईनों के स्लीपर, सेल्यूलोज, कागज आदि के निर्माण के लिये भी किया जाता हैं । इन सबके लिए अत्यधिक मात्रा में वनों की व्यापारिक कटाई स्तर पर शोषण आज पर्यावरण संकट का कारण बन गया हैं । कागज, दियासलाई, धागा, रबर, पेन्ट, वारनिश, रेग़जीन, कत्था, प्लाइवुड लाख आदि वस्तुओं की प्राप्ति के भी वनों को काटा जाता हैं । एक अनुमान के अनुसार दुनिया में लकड़ी–उत्पादों से प्रतिवर्ष 216 करोड़ अरब रूपयों की आय होती हैं । सोवियत रूस, स्केन्डेनिवया और उष्ण. कटिबंधीय प्रदेशों में वनों का

व्यापारिक स्तर पर शोषण आज भी होता हैं तथा यह वनोन्मूलन का एक मुख्य कारण हैं । इसलिये निश्चित हैं कि यह वनोन्मूलन का मुख्य कारण हैं ।

बोध प्रश्न :-

1. वनों के दो महत्व लिखिए ।
2. वनों के अतिदोहन के दो मुख्य कारण लिखिए ।

4.5 इमारती लकड़ी के निष्कर्षण

वनोन्मूलन अथवा वन विनाश का एक प्रमुख कारण इमारती लकड़ी प्राप्त करना है । फर्नीचर बनाने, भवन निर्माण तथा इनसे निकलने वाले अन्य उत्पाद को प्राप्त करने के लिये वनों को काटा जाता हैं । राजस्थान के वनों से प्रतिवर्ष 25 लाख घन फुट इमारती लकड़ी प्राप्त होती हैं । यह मुख्यत: धोकड़ा, बबूल, शीशम, सागवान, नीम आदि वृक्षों से प्राप्त होती हैं । बबूल, कीकर, कैर, खेजड़ी आदि से ईधन के लिये लकड़ी व कोयला बनाया जाता हैं । खेजड़ी, नीम, बबूल, ढ़ाक, पीपल, गूगल आदि से गोंद प्राप्त किया जाता हैं । इनमें से कुछ गोंद औषधियों के निर्माण के लिये, कुछ खानें तथा कुछ चिपकाने के काम आता हैं । खैर के वृक्षों के आन्तरिक भाग को काटकर छोटे–छोटे टुकड़े कर दिये जाते हैं । उन्हें उबाल कर कत्था तैयार किया जाता हैं । राजस्थान में पाये जाने वाले तेंदू की पत्तियों से बीडियाँ बनाई जाती हैं । बांसवाडा, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, सिरोही आदि जिलों से प्राप्त होने वाले बाँस का उपयोग कारखानों में लुग्दी बनाने में किया जाता है तथा ग्रामवासी इससे झौंपड़ी, चारपाई, टोकरियां आदि तैयार करते है । लैसीफर लक्का नाम कीड़ा बरगद, खैर, पीपल, बबूल, गूलर आदि वृक्षों की नम डालियों का रस चूसकर एक चिपचिपा पदार्थ निकालता हैं जिसे लाख कहते हैं । लाख विद्युत निरोधक होता हैं । इसका उपयोग पॉलिश, खिलौने, रेडियो तथा टेलीविजन ट्यूब आदि बनाने में होता हैं ।

4.6 खनन का वनों पर प्रभाव

खनन कार्य को मानव का विध्वंसात्मक आर्थिक क्रिया–कलाप कहा गया हैं । खनिज एक महत्वपूर्ण संसाधन हैं लेकिन वर्तमान में अत्यधिक खनन क्रिया द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण की एक चिन्ताजनक स्थिति पैदा हो गई हैं । खनन के आस–पास के क्षेत्रों में खड्डे खोदने, विस्फोट करने तथा हानिकारक गैसों के निकलने से वहां का सम्पूर्ण परिवेश तेजी से आक्रमित होता जाता हैं । वहाँ के वन्य प्राणी नष्ट होते जाते हैं या फिर दूसरी जगह प्रवास कर जाते हैं । खनन में रूकावट के कारण उस क्षेत्र के वृक्षों को काट दिया जाता हैं । इसके लिये अतिरिक्त खनन क्रिया के निम्न घातक परिणाम होते हैं–

(i) खनन क्षेत्रों से बसी हुई ग्रामीण बस्तियाँ शांति भंग होने के कारण उजड़ जाती हैं ।

(ii) खनन हेतु किये जाने वाले विस्फोट के द्वारा वहाँ के सभी जीव जन्तु अन्यत्र पलायन कर जाते हैं ।

(iii) खनन के समय खोदी जाने वाली गहरी खाने व सुरंग के कारण वर्षा काल में तेजी से अपरदन होता हैं जिससे सम्पूर्ण क्षेत्र उबड़–खाबड़ हो जाता हैं ।

(iv) खनन द्वारा होने वाले प्रदूषण से भूमि का उपजाऊपन खत्म हो जाता हैं ।

(v) कोयले जैसी खानों में कभी–कभी आग लग जाने से जान–माल की भारी हानि होती हैं ।

4.7 जन जातियों के द्वारा वन संरक्षण के उपाय

वनों के महत्व व उनकी आवश्यकता को देखते हुए जन जातियों के द्वारा वन–संरक्षण के लिये किये गये प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं–

1. नियंत्रित तथा उचित विधि से कटाई

वनों के विनाश का एक मुख्य कारण मानव द्वारा विभिन्न उपयोगों के लिये वनों के पेड़ों को काटकर लकड़ी प्राप्त करना हैं । पूरी दुनिया में प्रतिवर्ष लगभग 1600 मिलीयन घन मीटर लकड़ी का उपयोग विभिन्न कार्यो में किया जाता हैं । ईधन के साथ–साथ लकड़ी के व्यापारिक तथा व्यावसायिक उपयोग में निरन्तर वृद्धि हो रही हैं, परिणास्वरूप वनों का विनाश अत्यधिक तीव्र गति से हो रहा हैं । इसलिये वन संरक्षण के लिये प्राथमिक उपाय नियंत्रण एवं उचित विधि से वनों से वनों से लकड़ी की कटाई करना हैं जिससे वनों का अनवरत व दीर्धकालिक उपयोग संभव हो सके । सामान्यतया लकड़ी कटाई करने की तीन विधियों का प्रयोग उचित प्रबन्धन के लिये किया जाता हैं, जो कि निम्नलिखित हैं–

(i) निर्वृक्षीकरण

(ii) वरणात्मक कटाई

(iii) परिरक्षित कटाई

निर्वृक्षीकरण वनों के उन क्षेत्रों में किया जाता है, जहां एक ही प्रकार की लकड़ी का विस्तार हो । एक समान आयु के वृक्षों को व्यावसायिक दृष्टि से एक खण्ड विशेष से काट लिया जाता हैं तथा उन्हें पुन: अंकुरित होने को छोड दिया जाता हैं । वरणात्मक कटाई में परिपक्व वृक्षों का चयन कर उन्हें क्रमानुसार काटा जाता हैं । अर्थात् इन वनो में सदैव वृक्ष बने रहते हैं तथा क्रमिक रूप से चयनित वृक्ष समूहों का उपयोग किया जाता हैं । परिरक्षित कटाई में निकृष्ट गुणवत्ता वाले पेडों को पहले काटा जाता हैं, जिससे उत्तम काष्ठ प्रदान करने वाले वृक्षों की तीव्र वृद्धि संभव हो सके । उसके बाद द्वितीय श्रेणी की गुणवत्ता वाले वृक्षों को काटा जाता हैं तथा अन्त में उत्तम श्रेणी की गुणवत्ता वाले वृक्षों को काटा जाता हैं तथा अन्त में उत्तम श्रेणी की गुणवत्ता वाले वृक्षों को और इसके मध्य काल में वृक्षों के पुन: अंकुरित एवं विकसित होने का समय पर्याप्त रूप से उपलब्ध हो जाता हैं ।

नियंत्रित तथा नियोजित कटाई से अभिप्राय वास्तव में यह हैं कि वृक्षों की कटाई इस प्रकार से की जाये कि क्षेत्र वृक्ष रहित न हों तथा आवश्यकतानुसार इनका उपयोग भी होता रहे । इसके लिये एक क्रमबद्ध कटाई कार्यक्रम को अपनाने की आवश्यकता होती हैं, जैसे 100 वर्ग किमी. वन का क्षेत्र हैं तो प्रतिवर्ष यदि 10 किमी. के क्षेत्र से वन काट लिये जायें तो जो क्षेत्र वन रहित होगा वह पुन: इस काल में वन युक्त हो जायेगा । वनों का विकसित होने में यदि पर्याप्त समय दिया जाये तो ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता जिससे हमारी वन समपदा नष्ट हो जाये । इस प्रकार नियंत्रित तथा नियोजित कटाई वन संरक्षण की प्राथ्ज्ञमिक आवश्यकता हैं या वन संरक्षण का प्रथम उपाय हैं ।

2. वनरक्षण

वन संरक्षण के लिये वनों की सुरक्षा करना आज अत्यधिक आवश्यक हो गया हैं । जंगली आग, बाढ़, चक्रवातीय तीव्र हवा, आधियाँ, सूखा आदि पर्यावरणीय और प्राकृतिक कारकों से वनों को हानि होती हैं । अनियंत्रित पशुचारण भी वन विनाश का कारण होने से उसका भी नियंत्रण करना आवश्यक हो गया हैं । पशु चारण हेतु क्षेत्र निश्चित होने चाहिए तथा उसे समयानुसार बदलते रहना चाहिए । नवीन पौधों की पशुओं से रक्षा आवश्यक हैं जिससे वे विकसित होकर पूर्ण परिपक्व वृक्ष बन सकें । पादप–रोगों से भी वनों की रक्षा आवश्यक हैं । जिनमें अधिकांश रोग परजीवी फफूंदी से होते हैं । इस सम्बन्ध में रोग ग्रस्त वृक्ष, समूहों का पता लगाना, रोगी वृक्षों को नष्ट करना तथा रोगाणुओं को फैलने से रोकना, आवश्यक हैं । किन्तु यह कार्य सीमित क्षेत्रों में ही संभव हैं तथा ऐसे क्षेत्रों में यथा संभाव पौधों को रोगों से बचाना आवश्यक हैं ।

3. कृषि तथा आवास हेतु वनों की कटाई पर रोक

बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वनों को काटकर कृषि क्षेत्रों का विस्तार तथा विकास करना एक समान्य कार्य होता जा रहा हैं तथा आज हम ऐसी स्थिति में हैं कि इस प्रवृत्ति पर अब रोक लगाना आवश्यक हो गया हैं । क्योंकि अब वनों का क्षेत्र इतना सीमित रह गया हैं कि यदि इनसे और अधिक सीमित कर दिया गया तो पारिस्थितिक – संकट बढ़ जायेगा । इसलिये वन क्षेत्रों की भूमि की कीमत पर कृषि विस्तार नहीं किया जाना चाहिये । इस सम्बन्ध में विचारणीय तथ्य यह है कि स्थानान्तरण कृषि को नियंत्रित व यथा संभव समाप्त कर देना चाहिये । कृषि के साथ–साथ आवासों के विस्तार तथा नगरीयकरण या शहरीकरण के लिये भी वनों को समाप्त करने की प्रवृत्ति बहुत पनप रही हैं । अनेक बार नये नगरों के विकास के लिये विशाल क्षेत्रों में वनों का विनाश किया जा रहा हैं । इस प्रवृत्ति को समाप्त किया जाना चाहिये क्योंकि वन प्राकृतिक अमूल्य सम्पदा हैं । जिनका संरक्षण हमारे जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति कर पर्यावरणीय ओर पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं ।

4. वनों का आग से बचाव

प्राकृतिक प्रकोप के कारण वनों में लगने वाली आग भी कभी–कभी अत्यधिक विनाशकारी रूप ग्रहण कर लेती हैं जिससे सैकडों–हजारों वर्ग किमी. का वन क्षेत्र जलकर राख हो जाता हैं तथा उस जले हुए क्षेत्र के सम्पूर्ण वृक्ष तथा वनस्पति जल जाते है । वनों में यह आग प्राकृतिक रूप से घर्षण द्वारा उत्पन्न चिनगारियों से लगती हैं । गर्म, शुष्क तथा हवा युक्त मौसम में अनेक वृक्षों की शाखायें या बाँस वृक्ष आपसी घर्षण से आग का कारण बनते हैं । इस प्राकृतिक आग के अलावा केम्पफायर, लकड़ी जलाने, जलती तीली डालने, बीडी–सिगरेट जलती फेंक देने से भी एवं मानव की लापरवाही भी वनों में आग लगने का कारण बनती है । वन की आग इतनी तेजी से फैलती हैं कि उसे नियंत्रण करना संभव नहीं होता हैं । अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका में 1 955–1964 के मध्य वनों में आग लगने की 322 घटनायें हुई । इसलिये वनों की आग से बचाने हेतु सावधानी की आवश्यकता हैं ताकि मानव की लापरवाही से वनों में आग न लगे तथा इस आग व प्राकृतिक आग पर नियंत्रण पाने के लिये अग्निशामक उड़नदस्तों की उचित व्यवस्था होनी चाहिए । हैलिकॉप्टर द्वारा किये गये छिड़काव से भी वनों को बुझाया जा सकता हैं । इसलिये आग लगने की सूचना मिलते ही अग्निशमन दस्तों व हेलिकॉप्टरों की व्यवस्था करना वनों के संरक्षण के लिये आवश्यक है ।

5. पुन: वन लगाना या वृक्षारोपण

वन–संरक्षण के लिये जहाँ एक ओर वनों की रक्षा करना आवश्यक हैं, वहीं दूसरी ओर वनरोपण तथा वृक्षारोपण की भी आवश्यकता उतनी ही हैं । यह एक नियमित प्रक्रिया के रूप में होनी चाहिए क्योंकि एक ओर विधि उपयोगों के लिये वनों को जिस अनुपात में काटा जाता हैं, उसके साथ ही यदि उस अनुपात में नये वृक्ष लगा दिये जाएं, तो वनोन्मूलन की समस्या से बचकर वन–संरक्षण किया जा सकता हैं । भारत में वृक्षारोपण कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर चलाया जा रहा हैं । इस कार्यक्रम की सफलता हेतु यह आवश्यक हैं कि वृक्ष लगाना ही पर्याप्त नहीं हैं, अपितु उन्हें विकसित किया जाये अन्यथा वृक्षारोपण मात्र आकड़ों में ही अंकित रह जाते हैं । इस संदर्भ में एक अन्य ध्यान देने योग्य बात यह हैं कि वृक्षों का चयन उपयोगिता तथा क्षेत्रीय व स्थानीय पर्यावरण की दृष्टि को रखकर किया जाये । हमारे यहाँ वृक्षारोपण में अधिकांशत: युक्लिप्ट्स के शीघ्र पनपने वाले वृक्षों का रोपण हो रहा हैं, यह प्रवृत्ति समाप्त कर उपयोगी लकड़ी प्रदान करने वाले वृक्षों के रोपण पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है ।

6. बाँधों से वनों के जल--मग्न होने से बचाव

संसार में जहाँ भी नदियों पर बाँध बनाये जाते हैं, उनके अन्तर्गत विशाल वन क्षेत्र जलमग्न हो जाते हैं । भारत के भाखड़ा नांगल, गाँधी सागर, तुँगभद्रा, नागर्जुन सागर, रिहन्द, हीराकुण्ड दामोदर आदि विशाल बाँधों से हजारों वर्ग किमी. का वन क्षेत्र जलमग्न हो गया हैं । टिहरी बॉध एवं साइलैण्ट वैली परियोजना के विरोध का एक कारण वनों के विनाश से पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि बाँध बनाये ही नहीं पायें, अपितु बाँध स्थलों का चयन इस प्रकार किया जाये कि उनसे कम से कम वन जलमग्न हों । साथ ही बाँध निर्माण के बाद अन्य विकास कार्यो के साथ इस बात पर भी जोर दिया जाना चाहिये कि उस क्षेत्र में पुन: वनारोपण किया जाये जिससे पारिस्थितिक संतुलन बना रह सके ।

7. वनों का पर्यटन स्थालों के रूप में विकास

वन संरक्षण का एक सफल उपाय इनका पर्यटन स्थलों के रूप में विकास करना हैं । वन प्राकृतिक सुरम्यता तथा सुन्दरता से युक्त होते हैं तथा इस कारण वे सहज ही पर्यटकों को आकर्षित करते हैं । इनसे वन संरक्षण तो होता ही हैं, साथ ही विदेशी मुद्रा की प्राप्ति से आय में भी वृद्धि ही है । इस दिशा में अनेक देशों में राष्ट्रीय पार्क तथा अभयारण्यों के विकास के प्रयास किये जा रहे है । भारत में ही अब तक 20 राष्ट्रीय उद्यान एवं प्रत्येक राज्य में कुछ अभयारण्य विकसित किये जा चुके हैं । उनके विकास से विभिन्न पादप प्रजातियों की रक्षा के साथ–साथ वन्य–जीवों का भी संरक्षण होता हैं । वन प्रदेशों की सुरक्षा के लिये इनको पर्यटन स्थालों के रूप में विकसित करना दोहरा लाभदायक हैं ।

8. सामाजिक एवं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा वन--संरक्षण

वन संरक्षण और वनरोपण तथा वृक्षारोपण जैसे कार्यक्रम मात्र सरकारी नियमों तथा प्रशासनिक प्रयासों से ही सफल नहीं हो सकते, इसलिए इसके लिए जन–चेतना या सामाजिक चेतना जागृत करना अति आवश्यक हैं । जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करें कि वन संरक्षण स्वयं उसके तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिये आवश्यक हैं तो यह संरक्षण स्वत: ही होने लगेगा । भारत में वन संरक्षण की स्वस्थ्य सामाजिक परम्परा रही हैं और वन यहाँ की संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं । हमारे यहाँ बरगद, पीपल जैसे अनेक वृक्षों की पूजा की जाती हैं जो वृक्षों के संरक्षण का अपूर्व उदाहरण हैं । भारत

में विश्नोई जाति के धर्म का एक प्रमुख सिद्धान्त वनों की रक्षा करना हैं, जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण विश्नोई जाति के लागों का वन–संरक्षण के लिये "चिपको" आन्दोलन हैं । वन संरक्षण में स्वयं सेवी एवं गैर प्रशासनिक संस्थाओं की भी महती भूमिका हैं और आज दुनिया में ऐसी अनेक संस्थायें हैं । "ग्रीन पीस" संस्थायें अनेक देशों में कार्यरत हैं भारत में चिपकों आन्दोलन वन संरक्षण के लिये जन–जागृति करने में लगा हैं तथा दक्षिणी भारत में "अप्पिको" आन्दोलन पर्यावरण संरक्षण में संलग्न हैं । विगत दशक से स्थानीय स्तर पर भारत में अनेक स्वयं सेवी संस्थायें इस दिशा में कार्य करती हुई वन संरक्षण तथा विकास में महत्वपूर्ण भूमिकायें निभा रही हैं प्रशासन द्वारा प्रारम्भ किया गया "सामाजिक वानिकी" कार्यक्रम कुछ प्रदेशों में सफल रहा हैं ।

9. वन संरक्षण में प्रशासनिक भूमिका

वनों के संरक्षण में सरकार तथा स्थानीय प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका हैं, क्योंकि सरकारी नियमों के अन्तर्गत ही वन–संरक्षण संभव हैं । संसार के प्रत्येक देश में वन संरक्षण के लिये नियम हैं तथा सरकारें उपयोगिता एवं अर्थव्यवस्था के अनुरूप नियम बना कर उन्हें संरक्षित करने का प्रयास करती हैं इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक आवश्यकता यह हैं कि नियमों के अन्तर्गत उन्हें संरक्षित करने का प्रयास करती हैं । इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक आवश्यकता यह हैं कि नियमों के अन्तर्गत वनों का संरक्षण हो, परन्तु स्वार्थी तत्वों द्वारा नियमों के विरूद्ध कार्य करने से वनोन्मूलन की प्रवृत्ति स्वार्थी तत्वों द्वारा नियमों के विरूद्ध कार्य करने से वनोन्मूलन की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ रही हैं ।

बोध प्रश्न

1. इमारती लकड़ी के निष्कषर्ण से होने वाली दो हानियाँ लिखिए ।
2. खनन का वनों पर क्या प्रभाव पड़ता हैं ।
3. जन जतियों द्वारा वन संरक्षण के दो उपाय लिखिए ।

शब्दावली

प्राकृतिक संसाधन, वनोन्मूलन, निष्कर्षण, वरसंरक्षण, वृक्षारोपण

4.8 इकाई सारांश एवं अभ्यास कार्य

वनों को क्षति पहुँचाने वाले कारकों से बचाव के लिये तथा वन विनाश के दुष्परिणामों को रोकने के लिये उचित वन प्रबन्धन पर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक हैं । वर्तमान में विश्व के सभी देश वन–संरक्षण की ओर ध्यान दे रहे हैं । सभी देशों में वनों को संरक्षित करने की ओर प्रशासन द्वारा ध्यान दिया जाने लगा हैं, नियम बनाये जा रहे हैं, वन–नीतियाँ निर्धारित की जा रही हैं । यहाँ तक कि आन्दोलन चलाये जा रहे हैं, किन्तु वनों का नाश आज भी तीव्र गति से हो रहा हैं । इसके लिये कुछ उपाय जो वन प्रबन्धन के अर्न्तगत किये जा सकते हैं, निम्न प्रकार हैं – 1. वन काटने तथा वनरोपण या वृक्षारोपण में अनुपात का ध्यान रखा । 2. वनों के संरक्षण सम्बन्धी नियमों का कठोरता से पालन किया जाए । 3. लगाये गये वृक्ष जब वृद्धि की अवस्था में हो तो उन्हें काटने पर रोक लगाना । 4. सम्पूर्ण वृक्ष को न काटकर उसकी शाखा को ही यथा समय काटना । 5. फर्नीचर तथा अन्य सजावट के समानों में लकड़ी का प्रयोग सीमित कर अन्य वैकल्पिक साधनों का विकास करना ।

अभ्यास कार्य

1. वनोन्मूलन क्या है । इसके मुख्य कारण बताइये

2. इमारती लकड़ी के निष्कर्षण एवं खनन से वनों पर प्रभाव को समझाइये ।
3. जन जातियों द्वारा वनों के संरक्षण के उपाय लिखिए ।
4. वन संरक्षण में प्रशासनिक भूमिका का वर्णन कीजिये ।
5. भारतीय वनों के वर्गीकरण पर लेख लिखिये ।

बोध प्रश्नों के उत्तर

4.2 : (1) 30 प्रतिशत (2) 16

4.4 : (1) भूमि की उर्वरता बढ़ाना, पर्यावरण संतुलन बनाये रखना
(2) खनिज खनन के लिये, काष्ठ व ईधन के लिये

4.7 : (1) वन विनाश, पर्यावरण असंतुलन (2) भूमि का उपजाउपन नष्ट होना, पर्यावरण प्रदूषण
(3) परिरक्षित कटाई, वनारोपण

4.9 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. कोरमोण्डी : कॉनसैप्ट्स ऑफ इकोलोजी
2. ई.पी.ओडम : Fundamentals of Ecology
3. पी.डी शर्मा : Ecology and Environment

इकाई – 5

जल

Water

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सतही एवं भू जल के उपयोग एवं अतिदोहन

5.3 जल चक्र

5.4 बाढ़

5.5 सूखा

5.6 भारत में जल पर विवाद

5.7 बाँधों से लाभ तथा समस्यायें

5.8 वर्षा जल संचयन

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 संदर्भ ग्रन्थ

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

5. उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- जान पाऐंगे कि जल एक बहुमूल्य एवं सीमित संसाधन है और हमारा जीवन इस पर किस तरह और कितना निर्भर है । इसका अति उपयोग या दुरूपयोग हमारे अस्तित्व के लिए कितना बड़ा खतरा बन सकता है ।
- समझ पायेंगे कि प्रकृति में चलने वाले कुछ सतत एवं संतुलित प्रक्रमों के माध्यम से किस प्रकार यह हमारे लिए हमेशा उपलब्ध रहता है ।
- अनुमान लगा पायेंगे उन आपदाओं से उत्पन्न खतरों का जो जलाधिक्य या जलाल्पता के कारण आ सकती है और जान पायेंगे उनको रोकने के लिए काम आ सकने वाले उपायों के बारे में ।
- यह स्पष्ट कर पायेंगे कि जल पर क्यों और किस तरह के विवाद उत्पन्न होते हैं ।
- यह चर्चा कर पायेंगे कि किस तरह विवेकपूर्ण और सावधानी पूर्वक वैज्ञानिक तरीके से बनाई गयी बूँद–बूँद वर्षा जल संचयन की योजनाऐं प्रभावी हो सकती हैं और प्रकृति में शुद्ध जल की मात्रा के संतुलन में सहयोगी हो हमारे भविष्य को सुरक्षित कर सकती हैं ।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

जल सम्पूर्ण जीवमण्डल का आधारभूत घटक है इसके बिना समस्त जैविक क्रियाएँ अधूरी हैं । मानव शरीर का भी 70 प्रतिशत से अधिक भाग जल ही है । अभी तक ज्ञात तथ्यों के आधार पर समस्त सृष्टि में पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जहां जल विद्यमान है । मानव जीवन को जल प्राकृतिक संसाधन के रूप में प्राप्त है । प्रकृति में सभी जीवधारियों को फलने फूलने के लिए जल की आवश्यकता होती है । पृथ्वी के कुल धरातलीय क्षेत्र का लगभग तीन–चौथाई **(70.8%)** भाग जल से ढका है । इसमें से अधिकांश भाग लवणीय महासागरीय जल है । पीने व मानव जीवन के अन्य उपयोग के लिए अलवणीय या निम्नलवणीय शुद्ध जल **(Pure Water)** की सापेक्षिक प्रतिशत बहुत कम है । पृथ्वी पर उपस्थित कुल जल का लगभग **(97.6%)** जल महासागरों में है और बचा हुआ **(2.5%)** शुद्ध जल है । उसमें से भी लगभग 2% ध्रुवीय बर्फ, हिमनदों आदि में कैद है । सिर्फ **0.7%** ही वह जल है जो झीलों, तालाबों आदि में रहता है, नदियों झरनों धोरों आदि में बहता है, जमीन के नीचे से भू जल के रूप में निकाला जाता है और हमारे विभिन्न उपयोग में आता है ।

प्रकृति में जल भिन्न–भिन्न रूपों में वितरित होता है । जैसे नदियों, झीलों, आदि के जल के रूप में, महासागरों के जल के रूप में, पहाड़ों ध्रुवों आदि पर जमी बर्फ के रूप में, हिमनदों में जमी बर्फ के रूप में, वायुमण्डल की वाष्प और हिमकणों के रूप में, धुंध और कोहरे के रूप में, बादलों के रूप में । अन्य शब्दों में कहा जाए तो यह प्रकृति में तीन भौतिक अवस्थाओं के रूप में रहता है द्रव, ठोस (हिम या बर्फ) और वाष्प (जलवाष्प) । जल के अणु का रासायनिक संगठन एक ऑक्सीजन और दो हाइड्रोजन परमाणुओं से मिलकर बनता है । जल के कुछ अद्भुत गुण जैसे तुलनात्मक रूप से अधिक द्विध्रुव आर्घूर्ण, उच्च परा–वैधुत स्थिरांक, उच्च ऊष्मा धारक क्षमता, तापक्रम की विस्तृत श्रेणी **(0^0-100^0c)** तक द्रव बने रहने की क्षमता व उच्च विलायक क्षमता इसे रसायन विज्ञान में विशिष्ट स्थान प्रदान करते है । यह अकार्बनिक पदार्थो की एक विस्तृत श्रेणी को अपने में घोलने की क्षमता रखता है । साथ ही बहुत से कार्बनिक पदार्थो के लिए भी हाईड्रोजन बंध बनाने की क्षमता के कारण उत्तम श्रेणी का विलायक है । यह भूमण्डल और वायुमण्डल में और उनके मध्य होने वाली अधिकतर जैविक और रासायनिक अभिक्रियाओं में माध्यम के रूप में कार्य करता है । यही कारण है कि प्रकृति में जल शुद्ध अवस्था में बहुत देर तक नहीं रहता । सतत प्रवाहित जल भी हर उस वस्तु जिसके सम्पर्क में आता है, को अपने में घोलता हुआ या अपने साथ लेकर चलता है । फलत: प्रदूषित हो जाता है । प्रदूषक अन्य स्त्रोतों से भी जल में प्रवेश करते रहते है । प्रदूषण के कारण जल पीने योग्य नहीं रह जाता । प्रदूषित जल जीवन के लिए हानिकारक होता है ।

विश्व में भारत का स्थान ऐसे देशों में तीसरा है जो खतरनाक जैविक रसायन नदियों में बहा देते है । भारत की चौदह प्रमुख नदियों का 80 फीसदी पानी दूषित है और पीने योग्य नहीं है । हर साल 0.50–1.50 लाख बच्चों की मौत का कारण दूषित पानी है । देश में 32211 गांव फ्लोराइड युक्त पानी और 4000 गांव आरसेनिक, नाइट्रेट, लैड जैसे घातक रसायनों से युक्त पानी पीने को मजबूर हैं । फ्लोराइड युक्त पानी पीने को अभिशप्त सबसे अधिक 18609 गांव राजस्थान में हैं । यदि स्वच्छ जल पीने को उपलब्ध हो तो पूरी दुनिया मैं हर साल 1.6 करोड़ जिन्दगियाँ बचाई जा सकती है ।

जल प्रकृति प्रदत्त नवीकरणीय संसाधन है जिसका प्रकृति में पुनरूत्पादन एवं पुन: चक्रीकरण होता रहता है किन्तु पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर इसका वितरण एवं उपलब्धता समरूप नहीं है । इसी प्रकार वर्षा चक्र की अवधि एवं अन्तराल भी भिन्न-भिन्न भू क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न होता है । हमारे देश में वर्षा प्रमुखतया मानसूनी होती है जिसमें अनिश्चितता और अनियमितता बनी रहती है । कही अतिवृष्टि से बाढ़ आ जाती है तो कही अनावृष्टि से सूखा पड़ जाता है । ये दोनों ही जल आपदायें चरम बिन्दु पर महाविनाशकारी होती है । अवर्षाकाल या ग्रीष्म काल में पानी की किल्लत से बचने के लिए विभिन्न उपाय जैसे बांध बनाना, परम्परागत जल स्त्रोतों में संग्रहण आदि किये जाते है । जल की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता में कमी या अनुपलब्धता विशेषकर नदी जल की, विभिन्न विवादों को जन्म देती है । इस इकाई में हम इन सभी बिन्दुओं का विस्तृत अध्ययन करेंगे और साथ ही यह भी पढेंगे कि सतही जल और भौम–जल के प्रमुख स्रोत वर्षा जल का भिन्न–भिन्न विधियों से विभिन्न उपयोगों के लिए किस प्रकार संचयन किया जा सकता है ।

बोध प्रश्न -- 1

निम्नलिखित शब्दों की सूची में से उचित शब्द चुनकर खाली स्थान भरिये :

(लवणों, दो, दूषित, भू--जल, शुद्ध)

(क) कुंओं, बोरिंग, ट्यूब वैल आदि का जल ------- की श्रेणी में आता है

(ख) गुणवत्ता की दृष्टि से पीने के लिये भू--जल अपेक्षाकृत ------- होता है ।

(ग) --------- जल जीवन के लिये हानिकारक होता है ।

(घ) समुद्री जल में ---------- की अधिकता होती है ।

(ड.) मानव शरीर की प्रतिदिन पेयजल आवश्यकता लगभग ------- लीटर है ।

5.2 सतही एवं भू–जल के उपयोग एवं अति–दोहन

भू–मण्डल पर स्थिति के आधार पर जल को दो भागों (i) सतही जल या भूपृष्ठीय जल एवं (ii) भू–जल या भूमिगत जल में. बांटा जा सकता है । पृथ्वी की बाहरी सतह पर पाये जाने वाले जल को सतही या भू–पृष्ठीय जल **(Surface Water)** कहते है । यह स्थिर तथा गतिशील, दो रूपों में विद्यमान रहता है । समुद्र, झीलों, पोखरों, तालाबों आदि का जल स्थिर जल की श्रेणी में एवं नदियों, नालों, धोरों का जल गतिशील की श्रेणी में आता है । पृथ्वी पर उपस्थित कुल जल का लगभग 0.009 प्रतिशत झीलों में रहता है और लगभग 0.0001 प्रतिशत नदियों में बहता है । धरातलीय सतह से नीचे गहराई में संचित जल को भू–जल या भूमिगत जल कहते है जैसे कुँओं, बावड़ियों, बोरिंग, ट्यूब वैल आदि जमीन को खोदकर निकाली संरचनाओं का जल । इसकी उपलब्धता विभिन्न भू–क्षेत्रों में अलग—अलग गहराई पर होती है । पृथ्वी पर 800 मीटर की गहराई तक उपलब्ध जल पृथ्वी पर के कुल जल का लगभग 0.6 प्रतिशत आंका गया है ।

सतही जल और भू जल गुणवत्ता की दृष्टि से भिन्न होते हैं । सतही जल में भारी मात्रा में कार्बनिक और अकार्बनिक पोषक तत्व होते है । जिससे इसमें शैवाल आदि विभिन्न वनस्पतियाँ एवं जीवाणु पनपते रहते हैं । इसमें भूमि पर से बहकर धूल मिट्टी विभिन्न कार्बनिक घरेलू एवं औद्योगिक अपशिष्ट, विभिन्न कृषि–रसायन, फालतू रसायन आदि भी मिल जाते है । तथा इसकी गुणवत्ता को

परिवर्तित कर देते है । भू जल अपेक्षाकृत शुद्ध होता है जिन मिट्टी की परतों में से यह रिसकर जाता है उसके विभिन्न खनिज इसमें घुल जाते है और विभिन्न सूक्ष्म जीवाणु और गंदगी छन कर मिट्टी की परतों में रह जाती है । यह पीने के पानी के रूप में अधिक विश्वसनीय कहा जाता है । राजस्थान प्रदेश में 94 फीसदी पेयजल और 70 फीसदी सिंचाई योजनाऐं / परियोजनाएं भू जल पर आश्रित है । विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त जल के उपयोग उसकी गुणवत्ता के आधार पर तय किये जाते हैं ।

समुद्री जल में लवणों की अधिकता के कारण प्राकृतिक रूप में इसके उपयोग सीमित है । इस जल सम्पदा के मुख्य उपयोग परिवहन में, व्यापार में, एवं जल जीवों और जल वनस्पतियों के स्त्रोत के रूप में है । प्राकृतिक रूप में यह जल चक्र का महत्वपूर्ण अंग है और वर्षा जल का मुख्य संग्राहक है । अनेक देश सागर के जल का शोधन कर उसका प्रयोग सिंचाई एवं पीने के पानी के रूप में कर रहें है । हमारे देश के भी कुछ स्थानों जैसे गुजरात में भावनगर और राजस्थान में चुरू में सौर ऊर्जा का इस्तेमाल कर लवणीय जल के आसवन से अलवणीय जल प्राप्त किया जा रहा है । समुद्र जल विशेषकर गैर शाकाहारी वर्ग के लिए खाद्य का अपार भण्डार है ।

विभिन्न जैविक क्रियाओं में सतही जल की भागीदारी सर्वाधिक है । मानव द्वारा वृहद उपयोग के लिए जल का प्रमुख स्त्रोत भी सतही जल ही है । प्राचीन काल से ही नदियों के किनारे और अन्य प्राकृतिक जल स्त्रोतों के आस पास रिहायशी बस्तियों का सर्वाधिक विकास होता रहा है । इन सबका कारण जल की सुलभ उपलब्धता ही मुख्य है । भूजल मुख्य तौर पर पीने और सिंचाई के लिए काम में लाया जाता है । शुद्ध सतही जल और भूजल जिसकी प्रतिशत भूमि पर कुल जल की मात्रा की (लगभग 0.7 प्रतिशत) है, के मुख्य भाग का उपयोग सिंचाई में (लगभग 30 प्रतिशत), विद्युतोत्पादन में (लगभग 50 प्रतिशत) और उद्योगों में (लगभग 12 प्रतिशत) होता है । पीने व अन्य घरेलू उपयोग में इसका लगभग 7 प्रतिशत ही व्यय होता है ।

सतही जल और भू जल के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग निम्न प्रकार है :–

पीने एवं अन्य घरेलू कार्यो के लिए :

मानव शरीर की विभिन्न जैविक क्रियाओं के लिए प्रतिदिन की आवश्यकता लगभग दो लीटर है और इससे कई गुना (तीन सौ से पाँच सौ) आवश्यकता दैनिक कार्यो स्नानादि, सफाई, भोजन बनाने इत्यादि के लिए होती है । घरेलू उद्यान व सजावटी पौधों को पोषित करने के लिए भी जल का उपयोग होता है । इसी प्रकार अन्य जीव जन्तु भी पानी का उपयोग पीने, शरीर की सफाई, जल क्रीड़ा आदि में करते है ।

सिंचाई के लिए :

कुल जल के उपयोग का लगभग तीस प्रतिशत हिस्सा सिंचाई के काम आता है । मानसून की अनिश्चितता और अनियमितता के चलते भारत जैसे कृषि प्रधान देश में भी अन्नोत्पादन मुख्य रूप से सिंचाई पर निर्भर करता है । देश के गर्म व शुष्क प्रदेश तो पूर्णतया सिंचाई पर ही निर्भर है । सिंचाई के लिए प्राकृतिक स्त्रोतों का जल, बाँध, तालाबों आदि का संचित जल और बोरिंग, ट्यूब वैल आदि के माध्यम से भूजल का भारी मात्रा में उपयोग होता है ।

उद्योगों में :

उद्योगों में भी शुद्ध जल की वृहद् मात्रा का उपयोग होता है । सामान्यतया, विभिन्न उद्योगों में जल की वृहद मात्रा का उपयोग तापमान को नियंत्रित करने या कम करने में प्रशीतक के रूप में,

भाप बनाने और भाप को संघनित आदि करने में होता है । इसके अतिरिक्त विभिन्न रसायनों के विलायक के रूप में, रंगाई, धुलाई, छपाई, चमड़ा शोधन, कागज की लुग्दी आदि बनाने में होता है । पानी की उपलब्धता एवं क्षेत्र विशेष के औद्योगिक विकास का आपस में सीधा सम्बन्ध है ।

पन बिजली उत्पादन में :

पन बिजली उत्पादन में जल के विस्तृत स्त्रोत का उपयोग किया जाता है । इसमें जल प्रवाह के वेग से प्राप्त यांत्रिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है । पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से पन बिजली बेहतर विकल्प है । कुल उपयोग का लगभग पचास प्रतिशत जल पन बिजली उत्पादन में काम आता है ।

इन उपयोगों के अतिरिक्त विभिन्न जल राशियों को उनके रूप, आकार व जल राशि की मात्रा के आधार पर परिवहन, जल संचयन, विभिन्न जल उत्पादों के स्त्रोत के रूप में उपयोग में लाया जाता है व इन पर बाँध बनाकर, नहरें निकालकर, बंदरगाह बनाकर इनके उपयोगों का विस्तार किया जाता है ।

बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण के साथ ही मानव जीवन शैली, मानव दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है । व्यक्तिगत हितों को प्राथमिकता देने के फेर में पर्यावरण के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार हो रहा है । प्राकृतिक संसाधनों को स्व-पूँजी मान उनका अति–दोहन किया जा रहा है । सभी प्रकार के अपशिष्ट वातावरण में फेंके जा रहे है । परिणामत: प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित होते जा रहे है ।

जल का अति उपयोग सभी क्षेत्रों में जैसे घरों में, गुणवत्ता के आधार पर काम में नहीं लेकर पेयजल को विभिन्न कार्यो में उपयोग लेना जैसे फव्वारा स्थान लेना, घरेलू बगीचों में नल चलाकर छोड़ देना, बर्तन, कपड़े इत्यादि को सीधे नल से धोना आदि और पाइप लाइनों के रख रखाव पर ध्यान नहीं देना आदि । उद्योगों में अंधाधुंध पानी उपयोग में लेना और उसे पुन: बिना चक्रीकरण किये सीधे नालों में बहा देना, खेतों में सिंचाई आदि की वैज्ञानिक विधियाँ व साधन नहीं अपनाना । सतही जल के स्त्रोत उपलब्ध नही हो या अपर्याप्त हो तो बोरिंग करवा कर, ट्यूब बैल आदि खोदकर भू जल का दोहन करना ।

प्रकृति में शुद्ध जल एक बहुमूल्य एवंसीमित संसाधन है जिसका समुचित एवं विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यक है । पृथ्वी पर के कुल जल का लगभग 0.7 प्रतिशत ही मनुष्य के उपयोग योग्य जल है और इसका भी लगभग बीस फीसदी हिस्सा उन स्थानों पर है जो मनुष्य की पहुँच से बाहर है । एक तरफ बढ़ती आबादी और चहुँ ओर विकास के कारण शुद्ध जल की मांग बढती जा रही है दूसरी ओर शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप वनोन्मूलन होता जा रहा है । भूजल पुनर्भरण योग्य पारगम्य भूमि कम होती जा रही है । परिणामत: वर्षाजल का अधिक से अधिक भाग पुन: नदी नालों में बहता हुआ समुद्र में पहुँच जाता हैभूमि पर रूक नहीं पाता । वर्षा जल के बहाव के साथ भूमि के अपरदन से नदी नालों और परम्परागत जल स्त्रोतों में गारद जमा होती जा रही है और जल की गहराई कम हो गयी है । भू जल स्तर भी गिरता जा रहा है । भू–जल की मात्रा वर्षा की गति, मात्रा व समय, वाष्पीकरण की मात्रा, तापमान, भू भाग की ढाल, शैलों की रन्धता, वनस्पति आवरण, मृदा की जल अवशोषक क्षमता आदि पर निर्भर करती है ।

सतही जल तथा भू जल का अत्यधिक दोहन एवं दुरूपयोग पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से हानिकारक है जैसे नदी के बहाव क्षेत्र में जल की कमी होने से आस पास के दलदलीय स्थल सूख जाते है और अनेक वनस्पतियों और जीवों की हानि होती है । बेलासंगम (estuary) के आसपास के क्षेत्र से जल के अत्यधिक दोहन से कई बार समुद्र का पानी रिस कर उल्टा चला जाता है और पानी की गुणवत्ता तथा उत्पादकता प्रभावित होती है । इसी प्रकार अत्यधिक भू जल दोहन से मिट्टी के धंसने की, भूकम्प आदि की समस्या उत्पन्न हो जाती है ।

एक तरफ एशिया में दुनिया की कुल आबादी का 60 प्रतिशत रहता है दूसरी तरफ कुल उपलब्ध जल का केवल 36 फीसदी हिस्सा ही एशिया में उपलब्ध है । दुनिया भर में शुद्ध पेयजल की समस्या विकराल रूप लेती जा रही है । संभावना व्यक्त की जा रही है कि तृतीय विश्वयुद्ध पेयजल को लेकर ही होगा । भारत में वर्ष के 8760 घंटों में से मुश्किल से 90–100 घंटे ही बरसात होती है । प्राकृतिक व पारम्परिक जल स्रोतों में पानी की मात्रा एवं गुणवत्ता में अवनयन के साथ ही साथ भारत में भू–गर्भ जल स्तर भी तेजी से गिर रहा है । भारत में महिलायें प्रतिदिन लगभग 2.50 घंटे श्रम कर दूर–दूर से पानी लाती हैं और घर की दैनिक जरूरतें पूरी करती हैं । संयुक्त राष्ट्र जल संसाधन विकास रिपोर्ट के अनुसार पेयजल गुणवत्ता में भारत का स्थान 120 वाँ एवं जल उपलब्धता में 133 वाँ है । राजस्थान प्रदेश का लगभग आधा हिस्सा (49 प्रतिशत) जल समस्या से ग्रस्त है । पिछले पन्द्रह सालों में प्रदेश में अब पहले के 4500 वर्ग किमी की जगह 3500 वर्ग किमी भू भाग पर जलाशय बचे है । भू–जल दोहन के मामले में प्रदेश के 86 ब्लॉक अतिदोहन और 60 डार्क जोन की श्रेणी में है ।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित का एक शब्द में उत्तर दीजिये --

(क) तेज पानी या हवा के बहाव के साथ मिट्टी की ऊपरी परत के बह जाने या उड़ जाने को क्या कहते हैं?

(ख) अधिक तापक्रम या शुष्क हवा के कारण जल के जल वाष्प में परिवर्तन की प्रक्रिया क्या कहलाती है?

(ग) जल--चक्र के संचलन के लिये मुख्य रूप से उत्तरदायी ऊर्जा कौन सी है ?

बोध प्रश्न 3

उन तीन प्रमुख भौतिक क्रियाओं के नाम क्या है जिनके माध्यम से जल--चक्र संचलन होता?

(क) ---

(ख) ---

(ग) ---

5.3 जल चक्र

जल चक्र ऐसी प्राकृतिक प्रक्रियाओं का चक्र है जिसके द्वारा जलमण्डल के जल का भू मण्डल पर एवं वायुमण्डल में सतत विनिमय होता रहता है । जल चक्र का संचलन सौर उर्जा और गुरूत्वीय

बल के कारण होता है । पृथ्वी पर पड़ने वाली सूर्य ऊर्जा का लगभग एक तिहाई भाग पृथ्वी द्वारा अवशोषित किया जाता है । सौर ऊर्जा से वातावरणीय ताप, दाब, आर्द्रता में आए परिवर्तनों से जल की कुछ भौतिक प्रक्रियायें जैसे वाष्पन, संघनन, अवक्षेपण आदि सम्पन्न होती है और इनके माध्यम से हवा के साथ साथ जल चक्र चलता है । पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जल राशियों विशेष रूप से महासागरों का जल, भूमि की ऊपरी सतह पर एवं वनस्पतियों आदि पर ठहरा हुआ जल, पेड़ पौधों एवं अन्य वनस्पतियों द्वारा वाष्पोत्सर्जित जल, जीव–जन्तुओं के श्वसन, उच्छवसन में निर्गमित जल, यहाँ तक की बरसते हुए जल में से जल, मानवीय क्रियाकलापों के कारण फैल गया जल, वाष्पन द्वारा पुन: वायुमण्डल में पहुँचता रहता है । इसी प्रकार ध्रुवों, पहाड़ों की चोटियों, हिमनदों आदि से ऊर्ध्वपातित जल भी वायुमण्डल में पहुँचता रहता है और पिघल–पिघलकर भूमण्डल पर भी आता रहता है । वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा बढने से बादल बनते हैं, बादल ठण्डी हवा के साथ मिलकर संघनित हो जाते है और ताप व दाब में अनुकूल परिवर्तन पाकर भूमि के विभिन्न भागों में विभिन्न रूपों जैसे वर्षा, हिमकणों, ओलों आदि के रूप में अवक्षेपित / निक्षेपित हो जाते है । इस अवक्षेपण या निपेक्षण का बहुत कम भाग बहुत कम समय तक ही पृथ्वी पर रूक पाता है अधिकांश पुन नदी, नालों आदि के सहारे बहकर पुन: समुद्र में पहुँच जाता है । वर्षा जल का यह अंश ही भू मण्डल पर विभिन्न वनस्पतियों, जीव – जन्तुओं आदि की जैविक क्रियाऐं पूर्ण करने के लिए उत्तरदायी है । वर्षा जल भू मण्डल पर सतही जल और भू जल का मुख्य स्त्रोत है वैसे वर्षा जल के मुख्य संग्राहक महासागर ही है ।

हचिन्सन (**Hutchinson** 1957) के अनुसार पृथ्वी पर कुल जल की अनुमानित मात्रा 266069.88 जियोग्राम है (1 जियोग्राम = 10^{20} ग्राम) इस जल का. पृथ्वी पर वितरण निम्न प्रकार किया जाता है ।

चट्टानों में	–	2,50,000 जियोग्राम
समुद्रों में	–	13800 जियोग्राम
अवसादी शैलों में	–	2100 जियोग्राम
ध्रुवों या पर्वतों पर बर्फ के रूप में	–	167 जियोग्राम
झीलों व नदियों में मीठे जल के रूप में	–	0.25 जियोग्राम
वायुमण्डल में जल वाष्प के रूप में	–	0.13 जियोग्राम

हचिन्सन के ही अनुसार पृथ्वी पर कुल वर्षा की मात्रा 4.46 जियोग्राम है जिसका 3.47 जियोग्राम अधिकांश भाग समुद्रों पर बरसता है और लगभग 1 जियोग्राम स्थल पर । जल की विभिन्न मात्राओं को देखकर ही ज्ञात होता है कि जल चक्र की विभिन्न प्रक्रियायें मुख्य रूप से वाष्पन, संघनन और अवक्षेपण के बाद जल के पुन: समुद्र में लौटने में कितना कम समय लगता है । वर्षा व वाष्पन की गति से अधिक महत्वपूर्ण वर्षा व वाष्पन की मात्राओं का अनुपात है क्योंकि वर्षा व वाष्पन की मात्राओं में विभिन्नता के कारण ही पृथ्वी पर भिन्न भिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ पनपती है । आज की स्थिति यह है कि बढ़ती हुयी आबादी और देश के बढ़ते मानवीय हस्तक्षेप से जल चक्र गड़बड़ाता जा रहा है । विकास की ओर देश में बढ़ती हुई आबादी और बढ़ते हुए मानवीय हस्तक्षेप बढ़ते कदम

के साथ जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ है जिसकी क्षतिपूर्ति करने में प्राकृतिक जल चक्र असमर्थ रहा है । फलत: मनुष्य के उपयोग योग्य जल की मात्रा एवं गुणवत्ता कम होती जा रही है । वनों के विनाश से विनाश की एक श्रृंखला तैयार होती प्रतीत हो रही है । उदाहरणत: वनों के विनाश से पृथ्वी का वानस्पतिक आवरण नष्ट होता है उससे एक ओर वातावरण में आर्द्रता की कमी आ जाती है दूसरी ओर भूमि अपरदन बढ़ता है जिससे भूमि की उर्वरकता नष्ट हो जाती है और अनुपजाऊ चट्टानें ऊपर आ जाती हैं और इसके फलस्वरूप भू–जल के प्रमुख स्त्रोत वर्षा जल का अन्दर रिसना कम हो जाता है अर्थात भू जल स्तर गिर जाता है । भूमि अपरदन से ही मृदा उड़कर या जल के साथ बहकर विभिन्न जल स्त्रोतों में गाद के रूप में जमा हो जाती है इससे उनमें जल की भराव क्षमता व जल की गुणवत्ता प्रभावित होती है । मनुष्य के ही नहीं पृथ्वी पर जीवन के दीर्घकालीन अस्तित्व और सर्वांगीण विकास हेतु जल चक्र का अबाधित संचलन अपरिहार्य है और जल चक्र के अबाधित संचलन के लिए पर्यावरण संरक्षण आवश्यक है ।

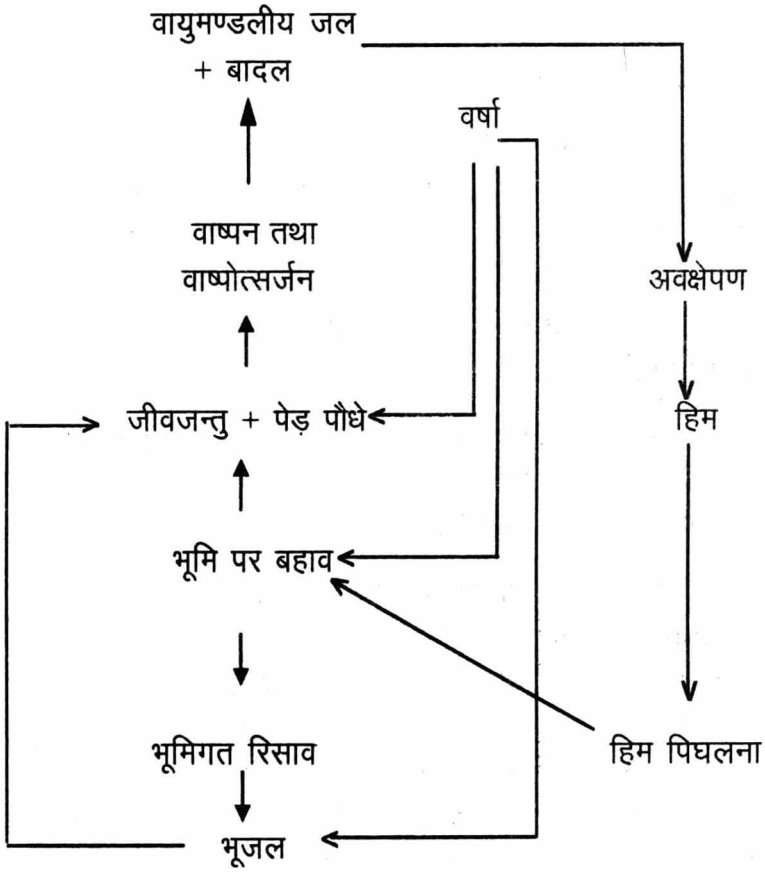

चित्र 5.1 : जल चक्र

Infiltration - रिसाव, Deep seepage - गहराई तक रिसाव, Evaporation - वाष्पन, Industrial use - औद्योगिक उपयोग, Surface runoff - सतह पर पानी का बहाव, Transpiration - वाष्पोर्त्सजन, Ground Water - भू–जल, Precipitation - अवक्षेपण, Intercepition - जीवों के शरीर में रूका जल

बोध प्रश्न -- 4

पृथ्वी पर वर्षा व वाष्पन की मात्राओं का अनुपात अधिक महत्वपूर्ण क्यों है? एक वाक्य में उत्तर दीजिये ।

5.4 बाढ़

किसी विस्तृत भू भाग में जलाधिक्य के कारण जल प्लावन की स्थिति बाढ़ कहलाती है । सामान्यतया बाढ की स्थिति अतिवृष्टि के कारण उत्पन्न होती है । कभी कभी मानव निर्मित जल संग्रहण केन्द्र जैसे बांध, तालाब आदि के टूट जाने से भी जल प्लावन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । बाढ़ की स्थिति उस समय विनाशकारी होती है जब पानी अचानक अतिवेग से आबाद क्षेत्रों में प्रवेश कर जाता है ऐसे समय में जन–धन (पशु धन, कृषि धन आदि) की हानि तो होती ही है बाढ़ का पानी उतरने के बाद महामारियाँ भी फैल जाती है ।

बाढ़ जल चक्र का ही एक हिस्सा है ताप, दाब आदि में अचानक आए परिवर्तन से कई बार एक ही क्षेत्र में अधिक वेग से अतिवृष्टि हो जाती है । कई बार लम्बी अवधि तक एक ही क्षेत्र में वर्षा होती रहती है । इन दोनों ही परिस्थितियों में बाढ़ की स्थिति पैदा होती है । इसके अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक आपदाओं भूकम्प, भू–स्खलन, ज्वालामुखी फटने आदि से भी नदियों तालाबों व समुद्र आदि का पानी तेजी से भू क्षेत्रों में प्रवेश कर जाता है । नदियों के विसर्पित मार्ग के कारण भी बाढ़ की स्थिति बन जाती है ।

इन प्राकृतिक कारणों के अतिरिक्त मानवीय कारणों से जैसे नदी घाटियों में वनों के विनाश से. मानव निर्मित जल स्त्रोतों के बंधन टूटन से, नदियों के प्राकृतिक मार्ग परिवर्तित कर देने से भी बाढ़ का खतरा उत्पन्न होता है ।

एक ही क्षेत्र में लगातार कई वर्षा तक बाढ़ आने का कारण सामान्यत: नदी के अपवाही द्रोणी क्षेत्र (**drainage basin**) में वनोन्मूलन है । वनोन्मूलन के कारण भूमि की पानी के अवशोषण की क्षमता खत्म हो जाती है या कम हो जाती है फलस्वरूप पानी ऊपर होकर बहने लगता है । पानी के दवाब के कारण कई बार नदियाँ अपने तटों को तोड़ते हुए रास्ता बदल लेती है ऐसी स्थिति में हानि अधिक होती है । भारत में होकर बहने वाली ब्रह्मपुत्र प्राय: अपना हर बंध तोड़ते हुए प्रवाह मार्ग बदल लेती हैं और भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में बाढ़ का कहर ढाती रहती है । भारत में अनेक बड़ी नदियाँ जैसे गंगा, यमुना, कृष्णा, कावेरी आदि के अतिरिक्त सैकड़ों छोटी नदियाँ है । मानसून की अनियमितता और अनिश्चितता के चलते इनमें बाढ़ आना सामान्य सी बात है । आकडों के अनुसार विश्व का लगभग 35 प्रतिशत भू–भाग और 16.5 प्रतिशत जनसंख्या हर वर्ष बाढ़ से प्रभावित होते हैं । 95 फीसदी प्राकृतिक आपदाओं की जड़ में जल ही होता है । कुछ कारगर उपाय अपनाकर एक हद तक बाढ़ पर नियंत्रण किया जा सकता है यह उपाय निम्न हैं :

(i) वनों के विनाश पर नियंत्रण करना और वृक्षारोपण को बढ़ावा देना ।

(ii) मृदा–अपरदन को नियंत्रित करने के साधन अपनाना ।

(iii) जल स्त्रोतों के तलों से गाद की सफाई कराना ।

(iv) वर्षा जल संचयन के साधन विकसित कराना ।

(v) नदियों के बहाव क्षेत्र में छोटे बड़े बांधों का निर्माण कराना ।

(vi) आवासीय क्षेत्रों के वर्षा जल के निकास के लिए उचित साधन विकसित कराना ।

बोध प्रश्न -- 5

निम्नलिखित शब्दों की सूची में से उचित शब्द चुनकर खाली स्थान भरिये --

(विसर्पित, बांधों, बाढ़, जन--धन, महामारियाँ)

(क) अति--वृष्टि के कारण जल प्लावन की स्थिति ---------- कहलाती है ।

(ख) बाढ़ का पानी उतरने के बाद ---------- फैलने की संभावना हो जाती है ।

(ग) नदियों के ---------- मार्ग भी बाद की स्थिति उत्पन्न करते है ।

(घ) नदियों के बहाव क्षेत्र में ---------- का निर्माण बाढ नियंत्रण में सहायक होता है ।

(ड.) बाढ़ आने से ---------- की हानि होती है ।

5.5 सूखा

जल स्त्रोतों में उपयोग के लिए पर्याप्त जल नहीं रहने या जलाभाव के कारण एवं भूमि में नमी के कम होने या सूख जाने से सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है । सामान्यतया सूखें की स्थिति प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न होती है जैसे वर्षा का न होना या सामान्य से कम होना, अप्रत्याशित तापमान वृद्धि या किसी प्राकृतिक प्रकोप जैसे भूकम्प आदि से जलस्त्रोतों का अचानक सूख जाना । प्राकृतिक कारणों से सूखा पड़ने पर सामान्यतया वृहद क्षेत्र प्रभावित होते है । भूमि के अतिदोहन या लगातार कई वर्षो तक कृषि उत्पादन लेने, कृषि रसायनों का लम्बी अवधि तक उपयोग आदि से मृदा की जलधारण क्षमता कम या नष्ट हो जाती है तब भी सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है ।

राजस्थान में सामान्यतया सूखे की स्थिति का प्रमुख कारण मानसून का विफल होना है । जब वर्षा सामान्य से 20 प्रतिशत कम होती है तो सामान्य सूखे की और जब 60 प्रतिशत से कम होती है तो प्रचण्ड सूखे की स्थिति पैदा होती है और अकाल पड़ जाता है । राजस्थान का लगभग 50 प्रतिशत क्षेत्र हर वर्ष अकाल प्रभावित रहता है और सूखा ग्रस्त घोषित किया जाता है ।

जल स्त्रोतों और भूमि में जलाभाव की स्थिति में वातावरण में भी नमी की मात्रा में कमी या आर्द्रता में कमी हो जाती है और यही स्थिति लम्बी अवधि तक बने रहने पर वहाँ की बहु वर्षीय वनस्पतियाँ भी सूखने लगती है । मरूस्थल का विस्तार होने लगता है, जीवों की हानि होने लगती है, मृदा के गुणों में स्थायी परिवर्तन आने लगते है कुल मिलाकर वहाँ के पारिस्थितिकीय तंत्र के स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है । जलाभाव के कारण ही वहाँ के आबाद क्षेत्रों से लोग पलायन करने लगते हैं । औद्योगिक विकास रूक जाता है और अर्थव्यवस्था गड़बड़ा जाती है । सूखे की स्थिति से निपटने या नियंत्रित करने के लिए आवश्यक उपाय निम्न हैं:

(i) जल के पारम्परिक स्त्रोतों का रखरखाव और जो नष्ट होने के कगार पर है उन्हें पुनर्जीवित करना।

(ii) जल संरक्षण की विधियों को अपनाना और नीतियों को लागू करना ।

(iii) भू–पृष्ठीय एवं भू–जल का समुचित एवं विवेकपूर्ण उपयोग करना ।

(iv) वनोन्मूलन को रोकना व वृक्षारोपण को बढ़ावा देना ।

(v) वर्षा जल संचयन के अधिक से अधिक उपाय अपनाना जैसे बांधों का निर्माण किया जाना और

(vi) इनके जल को नहरों के द्वारा दूर दूर तक पीने, सिंचाई व अन्य उपयोगों के लिए पहुँचाया जाना।

बोध प्रश्न - 6

निम्न प्रश्नों का अतिसंक्षेप में उत्तर दीजिए ।

(क) राजस्थान में सूखे की स्थिति का प्रमुख कारण क्या है ?

(ख) राजस्थान का लगभग कितने प्रतिशत भाग हर वर्ष सूखा ग्रस्त घोषित किया जाता है ?

(ग) कृषि रसायनों के लगातार उपयोग से मृदा की जल धारण क्षमता किस प्रकार प्रभावित होती है ?

5.6 भारत में जल पर विवाद

प्राकृतिक जल स्त्रोत विशेषकर बड़ी नदियाँ जो दो या दो से अधिक राजनीतिक सीमाओं में से होकर गुजरती है उनके प्रयोग के लिए उपलब्ध जल की मात्रा एवं प्रयोग की पद्धति को लेकर विवाद उत्पन्न होते रहते है । ब्रह्मपुत्र नदी जो विभिन्न देशों से होकर गुजरती है पर अन्तर्राष्ट्रीय जल विवाद है । हमारे देश में भी भिन्न भिन्न राज्यों से होकर बहने वाली नदियाँ उन राज्यों के मध्य विवाद का कारण बनती हैं । उर्ध्वप्रवाह क्षेत्र में बांधों के निर्माण से अनुप्रवाह क्षेत्र में जल की मात्रा एवं उपलब्धता विशेषरूप से ग्रीष्मकाल में कम हो जाती है और जल की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है ।

दक्षिण भारत में कृष्णा नदी के जल वितरण को लेकर तमिलनाडु, कर्नाटक एवं महाराष्ट्र में प्राय: विवाद होता रहता है । कृष्णा नदी दक्षिण की एक बड़ी और महत्वपूर्ण नदी है जो इन तीनों राज्यों से होकर बहती है । अनेक राज्यों से बहने वाली छोटी बड़ी नदियाँ इसमें आकर मिलती है जिन पर भी बाँध बने हुए है आध्रप्रदेश की तुंगभद्रा भी इनमें से एक है जिस पर नागार्जुन सागर बांध बना हुआ है । दक्षिण में तमिलनाडु और कर्नाटक में कावेरी के जल को लेकर विवाद बना हुआ है । राजस्थान व हरियाणा का रावी–व्यास के जल को प्राप्त करने के लिए पंजाब से विवाद चल रहा है ।

भारत सरकार द्वारा जल को अमूल्य राष्ट्रीय निधि मानते हुए व 1987 में देश की राष्ट्रीय जल नीति (National Water Policy) घोषित की गई । वर्ष 2002 में इसे संशोधित किया गया एवं 1 अप्रेल 2002 को राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद द्वारा इसे स्वीकृति प्रदान की गई । जल संसाधनों के एकीकृत प्रबन्धन एवं विकास के अलावा राष्ट्रीय जल नीति में नदी जल एवं नदी भूमि सम्बन्धी विवादों के समाधान हेतु नदी बेसिन संगठन गठित करने पर भी बल दिया गया है । भारतीय संविधान के अनुच्छेद 262 के अन्तर्गत संसद को विधि द्वारा अर्न्तराज्यीय नदियों, नदी घाटियों के जल प्रयोग, वितरण से सम्बन्द्ध विवाद के न्याय निर्णयन हेतु उपलब्ध कर सकने का अधिकार प्राप्त है । 1956 में इसी अनुच्छेद के आधार नदी बोर्ड अधिनियम एवं अन्तर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम पारित हुआ जिसमें केन्द्र को ऐसे जल विवादों के निपटारे के लिए न्यायाधिकरण स्थापित करने. की शक्ति प्रदान की है ।

बोध प्रश्न -- 7

रिक्त स्थानों की पूर्ति कर निम्न वाक्यों को पूर्ण कीजिए --

(क) उर्ध्वप्रवाह क्षेत्र में बांधों के निर्माण से --------- में जल की मात्रा एवं उपलब्धता विशेष रूप से ग्रीष्मकाल में कम हो जाती है और जल की ---------- भी प्रभावित होती है ।

(ख) दक्षिण भारत में कृष्णा नदी के जल को लेकर ---------- कर्नाटक, एवं में प्राय: विवाद होता है ।

(ग) राजस्थान व ---------- राज्यों का रावी व्यास के जल को प्राप्त करने के लिए ----- से विवाद चल रहा है ।

5.7 बांधो से लाभ एवं समस्यायें

सामान्यत: जल के बहाव क्षेत्र में अवरोध लगाकर बहाव को नियंत्रित करने की प्रक्रिया को बांध बनाना एवं पानी के भराव क्षेत्र को बांध कहते है । प्रारम्भ में बांध का प्रयोजन वर्षा के समय जल का भंडारण कर आस–पास के क्षेत्रों में पेयजल आपूर्ति और सिंचाई के लिये था जिसे धीरे धीरे बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं का रूप दिया गया । जिसमें सिंचाई द्वारा वृहद् क्षेत्र में कृषि–उत्पादन, ऊर्जा विकास तथा बाढ़ नियंत्रण प्रमुख हैं । भाखड़ा नांगल, नागार्जुन सागर, हीराकुण्ड, गाँधी सागर आदि भारत के प्रमुख बांध है । भारत में 1949 में भारतीय नदी घाटी परियोजनाओं का प्रारम्भ किया गया और इसके अन्तर्गत सन् 1951 में 246 बांध परियोजनाओं को मंजूरी दी गयी । इन परियोजनाओं का मुख्य उद्देश्य वृहद् क्षेत्रों में सिंचाई और जल विद्युत का निर्माण रखा गया । राष्ट्रीय नदी ग्रिड योजना भारत की 17 बड़ी नदियों और हिमालय की 19 प्रायद्वीपीय नदियों को जोड़ने की योजना है ।

बांध बनाने के कई लाभ हैं । अधिकांश भू–भागों में अनियमित एवं अनिश्चित वर्षा की स्थिति जल समस्या उत्पन्न करती है । आस–पास के आबाद क्षेत्रों में वर्ष भर पेयजल एवं अन्य घरेलू कार्यो हेतु जल की आपूर्ति के लिए वर्षा जल भंडारण की व्यवस्था बांध बनाने से पूर्ण हो जाती है । बांधों में एकत्रित वर्षा जल सिंचाई का प्रमुख स्त्रोत ही नहीं, विश्वसनीय और सुनिश्चित स्त्रोत भी है । भराव क्षमता के आधार पर नहरें निकाल कर इसका जल दूर–दूर तक सिंचाई के काम लिया जाता है । बांधों में एकत्रित अपार जल राशि के वेग से यांत्रिक ऊर्जा प्राप्त कर उसे विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है । भारत में जल विद्युत निर्माण की अपार संभावनायें है । पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से जल विद्युत ऊर्जा उत्पादन प्रदूषण रहित प्रक्रिया है । इसके अतिरिक्त बांध बनाने से बाढ़ नियंत्रण होता है, जिससे भूमि अपरदन में कमी आ जाती है । आवश्यकतानुसार बांध के एकत्रित जल की दूर के क्षेत्रों में भी आपूर्ति कर सूखा नियंत्रण किया जाता है । बांध के पानी से उद्योगों को भी जलापूर्ति होती है । ऐसे कई उद्योग है जिनमें जलाधिक्य प्रयोग होता है जैसे परमाणु बिजली घरों तथा बड़े उद्योगों की भट्टियाँ । बांध बनाने से विशेषकर उसी क्षेत्र के लोगों को बड़ी संख्या में रोजगार के अवसर उपलब्ध होते है । बांध का जल जलीय यातायात के साधन के रूप में काम में लिया जाता है । मत्स्य पालन को भी बढ़ावा मिलता है । एकत्रित अथाह जल राशि उसके आस–पास फैली हरियाली एवं जल–जीवों और जल-पक्षियों की क्रीड़ाओं से पर्यटन को बढ़ावा मिलता है । कुल मिलाकर बांधों से आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है । लाभ के साथ ही बांध बनाने से विशेषकर वृहद् बांधों का पर्यावरण पर विपरीत

प्रभाव पड़ता है तथा अनेक समस्याऐं उत्पन्न हो जाती है । जल के प्राकृतिक प्रवाह को रोककर बांध बना देने से पारिस्थितिकीय असंतुलन पैदा हो जाता है । नदियों के अनुप्रवाह क्षेत्र धीरे धीरे शुष्क हो जाते हैं । बांधों से कृषि योग्य भूमि जलाशयों में तथा बांध के भराव क्षेत्र के सम्पर्क की भूमि दलदल में परिवर्तित हो जाती है । नदी जिस पर बांध बनाया जाता है उसके आसपास का प्राकृतिक वातावरण भी प्रभावित होता है । लगातार एक ही स्थान में पानी के एकत्रित रहने से उसमें खारापन बढ़ जाता है । नदियों के साथ अप्रवाह द्रोणी क्षेत्र से आया अवसाद बांधों में एकत्रित हो जाता है जिससे बांध की भराव क्षमता, पानी की गुणवत्ता और अनुप्रवाह क्षेत्र की उर्वरकता प्रभावित होती है । बांधों के आस पास के क्षेत्र के भू–जल की गुणवत्ता परिवर्तित हो जाती है । भूगर्भिक दृष्टि से बांधों का निर्माण संवेदनशील स्थान पर होता है तो भूकम्प, भू–स्खलन आदि की आशंका रहती है । इसके अतिरिक्त बांधों के निर्माण की प्रक्रिया में कई सामाजिक समस्यायें भी उत्पन्न होती है । बांध बनाने के लिए स्थान प्राप्ति हेतु वनोन्मूलन एवं लोगों का विस्थापन किया जाता है जिससे पुनर्वास की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा लोगों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक समायोजना की समस्या का सामना भी करना पड़ता है । उत्तराखण्ड के टिहरी जिले में टिहरी बांध परियोजना, गुजरात में नर्मदा नदी पर प्रस्तावित सरदार सरोवर परियोजना आदि प्रमुख योजनाऐं है जिनके कारण लोगों के पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन की भयंकर समस्या उत्पन्न हो गयी है ।

बोध प्रश्न -- 8

(क) बांध निर्माण सम्बन्धी बहुउद्देशीय परियोजनाओं के तीन प्रमुख उद्देश्यों के नाम लिखिए।

(i)

(ii)

(iii)

(ख) बड़े बांध बनाने से उत्पन्न होने वाली तीन प्रमुख समस्याओं के नाम लिखो ।

(i)

(ii)

(iii)

5.8 वर्षा जल संचयन

एक ओर बढ़ते शहरीकरण या अनियोजित शहरी विकास एवं कृषि में बढते रसायनों के प्रयोग से वर्षा जल के प्राकृतिक रूप से भू–जल पुर्नभरण के मार्ग अवरूद्ध हो गये है और इन सबसे भू जल भण्डार में समुचित वृद्धि नही हो पाती दूसरी ओर तेजी से बढती जनसंख्या के साथ बढती शुद्ध जल की मांग के कारण जल स्त्रोतों का अंधाधुंध दोहन हो रहा है । बढ़ती संवेदनहीनता के कारण जल का

दुरूपयोग और जल प्रदूषण बढ़ा है । प्रकृति में जल चक्र के साथ वर्षा जल का सतही संचयन एवं भू–जल पुनर्भरण स्वचालित सतत प्रक्रियायें है किन्तु प्रकृति में मानवीय हस्तक्षेप से इस प्रक्रम की गति एवं दिशा में व्यवधान उत्पन्न कर दिये हैं । फलस्वरूप भूमि पर मानवीय उपयोग के शुद्ध जल की मात्रा कम होती जा रही है जिसे वर्षा जल का वैज्ञानिक विधियों से संचयन कर एक हद तक बढ़ाया जा सकता है ।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 22 दिसम्बर 1992 को एक प्रस्ताव पारित कर 22 मार्च को विश्व जल दिवस के रूप में मनाए जाने की घोषणा की । पहला विश्व जल दिवस 1993 में मनाया गया।

आवश्यकतानुसार जल के अभाव में उपयोग किये जा सकने के लिए प्राकृतिक या अप्राकृतिक संरचनाओं में वर्षा जल का रोक लिया जाना ही वर्षा जल संचयन है । यह संचयन सतही जल के रूप में या भू जल के रूप में हो सकता है । वर्षा जल संचयन ाधिक उपयोगी और आसान होता है क्योंकि एक तो यह उचित गुणवत्ता लिए और कम प्रदूषित होता है दूसरे संचयन किये जाने वाले स्थान पर उपलब्ध हो जाता है ।

वर्षा जल का सतही जल के रूप में संचयन तालाब, पोखर, बावड़ी जैसे परम्परागत साधन विकसित कर या बांध, चैकडेम, एनिकट आदि बनाकर किया जाता है । यह संचयन क्षेत्र विशेष में वर्षा की मात्रा या क्षेत्र विशेष की ऊँचाई के आधार पर किया जाता है । अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ पर वर्षा जल की उपलब्धता अधिक होती है ऐसे स्थानों पर बडे बड़े बांधों का निर्माण किया जा सकता है । बांध यदि जल प्रवाह के ऊँचाई वाले क्षेत्र में बनाया जाता है तो निम्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों में आवश्यकता पड़ने पर जल वितरण आसान हो जाता है । जल का भूमिगत संचयन टांका, कुण्ड आदि या कृत्रिम पुनर्भरण के द्वारा सीधे जलभृत में किया जाता है । वैसे सभी सतही जल भण्डारण के साधन रिसाव के द्वारा भू–जल स्तर बढाने में सहायक होते है । वर्षा जल संग्रह हेतु कुछ भूमि को सुरक्षित रखा जाना चाहिए । शहरों में भी भवनों के परित: कुछ रिक्त स्थान होना चाहिए जिससे वर्षा का जल मिट्टी के अन्दर अवशोषित हो सके । प्राकृतिक रूप में जल संचयन सघन वृक्षारोपण कर एवं पारगम्य मृदा युक्त भूमि में वृद्धि कर प्राप्त किया जा सकता है ।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक एवं परम्परागत जल स्त्रोतों के रखरखाव से भी वर्षा जल संचयन में वृद्धि की जा सकती है जैसे तालाब, कुएँ, बावड़ी इत्यादि के पक्के पाट आदि बनाकर, नदियों के तटबन्धन कर, उनके तलों की समय समय पर सफाई कर ।

भारत में जल विशेषज्ञों द्वारा अगले दो दशकों में शुद्ध जल उपलब्धता में भारी कमी की आशंका को दृष्टिगत रखते हुए सरकार द्वारा वर्षा जल संचयन की योजना में 60 हजार एकड़ का एक्शन प्लान तैयार किया गया । केन्द्र सरकार की बहुआयामी हरियाली परियोजना का उद्देश्य भी वर्षा जल संचयन है । गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में मिली समन्वित जलग्रहण की महत्वपूर्ण उपलब्धि को देखते हुए राजस्थान में भी सरकार द्वारा कुंआ सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत **अपना गांव अपनी नाड़ी** योजना बनायी गयी । राज्य के भू–जल विभाग के अनुसार राज्य में वर्षा जल की उपलब्धता एवं स्थानीय जलभूतों की भू–जल स्थिति में अत्यधिक असमानता होने के कारण कृत्रिम भूजल पुनर्भरण की सम्भावना भी अलग अलग होती है । जल संकट के समाधान में अधिकाधिक वर्षा जल का पुर्नभरण किये जाना एक उपलब्धि हो सकता है । इसके लिए शहरी क्षेत्रों से वर्षा के पानी को पक्के नालों द्वारा जलाशयों में पहुँचाना । भवनों की छतों के पानी का संचयन कर पाईप लाइन द्वारा जलभर में पहुँचाना या घरेलू उपयोग

में लाना । सड़क पर बहने वाले वर्षा जल का कृत्रिम पुनर्भरण करना, भूमिगत जल बाँध एवं गैबियन संरचना का निर्माण करना आदि प्रयत्न किये जाते हैं । कृत्रिम पुर्नभरण से पहले एकत्रित जल को सिल्टिंग पिट या फिल्टर पिट में प्रवेश कराया जाता है और इस प्रकार छने हुए शुद्ध जल को पुनर्भरण संरचना में प्रवेश कराते है ।

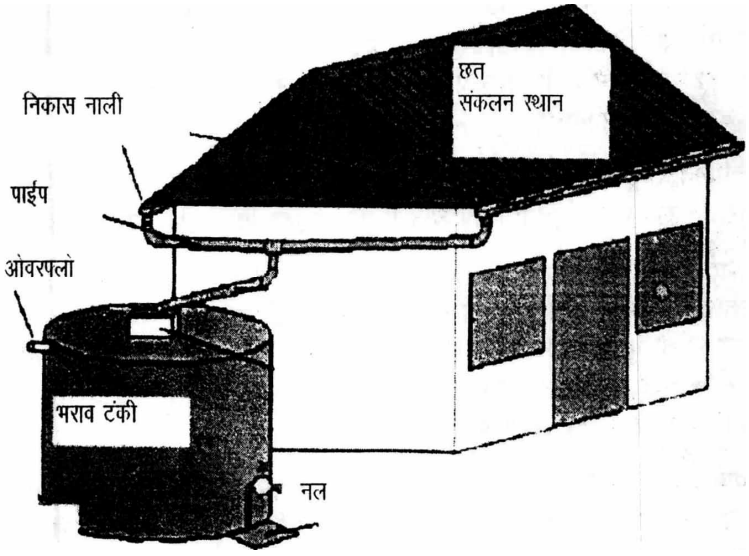

चित्र 5.2 वर्षा जल संचयन

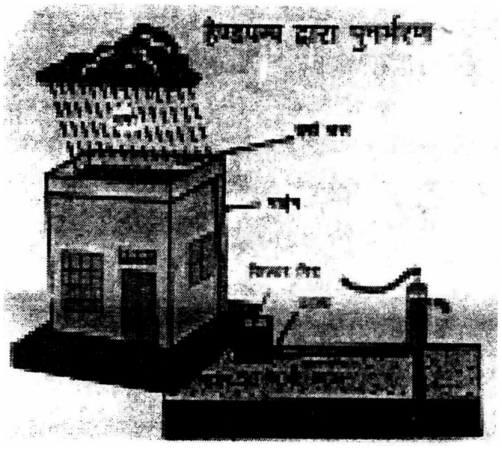

चित्र 5.3 : हैण्डपम्प द्वारा पुर्नभरण

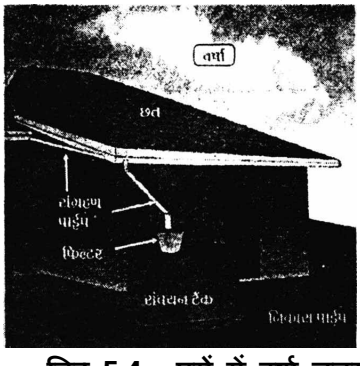

चित्र 5.4 : घरों में वर्षा जलसंग्रह

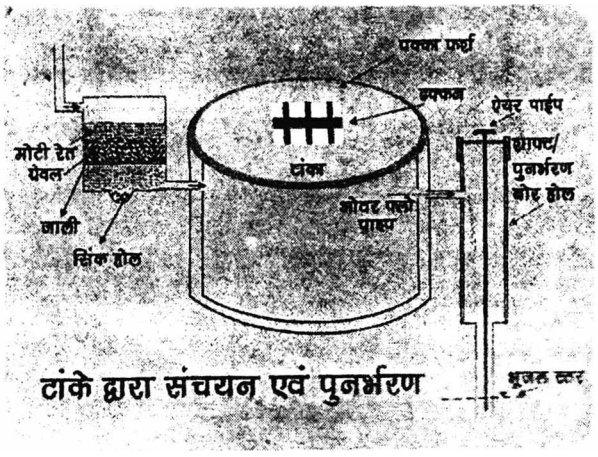

चित्र 5.5 : टांके द्वारा जल संचयन

बोध प्रश्न - 9

शहरी क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन हेतु किए जा सकने वाले तीन उपाय अति संक्षिप्त दीजिए।

(i)

(ii)

(iii)

5.9 सारांश summary

इस इकाई को पढने के बाद आपने जाना कि –

- जल पृथ्वी पर कितने रूपों में है, और किस प्रकार वितरित है । हमारे उपयोग योग्य शुद्ध जल जो कि सतही जल एवं भू जल के रूप में उपलब्ध है पृथ्वी के कुल जल का मात्र 0.7 प्रतिशत है और इसे ही हम जीवन के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में काम लेते है । इसके अतिदोहन और दुरूपयोग से हम और हमारा पारिस्थितिकीय तंत्र प्रभावित हो रहे हैं । धीर– धीरे स्थिति गंभीरता की ओर बढ़ रही है ।
- जल एक नवीकरणीय संसाधन है किन्तु इसका पुनरूत्पादन प्रकृति में उस गति से नहीं हो पाता जिस गति से हम इसका दुरूपयोग और दोहन करते है और इसलिए प्रकृति में शुद्ध जल की मात्रा एवं गुणवत्ता निरन्तर घटती जा रही है ।
- जल मण्डल के जल का भूमंडल पर एवं वायुमण्डल में सतत विनिमय प्राकृतिक चक्र द्वारा होता है जो वातावरणीय ताप, दाब, आर्द्रता आदि में आए परिवर्तनों के कारण सम्पन्न हुई कुछ भौतिक प्रक्रियाओं, प्रमुख रूप से वाष्पन, संघनन एंव अवक्षेपण के माध्यम से हवा के साथ–साथ सौर ऊर्जा और गुरूत्वीय बल के कारण सम्पन्न होता है । जल–चक्र जैव मण्डल का आधार है । प्रकृति में बढ़ता मानवीय हस्तक्षेप जल–चक्र को प्रभावित कर रहा है ।

- विश्व में 95 फीसदी प्राकृतिक आपदाओं की जड़ में जल ही होता है । बाढ और सूखा दोनों ही प्रचण्ड स्थिति में महाविनाशकारी आपदायें हैं ।
- बाढ़ आने का सामान्य प्राकृतिक कारण अतिवृष्टि का अनावृष्टि है इसके अतिरिक्त जलाशयों के बंधन टूटने से भी बाढ़ आ जाती है । भूकम्प, भूस्खलन एवं ज्वालामुखी के फटने आदि प्राकृतिक आपदाओं के द्वितीयक प्रभाव के रूप में भी बाढ़ झा, जाती है या सूखा पड़ जाता है । नदियों के विसर्पित मार्ग और मानव द्वारा उनके मार्ग परिवर्तन से भी बाढ की संभावना होती है ।
- वनोन्मूलन भी इन प्राकृतिक आपदाओं की पुनरावृत्ति का मूल कारण है । कृषि रसायनों का लम्बे समय तक उपयोग और अवैज्ञानिक तरीके से कृषि कार्य करने से मृदा की जल धारण क्षमता कम हो जाती है या नष्ट हो जाती है और फलत: सूखा पड़ता है । जल प्रबन्धन एवं जल संचयन के कारगर उपाय अपनाकर इन आपदाओं पर नियंत्रण किया जा सकता है ।
- एक से अधिक राजनीतिक सीमा में आने वाले जल स्त्रोत विशेषकर नदियाँ जल विवाद का प्रमुख कारण बनती है । भारत में नदियों के जल की मात्रा की उपलब्धता और वितरण को लेकर विभिन्न राज्यों के मध्य विवाद रहते है । इन विवादों के निपटारे हेतु उपबन्ध कर सकने या न्यायाधिकरण स्थापित करने के अधिकार केन्द्र सरकार को दिये गये है ।
- बाँध बनाकर, वर्षा जल संचयन कर आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग सिंचाई, पीने के पानी व अन्य कार्यो के लिए किया जाता है । बड़े बाँधों का निर्माण बहु उद्देश्यीय परियोजनओं के अन्तर्गत किया जाता है जिसके मुख्य उद्देश्य वृहद् क्षेत्र में सिंचाई, पन बिजली उत्पादन व बाढ़ नियन्त्रण होते हैं । बाँध बनाने से कई लाभ होते हैं और उस क्षेत्र विशेष की, आर्थिक विकास दर में वृद्धि हो जाती है । लाभ के साथ साथ बाँध बनाने से कई प्रकार की समस्यायें भी उत्पन्न होती है जैसे वहाँ का पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित होता है, बनने की प्रक्रिया के दौरान स्थान प्राप्ति के लिए लोगों के विस्थापन एवं पुर्नवास जैसी सामाजिक समस्याऐं उत्पन्न हो जाती है ।
- एक ओर बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के साथ साथ बढती शुद्ध जल की मांग के कारण जल स्त्रोंतो का अंधाधुंध दोहन व दुरूपयोग हो रहा है, दूसरी ओर पर्यावरण के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार और वनोन्मूलन से प्राकृतिक जल स्त्रोतों का वर्षा जल से पुनर्भरण उस गति से नहीं हो पा रहा जितनी गति से दोहन हो रहा है । फलस्वरूप जल स्त्रोतों का जलस्तर विशेषरूप से भू जल स्तर गिरता जा रहा है जिससे सम्पूर्ण जलचक्र असंतुलित होता जा रहा है । ऐसे जल संकट के समय में वर्षा जल संचयन के विशेषकर भू जल के कृत्रिम पुनर्भरण के प्रयास सरकारी स्तर पर किये जा रहे है । जल के महत्व को लेकर इसके अति दोहन व दुरूपयोग के विरूद्ध जन जागरूकता पैदा की जा रही है, जन सहयोग की अपेक्षा के साथ जल संचयन की विभिन्न विधियों का प्रचार प्रसार किया जा रहा है, इनके क्रियान्वयन के लिए सम्बन्धित विभाग द्वारा प्रशिक्षण दिये जा रहे है और सरकार द्वारा जल नीतियां लागू की जा रही है । प्रत्येक शिक्षित नागरिक से अपेक्षा की जाती है कि वह इस बहु मूल्य संसाधन का महत्व समझकर इसके संरक्षण व संचयन में योगदान दे ।

5.10 शब्दावली

द्विध्रुव आघूर्ण – एक भौतिक स्थिरांक जो किसी अणु के ध्रुवीय गुणों की

जानकारी देता है।

परावैद्युत स्थिरांक	–	विलायक की विलेय के परमाणुओं के मध्य के स्थिर वैद्युतकीय बलों को तोड़कर अपने में घोलने की क्षमता ।
ऊष्माधारक क्षमता	–	ऊष्मा की वह मात्रा जो किसी पदार्थ का तापक्रम 1^0C से बढाने की लिए आवश्यक होती है ।
पृष्ठतनाव	–	उस बल का माप जो किसी द्रव की सतह को फैलने से रोकता है ।
घनत्व	–	इकाई आयतन में उपस्थित द्रव्यमान की मात्रा ।
श्यानता	–	द्रव की स्वयं को बहने से राकने की क्षमता ।
विलायक	–	एक द्रव जो दूसरे पदार्थ या पदार्थो को अपने में घोलने की क्षमता रखता हो ।
हाइड्रोजन बंध	–	हाइड्रोजन परमाणु के माध्यम से बंध ।
प्रदूषक	–	दूषित करने वाला कारक ।
यांत्रिक ऊर्जा	–	मशीनों से प्राप्त शक्ति ।
विद्युत ऊर्जा	–	बिजली से प्राप्त शक्ति ।
नवीकरणीय	–	जिसका पुर्नउत्पादन किया जा सके ।
गुरुतत्वीय बल	–	वह बल जिससे पृथ्वी किसी वस्तु को अपनी ओर खींचती है ।
आर्द्रता	–	हवा में पायी जाने वाली नमी ।
बंदरगाह	–	जहाजों के रूकने का स्थान जहाँ पानी गहरा हो किन्तु बहाव कम हो ।
वाष्पन	–	किसी द्रव के वाष्प में बदलने की क्रिया ।
उर्ध्वपातन	–	किसी ठोस के बिना द्रव में बदले सीधे वाष्प में बदलने की क्रिया ।
संघनन	–	छोटी–छोटी चीजों का मिलकर बड़े में परिवर्तित हो जाना । जैसे
जल वाष्प की छोटी	–	छोटी बूँदों का ठण्डी हवा की उपस्थिति में मिलकर बादल बना लेना।
अवक्षेपण	–	संतृप्तता के बाद अवस्था बदलकर अलग हो जाना ।
निक्षेपण	–	संतृप्तता के बाद उसी अवस्था में किसी आधार पर ठहर जाना ।
वाष्पोत्सर्जन	–	वाष्प को उत्सर्जित करना । जैसे पेड़ पौधा द्वारा जल वाष्प का उत्सर्जन।
जल प्लावन	–	पानी के बीच घिर जाना ।
पुर्नभरण	–	उसी चीज से किसी स्थान को वापस भर देना ।
जल भर या जल भृत	–	चट्टानों में एक प्रकार का जल भण्डारण जिससे कुएँ स्त्रोतों

को जल की आपूर्ति होती है ।

एश्चुअरी या वेला संगम	–	वह स्थान जहाँ स्थलीय जल और समुद्री जल आपस में मिलते और मिश्रित होते है ।
कृषि रसायन	–	कृषि में प्रयोग होने वाले रसायन जैसे उर्वरक, कीटनाशी पदार्थ आदि ।
गाद	–	मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म बालू से भी छोटे चट्टानों के कण।
प्रशीतक द्रव	–	पदार्थ जो प्रावस्था में परिवर्तन, जैसे द्रव से गैस या गैस से द्रव के कारण प्रशीलन प्रभाव उत्पन्न करता है ।
वायुमण्डलीय दाब	–	किसी सम्बन्धित स्थल से ऊपर वायुमण्डलीय गैसों का भार जो उस स्थल पर महसूस किया जाता है ।
विलवणीकरण	–	लवणों से मुक्त करने की प्रक्रिया ।

5.11 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. पारिस्थितकीय परिचय, श्री देवेन्द्र प्रताप नारायण सिंह, राजस्थान हिन्दी गन्थ अकादमी, 1976.
2. भारत का सामान्य भूगोल भाग–1 एनसीईआरटी, 1978
3. भारत का सामान्य भूगोल भाग–2, एनसीईआरटी, 1978
4. मनुष्य और वातावरण, एनसीईआरटी, 1976
5. Singh, J.S., Singh S.P. and Gupta S.R. Ecology Environment and Resources Eonstruction

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) भू–जल
   (ख) शुद्ध
   (ग) दूषित
   (घ) लवणों
   (ड.) दो
2. (क) भूमि अपरदन
   (ख) वाष्पन
   (ग) सौर ऊर्जा
3. (क) वाष्पन
   (ख) संघनन
   (ग) अवक्षेपण
4. क्योंकि इस अनुपात के अधिक होने पर ही पृथ्वी पर भिन्न वनस्पतियाँ पनपती हैं ।
5. (क) बाढ़
   (ख) महामारियाँ

(ग) विसर्पित

(घ) बांधों

(ड.) जन–धन

6. मानसून का विफल होना

(ख) पचास

(ग) खत्म या कम हो जाती है ।

7. (क) (i) अनुप्रवाह क्षेत्र (ii) गुणवत्ता

(ख) (i) तमिलनाडु (ii) महाराष्ट्र

(ग) (i) हरियाणा (ii) पंजाब

8. (क) (i) वृहद् क्षेत्र में सिंचाई

(ii) जल विद्युत उत्पादन

(iii) बाढ़ नियंत्रण

(ख) (i) पानी में लवणता की वृद्धि

(ii) स्थान प्राप्ति हेतु लोगों के विस्थापन से पुनर्वास की समस्या

(iii) आस–पास के क्षेत्रों के भू–जल की गुणवत्ता में परिवर्तन

9. (i) भवनों की छतों से पानी का संचयन कर पाइप लाइन द्वारा जल भूत में पहुँचाना ।

(ii) भवनों के परित: कुछ रिक्त स्थान छोड देना जिससे वर्षा जल का जल मिट्टी में अवशोषित हो सके।

(iii) सड़क पर बहने वाले वर्षा जल का कृत्रिम पुनर्भरण करना ।

5.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सतही एवं भू–जल के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगों का संक्षिप्त विवरण दीजिए ।
2. भू–जल के अति–दोहन से पारिस्थितिकी तंत्र किस प्रकार प्रभावित हो रहा है?
3. प्रकृति में जल–चक्र का संचलन किस प्रकार होता है? चित्र की सहायता से समझाइए ।
4. मानवीय हस्तक्षेप से जल–चक्र किस प्रकार प्रभावित हो रहा है ? समझाइए ।
5. बाढ़ आने के विभिन्न कारणों का उल्लेख कीजिए एवं बाढ़ नियंत्रण के साधनों का संक्षिप्त विवरण दीजिए ।
6. सूखे की स्थिति क्या है ? सूखा क्यों पड़ता है ? इससे बचने के उपायों पर प्रकाश डालिए ।
7. **"भारत में जल पर विवाद"** एक संक्षिप्त लेख लिखिए ।
8. बांधों के बनाने से पर्यावरण किस प्रकार प्रभावित होता है ? समझाइए ।
9. बांधों के बनाने से क्या लाभ और क्या हानियाँ है? संक्षिप्त विवरण दीजिए ।
10. वर्षा जल संचयन क्यों आवश्यक है ? वर्षा जल संचयन के लिए अपनाये जा सकने वाले तरीकों का उल्लेख कीजिए ।

इकाई – 6

खनिज सम्पदा

Mineral Resources

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 खनिज सम्पदा का उपयोग

6.3 खनिज सम्पदा का अतिदोहन

6.3.1 अतिदोहन के कारण

6.3.2 अतिदोहन के दुष्प्रभाव

6.4 राजस्थान की खनिज सम्पदा

6.4.1 धात्विक खनिज

6.4.2 अधात्विक खनिज

6.4.3 ईधन

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

6. उद्देश्य(Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान पाएगें कि –

- खनिज सम्पदा हमारे लिए कितनी उपयोगी है ।
- खनिज सम्पदा के अतिदोहन के क्या–क्या कारण हो सकते हैं ।
- खनिज सम्पदा के अतिदोहन के दुष्प्रभाव मानव ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जीव जगत् के अस्तित्व के लिए हानिकारक हो सकते हैं ।
- राजस्थान की मुख्य खनिज सम्पदा कौन–कौनसी है व राजस्थान में ये कहाँ–कहाँ पाये जाते हैं।

6.1 प्रस्तावना(Introduction)

पृथ्वी की विभिन्न पर्ते अनेकों प्रकार की चट्टानों से निर्मित हैं । मुख्य रूप से तीन प्रकार की चट्टानें पायी जाती है । पृथ्वी का आरम्भिक निर्माण सबसे प्राचीन आग्नेय चट्टानों से हुआ, तदुपरान्त तलछटीय चट्टानों की उत्पत्ति हुई थी । कालान्तर में पृथ्वी पर भौगोलिक परिवर्तन होने के कारण इन दोनों चट्टानों के उलटफेर होने से तीसरे प्रकार की रूपान्तरित चट्टाने खनिज पदार्थो के मिश्रण से निर्मित हुई है ।

राजस्थान को खनिजों का अजायबघर कहा जाता है । राजस्थान में खनिज काफी मात्रा में मिलते हैं जिनसे राज्य में अधिक आय व रोजगार के स्त्रोत बढ़ाये जा सकते है । राजस्थान में कई प्रकार के खनिज उपलब्ध है उनमें से लगभग 39 प्रकार के खनिजों का निरन्तर खनन हो रहा है । राजस्थान का खनिजों की दृष्टि से भारत में दूसरा स्थान है ।

राजस्थान में खनिजों के विकास का अनुमान इससे लग जाता है कि खड़िया मिट्टी या हरसौंठ, धीया पत्थर, एस्बेस्टॉस, स्टेटाइट और फेल्सपार के उत्पादन में राजस्थान का स्थान प्रथम है, लेकिन विकास कार्यो के दौरान हम यह बिल्कुल ही भूल गये है कि हमारी खनिज सम्पदा का अतिदोहन हमारे पर्यावरण में असंतुलन पैदा कर देगा जो कि जीव–जगत के लिये अनिष्टकारी हो सकता है ।

इस पाठ्यक्रम की पिछली इकाइयों में आप पर्यावरण, वन, जल जैसी कुछ महत्वपूर्ण विषयों के बारे में पढ़ चुके हैं । आपकों याद होगा कि वन एवं जल के अतिदोहन रमे कई समस्याएं उत्पन्न हो सकती है ।

इस इकाई में आप पढ़ेंने कि खनिज सम्पदा हमारे लिए कितनी उपयोगी है व इस के अतिदोहन के क्या–क्या दुष्परिणाम हो सकते है । आपको ज्ञात हो जाएगा कि हमारे राजस्थान की खनिज सम्पदा कौन–कौनसी है व ये खनिज राजस्थान में कहाँ–कहाँ पाए जाते हैं ।

6.2 खनिज सम्पदा का उपयोग (Use of Mineral Resources)

खनिज सम्पदा के बिना मानव जीवन की कल्पना असंभव है । विश्व में किसी भी देश का आर्थिक विकास वहाँ पाये जाने वाले खनिजों की उपलब्धता एवं उपयोग पर निर्भर करता है । खनिजों के उपयोग से ही आज विभिन्न उपयोगों की छोटी वस्तु से लेकर विशाल उद्योगों में काम आ रही बड़ी मशीनों तक का निर्माण सम्भव हो पाया है । ऐसी ही कुछ महत्वपूर्ण खनिज सम्पदा का उपयोग निम्न प्रकार से है –

लोहा

लोहे का हमारे दैनिक जीवन में बहुत महत्व है । लोहे से कई प्रकार के घरेलू सामान बनाए जाते हैं । इससे अनेक मशीनें व औजार बनते हैं । यह एक औद्योगिक महत्व का खनिज है ।

मैंगनीज

इस्पात बनाने के अतिरिक्त बैटरी, रंग रोगन, रंगीन कांच, चीनी मिट्टी के बर्तन, ब्लॉक, छपाई की स्याही आदि बनाने के काम में आता है ।

सीसा एवं जस्ता

इनका उपयोग ट्यूब, बन्दूक की गोली, बरतन व वर्क बनाने में किया जाता हैं ।

तांबा

ताम्बे के बगैर शायद हमारा जीवन अंधकारमय होगा क्योंकि यह खनिज बिजली के तार बनाने के काम में आता है । ताम्बे के बर्तन में पानी पीना स्वास्थ्य के लिये लाभदायक माना जाता है । इस खनिज से विभिन्न कलात्मक वस्तुएं भी बनाई जाती है ।

अभ्रक

अभ्रक का उपयोग वायुयान की खिड़कियों के शीशे बनाने में, बिजली व रेडियों के सामान में, गुलाल में, सजावट करने में, लालटेन की चिमनियों, नेत्ररक्षक चश्मों, अग्नि प्रतिरोधक पदार्थो व साड़ियों

की छपाई के काम में आता है । इसका प्रयोग दवाइयाँ बनाने के लिए भी किया जाता है । अभ्रक के बचे चूरे से चादरे बनाई जाती है इस उद्योग को माइकेनाइट कहा जाता है ।

एस्बेस्टॉस

इसका उपयोग अग्निरोधक चददरे, रस्से आदि बनाने के काम में आता है ।

संगमरमर

राजस्थान का संगमरमर विश्व प्रसिद्ध है । इसका उपयोग मन्दिर, बढ़िया इमारते, मूर्तियाँ, कलात्मक वस्तुएँ, इत्यादि बनाने में किया जाता है ।

रॉक फॉस्फेट

इस खनिज का उपयोग खाद, दवाइयाँ आदि बनाने में किया जाता है ।

चूना पत्थर

चूना सीमेन्ट बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में सीमेन्ट कारखानों में काम में लिया जाता है व इमारते बनाने में भी इसका उपयोग किया जाता है ।

चीनी मृत्तिका

यह खनिज रबर उद्योग, डिटरजेन्ट्स, पेन्ट्स, सीमेन्ट, टेक्सटाइल्स उद्योग के अलावा चीनी के बर्तन बनाने के काम में लिया जाता है ।

नमक

नमक के बिना मानव जीवन स्वादहीन हो जाएगा । इसका उपयोग खाने में, कॉस्टिक सोड़ा, खाने का सोड़ा, कपड़े धोने का सोड़ा व तेजाब बनाने में किया जाता है ।

घीया पत्थर

घीया पत्थर से मूर्तिया व खिलौने बनते हैं । इसका चूरा शरीर पर लगाने के पाउडर में पड़ता है ।

जिप्सम

इसका उपयोग मुख्यत: रासायनिक खाद, प्लास्टर ऑफ पेरिस, विशेषत: चिकित्सा एवं नकली दाँतों के प्लास्टर, रंग–रोगन आदि में किया जाता है ।

फेल्सपार

इस खनिज का उपयोग चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने, कांच, मीना व अपघर्षकों के बनाने में किया जाता है ।

डोलोमाईट

डोलोमाईट का उपयोग इमारती पत्थर के व्यापार के लिए पत्थर के टुकड़ों तथा चूरे के बनाने, चूना बनाने, कृषि कार्यो व कागज बनाने की सल्फाइट विधि में अम्लीय द्रव्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है ।

फ्लोराइट

इसका उपयोग रासायनिक उद्योग एवं सिरेमिक उद्योग में किया जाता है । यह सीमेन्ट कैल्सियम कार्बाइड तथा साइनेमाइड, अपघर्षकों, तापरोधकों, ईटों तथा कार्बन के बने विद्युत द्वारों के निर्माण में भी एक आवश्यक खनिज है । इसका उपयोग शीतकों तथा कीटनाशी पदार्थो के बनाने में किया जाता है ।

ईधन खनिज

कोयला -- कोयला एक मुख्य ईधन है जो कि रसोईघर, कारखानों के बॉयलर में, रेल के इंजन चलाने तथा लोहा आदि गलाने में काम में आता है ।

खनिज तेल

यह हमारे दैनिक जीवन, वाहनों एवं उद्योगों आदि में उपयोगी है?

बोध प्रश्न

प्रश्न 1 अभ्रक के बचे हुए चूरे से चादरे बनाने के उद्योग को क्या कहा जाता है ?

प्रश्न 2 सीमेन्ट बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में कौनसा खनिज काम में लिया जाता है ?

प्रश्न 3 राजस्थान का खनिजों की दृष्टि से भारत में कौनसा स्थान है ?

प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में देंखें ।

6.3 खनिज सम्पदा का अतिदोहन (Exploitation of Mineral Resources)

अन्य जीवधारियों की भांति मानव भी प्राकृतिक तन्त्र का एक साधारण सदस्य है और जीवन–यापन के लिए विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहता है । बुद्धि के विकास ने मानव को प्राकृतिक संसाधनों का मालिक बना दिया । परिणामस्वरूप मानव ने इन संसाधनों का मनमाना अंधाधुन्ध दोहन प्रारम्भ कर दिया ।

आप जानते है कि खनिज सम्पदा का अतिदोहन मानव के बढते हुए लोभ का परिणाम है । खनिज सम्पदा के अतिदोहन के निम्न मुख्य कारण हो सकते है –

6.3.1 अतिदोहन के कारण

अ जनसंख्या वृद्धि

ब. विकास परियोजनाएं

अ. जनसंख्या वृद्धि

विकसित तथा विकासशील देश जनसंख्या वृद्धि को लेकर चिंतित हैं । इसके बावजूद भी जनसंख्या विस्फोटक गति रवे बढ़ती जा रही है । आवास व पर्यावरण की वर्तमान जर्जर अवस्था का कारण अत्यधिक आबादी ही है । अधिक आबादी का मतलब है – भोजन की अधिक मांग, अधिक पर्यावरण प्रदूषण, वन का विनाश तथा प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन ।

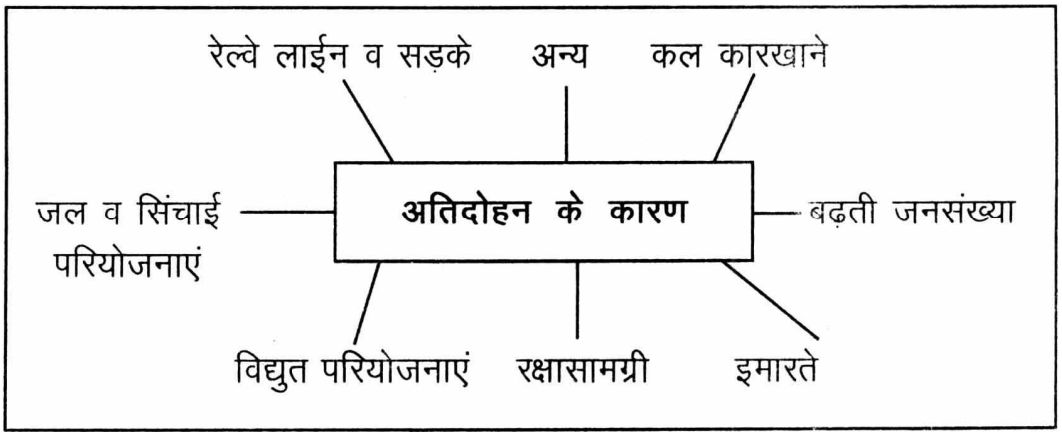

जनसंख्या वृद्धि तथा प्राकृतिक सम्पदा का दोहन दोनों में समन्वय एक निश्चित समय व प्रावस्था के बाद असन्तुलित हो उठेगा इसमें कोई संशय नहीं है ।

ब. विकास परियोजनाएं

यहाँ हम विकास परियोजनाओं के बारे में संक्षिप्त में पढ़ेंगे । नई–नई विकास परियोजनाएँ खनिज सम्पदा के अतिदोहन का मुख्य कारण बनती है । आज हम खनिज सम्पदा के संतुलित उपयोग से निकलकर उनके अतिदोहन की तरफ आ रहे हैं । रेल्वे लाईनों, सड़कों, इमारतों, बांधों, बस्ती, विद्युत परियोजनाओं, जल व सिंचाई इत्यादि परियोजनाओं हेतु खनिज का अन्धाधुन्ध दोहन होता है ।

विभिन्न औद्योगिक परियोजनाओं में, जो कि मानव के विकास रो जुड़ी है, लाखों टन कच्चा माल लगता है । औद्योगिकीकरण ऐसी परियोजना नहीं है जिसमें एक बार ही खनिजों का इस्तेमाल किया जाता हो । रक्षा सामग्री बनाने में विभिन्न खनिजों का अतिदोहन किया जा रहा है । हमारा रक्षा बजट प्रति वर्ष बढ़ जाता है । इस तरह विभिन्न परियोजनाओं हेतु खनिजों का निरन्तर खनन हो रहा है ।

6.3.2 अतिदोहन के दुष्प्रभाव

अब तक आप समझ गये होंगे कि खनिजों के अतिदोहन के क्या–क्या कारण हो सकते है । इन्हीं कारणों की वजह से खनिज सम्पदा का असंतुलित तरीके से दोहन हो रहा है । अतिदोहन के कुछ दुष्प्रभाव निम्न प्रकार से हैं –

1. **वन विनाश** -- जिस भू–भाग: पर खनिजों का दोहन किया जाता है वहाँ सर्वप्रथम भूसतह पर आच्छादित वनस्पति को साफ किया जाता है । अत: वनस्पति विनाश से जलवायु सन्तुलन बिगड़ने के साथ ही मृदा एवं जल संसाधन भी प्रभावित होते है । मृदा अपरदन से जलीय चक्र बाधित होता है ।
2. **जैव विविधता का विनाश** -- खनिज खनन हेतु की जाने वाली वनस्पति की कटाई के परिणामस्वरूप कई प्रकार के दुर्लभ पेड़ पौधों की कटाई कर दी जाती है । इसके साथ ही वहाँ रहने वाले जीव–जन्तुओं का अस्तित्व भी संकट में पड़ जाता है क्योंकि उनके आवास नष्ट हो जाते हैं ।
3. **मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव** -- खनन कार्य में मानव श्रमिकों के स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है । इससे कई प्रकार की बीमारियाँ भी हो सकती है उनकी आयु घट जाती है व कभी–कभी हादसों की वजह से मृत्यु भी हो जाती है ।

4. **भूस्खलन** -- अनियोजित तरीके से खनन कार्य करने पर भूस्खलन हो जाता है । जिसकी वजह से वहाँ काम करने वालों की मृत्यु भी हो सकती है ।
5. **भूमि अवनयन** -- खनिजों के खनन के दौरान भूमि अपने वास्तविक स्वरूप में नहीं रह पाती है तथा बंजर प्रकृति की बन जाती है जिसका प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है ।
6. **पर्यावरणीय प्रदूषण** -- अतिदोहन के हानिकारक परिणामो में वायु, भूमि एवं जल प्रदूषण सम्मिलित है । खनिज के खनन के दौरान धूल के कण वायुमण्डल में मिलकर उसे प्रदूषित करते हैं । अनेक मंहगे तत्वों जैसे स्वर्ण, प्लेटिनम इत्यादि जो कि बहुत ही कम मात्रा में उपस्थिति होते हैं कि प्राप्ति हेतु इनके अयस्कों को बड़ी मात्रा में पीस कर जल में धोया जाता है जिससे नदियों व झीलों का जल दूषित होता है । खनन के दौरान अनुपयोगी उत्पाद की वजह से उस क्षेत्र की भूमि बंजर हो जाती है । इस प्रकार अत्यधिक खनन गतिविधियां हमारे सम्पूर्ण वातावरण को दूषित कर देती है ।
7. **अन्य कारण** -- सामान्यत: खनन में मलबा, निकाली गई खनिज सम्पदा से कई गुणा ज्यादा होता है और यह भू–पृष्ठ का अधिक भाग घेरती है । भूमिगत खनन में भूमि धंसने अथवा भूस्खलन भी हो सकता है । इन क्षेत्रों में खेती योग्य भूमि की क्षति हो जाती है ।

   पहाड़ी क्षेत्रों में अतिदोहन के कारण जलस्त्रोत समाप्त हो जाते हैं । वर्तमान में जो मौसम परिवर्तन हमें दिखाई दे रहा है उसका एक मुख्य कारण अतिदोहन भी है ।

   राजस्थान में इमारती पत्थर प्राप्त करने हेतु चट्टानों को तोड़ा जाता है जिससे हमारे प्रदेश को सुशोभित करने वाली पर्वत श्रृंखलाएं अपना अस्तित्व खोती जा रही है ।

   अत: हम यह कह सकते हैं कि खनिजों का. अतिदोहन मानव ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जीव जगत के लिए हानिकारक होगा ।

6.4 राजस्थान की खनिज सम्पदा(Mineral Resources of Rajasthan)

खनिज पदार्थ मुख्यत: प्राचीन चट्टानों में पाये जाते हैं । राजस्थान में अरावली पर्वत श्रेणियाँ सरंचना की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन है, इसलिए राजस्थान के अनेक भागों में खनिज पदार्थ विद्यमान है । राजस्थान में विविध प्रकार के खनिजों के भण्डार है । कई खनिजो के उत्खनन में राजस्थान का एकाधिकार हैं । कई खनिजों के उत्पादन में राजस्थान एकाधिकार रखता है । खनिज सम्पदा के सन्दर्भ में राजस्थान की स्थिति निम्न प्रकार है –

1. खनिज जिन पर राजस्थान का एकाधिकार है -- राजस्थान में मिलने वाले खनिज जैसे जस्ता, सीसा, संगमरमर, चाँदी, तामड़ा, पन्ना, रॉक फॉस्फेट, कैडमियम आदि ऐसे खनिज है जिन पर राज्य का एकाधिकार है । ये भारत में अन्यत्र कहीं नहीं पाये जाते हैं ।

2. वे खनिज जिनके उत्पादन में राजस्थान का महत्वपूर्ण स्थान है -- जिप्सम, एस्बेस्टॉस, सिलिका, टंगस्टन, ताम्बा, इमारती पत्थर आदि खनिज ऐसे हैं जिनका अधिकांश उत्पादन राजस्थान में होता है ।

3. वे खनिज जिनकी राजस्थान में कमी है -- लोहा, मैंगनीज, कोयला, पैट्रोलियम, ग्रेफाइट, कियोनाइट स्लेट पत्थर आदि खनिजों की कमी है ।

4. वे खनिज जिनमें राजस्थान का हिस्सा तथा उत्पादन नगण्य है -- बेराइट, चीनी मृत्तिका और बरमेकूलेट आदि खनिज नगण्य स्थिति में है ।

खनिजों को हम निम्न भागों में बांट सकते है –

I. धात्विक खनिज

इन खनिजों के अयस्कों में रासायनिक प्रक्रिया द्वारा मूल खनिज अलग किये जाते है । धात्विक खनिजों को तीन भागों में बांटा जा सकता है–

(अ) लौह धातु -- इसमें खनिज लोहा, टंगस्टन, मैंगनीज आदि खनिजों को सम्मिलित किया जाता है ।

(ब) अलौह धातु -- इसमें जस्ता, ताम्बा, सीसा, टिन, जिप्सम, आदि खनिजों को सम्मिलित किया जाता है ।

(स) बहुमूल्य धातुएँ-- इनमें चाँदी, सोना, प्लेटिनम आदि बहुमूल्य खनिज आते हैं ।

II. अधात्विक खनिज

इन खनिजों को रासायनिक प्रक्रिया से परिष्कृत कर उनके मूल खनिज अलग नहीं किये जाते। इनका प्राकृतिक रूप में ही प्रयोग किया जाता है । इनमें से अधिकांश औद्योगिक प्रक्रियाओं में प्रयुक्त होते है, अत: इन्हें औद्यौगिक खनिज भी कहा जाता है ।

अधात्विक खनिजों को हम निम्न भागों में बांट सकते है –

(अ) उष्मारोधी उच्च–तापसह एवं मृत्तिका खनिज – एस्बेस्टॉस, फेल्सपार, बालु कांच, क्वार्टज, मेग्नेसाइट वरमेकूलेट, चीनी मृत्तिका, अग्नि सह मिट्टी, डोलोमाइट;

(ब) इलेक्ट्रॉनिक एवं आण्विक खनिज – अभ्रक, यूरेनियम ।

(स) बहुमूल्य पत्थर – पन्ना, तामड़ा ।

(द) रासायनिक खनिज – नमक, बेराइट, चूना पत्थर, फ्लूस्पर ।

(य) उर्वरक खनिज – जिप्सम, रॉक फॉस्फेट, पाइराइट ।

III. ईधन खनिज

इनमें लिग्नाईट, खनिज तेल को सम्मिलित किया गया है ।

यहाँ राजस्थान के प्रमुख खनिजों का वर्णन किया जा रहा है ।

6.4.1 धात्विक खनिज

लोहा (Iron) -- राजस्थान में लोहा निकालने का कार्य 1953 में प्रारम्भ हुआ । ऐतिहासिक खोज व प्राचीन खण्डहरों से यह सिद्ध हो गया है कि प्राचीनकाल में भी राज्य में लोहे का विदोहन किया जाता था । वर्तमान में यहाँ लोहे का बहुत कम उत्पादन हो रहा है । सभी उत्पादित अयस्क हैमेटाइट व मैग्नेटाइट श्रेणी का है ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान के लोहा उत्पादक क्षेत्रों में मोरीजा,–बानोला क्षेत्र, नीमला क्षेत्र, डाबला क्षेत्र, नाथरा पोल क्षेत्र प्रमुख है । इनके अलावा झालावाड़, बून्दी, बांसवाड़ा, भीलवाडा आदि जिलों में भी लोहा पाया जाता है ।

मैंगनीज (Manganese)-- मैंगनीज अयस्क का प्रमुख उपयोग इस्पात के उत्पादन में होता है, जहाँ इसका मुख्य काम गंधक के प्रभाव का प्रतिकार करना है । इसके लिए लोहे और मैंगनीज की धातु का मेल किया जाता है । यह सामरिक महत्व का खनिज है फलत: इसकी मांग निरन्तर बढ़ रही है । उत्पादन क्षेत्र – राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में सर्वाधिक मैंगनीज पाया जाता है । कुछ मैंगनीज अयस्क उदयपुर जिले व जयपुर जिले में भी पाये जाते हैं ।

सीसा और जस्ता (Lead & Zink) -- सीसा और जस्ता सान्द्र का उत्पादन केवल राजस्थान ही करता है । जस्ता एवं सीसा साथ–साथ एक ही धातु से निकाले जाते हैं । चांदी भी इसी धातु से मिलती है । जस्ता एक भूरी सख्त धातु होती है । जस्ता के उत्पादन में राजस्थान का एकाधिकार है ।

उत्पादन क्षेत्र -- जस्ते का उत्पादन क्षेत्रों में उदयपुर से 40 कि.मी. दक्षिण पूर्व जावर गाँव के पास जावर क्षेत्र प्रमुख है । इस क्षेत्र में जस्ता निकालने का कार्य उदयपुर के महाराणाओं के काल में होता था । मोचिया मगरा की पहाड़ियों में भी जस्ता निकाला जाता है । उदयपुर के पास देवरी में जस्ता गलाने का कारखाना स्थापित हो जाने से अब राजस्थान से बाहर जस्ता गलाने के लिए नहीं भेजा जाता है।

उदयपुर जिले में रिखवदेव व देबारी, डूंगरपुर जिले के गूंधरा व मांडी, सवाईमाधोपुर जिले में चौथ का बरवाड़ा, अलवर जिले में गुढ़ा किशोरीदास, बांसवाड़ा जिले में वर डालिया तथा सिरोही जिले में जोपार न्यारा व तुरंगी क्षेत्र में भी जस्ते के भण्डार हैं ।

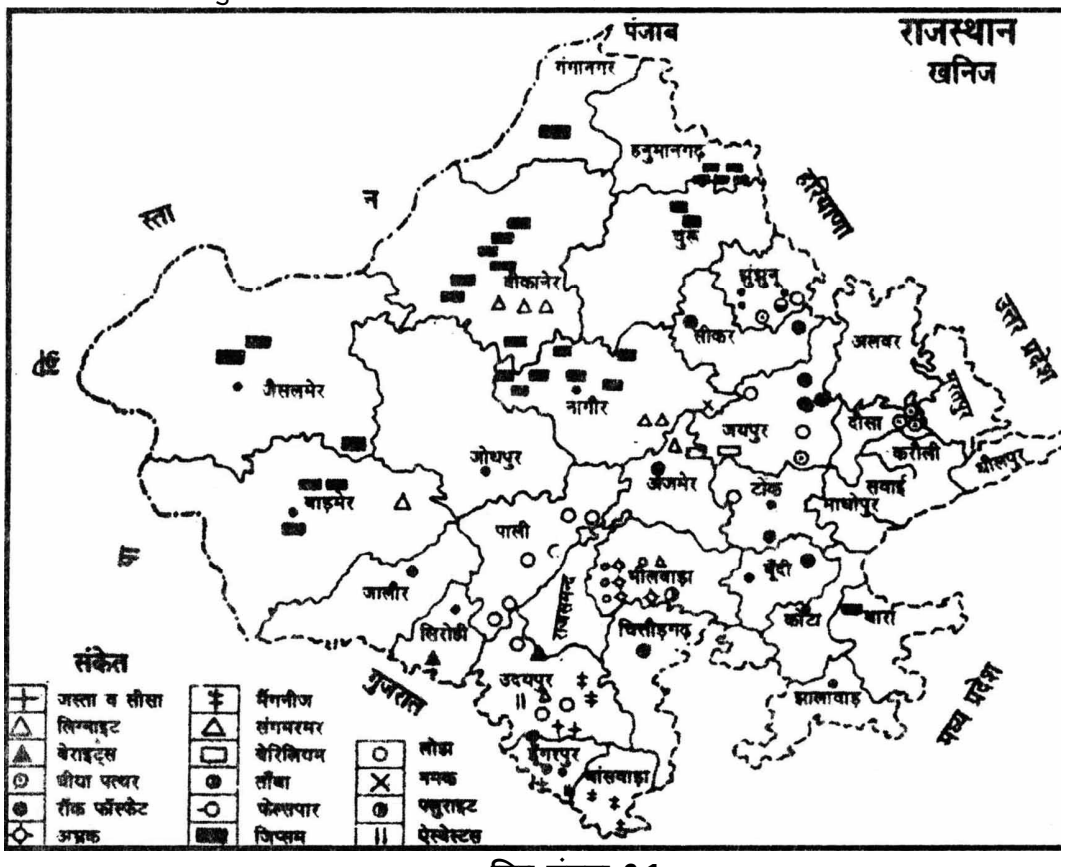

चित्र संख्या 6.1

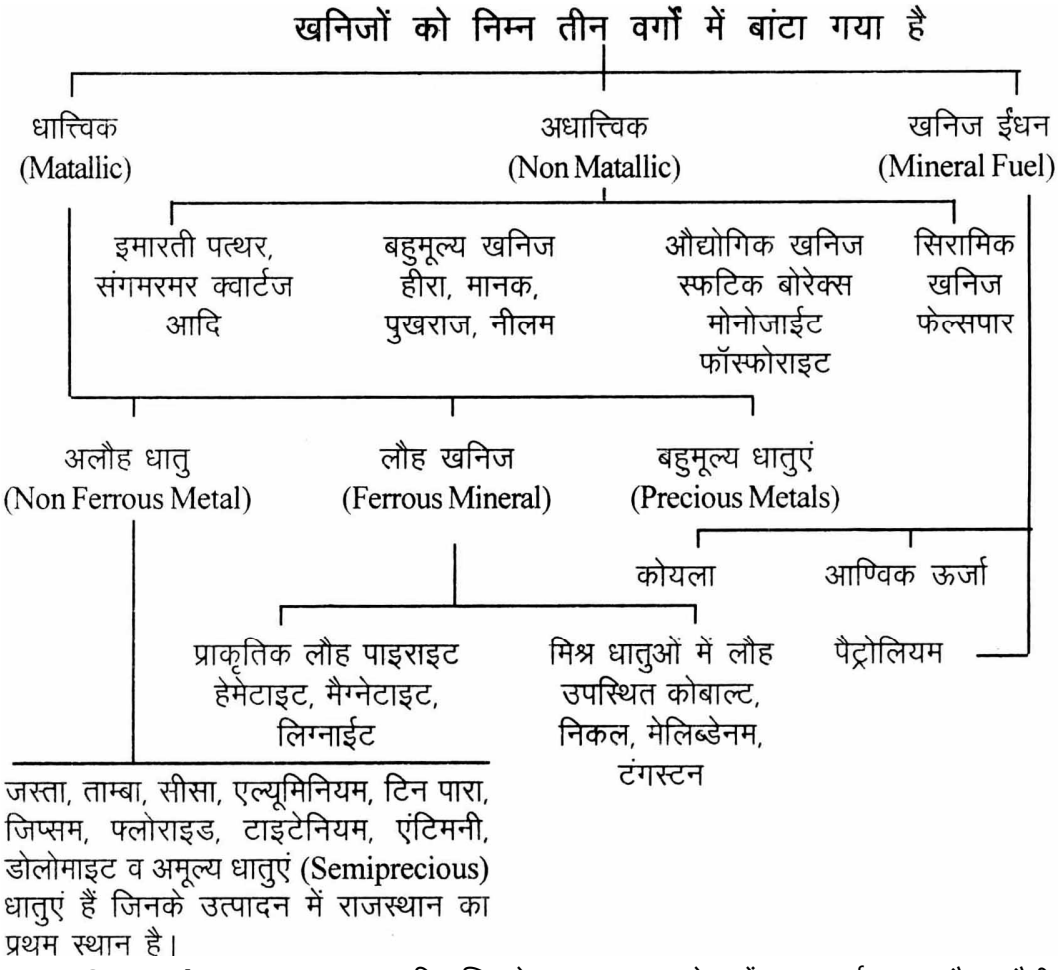

ताम्बा (Copper) – ताम्बा उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान का देश में महत्वपूर्ण स्थान है । चौथी योजना में खेतड़ी नामक स्थान पर ताम्बा साफ करने का एक कारखाना स्थापित किया गया ।

उत्पादन क्षेत्र -- ताम्बा प्रमुखत: खेतड़ी सिंघाना क्षेत्र, अलवर जिले में खो–दरीबा क्षेत्र, चित्तौड़गढ़ जिले में भूपालसागर के आस–पास का क्षेत्र, भीलवाड़ा जिले में चन्दपुरा क्षेत्र, चुरू जिले में बिदासर क्षेत्र आदि क्षेत्र में पाया जाता है ।

टंगस्टन (Tungsten) -- यह सामरिक महत्व का खनिज है जो मुख्यत: राजस्थान में पाया जाता है । नागौर जिले के डेगाना–भाकरी स्थित टंगस्टन परियोजना क्षेत्र में बडी मात्रा में टंगस्टन प्राप्त होने का अनुमान है । डेगाना स्थित यह खान सम्पूर्ण देश में एक मात्र टंगस्टन की खान है, जहाँ टंगस्टन उत्पादन हो रहा है । हीरे के पश्चात् टंगस्टन कड़ी से कड़ी वस्तु को काटने वाला दूसरा पदार्थ है ।

उत्पादन क्षेत्र -- अजमेर और नागौर जिलों की सीमा पर स्थित गाँवों सेवरिया पीपलिया बीजाथल आदि में टंगस्टन के प्रचुर भण्डार मिले हैं । पाली के नाना काराबाव में टंगस्टन धातु अयस्क के जमाव मिले हैं, जिनके भण्डारों का आकलन किया जाना है ।

बेरीलियम (Berilium) -- बेरीलियम पदार्थ बिरल नामक खनिज से प्राप्त होता है । यह षट्कोणीय आकृति में मिलता है और एल्युमिनियम का एक सिलिकेट है यह अनेक रंगों – हरा, पीला, सफेद, हल्का पीला, रंगों में मिलती हैं । भारत में राजस्थान का बेरीलियम उत्पादक राज्यों में प्रमुख स्थान

है । राजस्थान में पाई जाने वाली बेरीलियम धातु श्रेष्ठ किस्म की है । इनमें 11.5 से 14 प्रतिशत तक शुद्धता होती है ।

उत्पादन क्षेत्र -- बेरीलियम की खानों में जयपुर, उदयपुर एवं भीलवाड़ा जिलों के क्षेत्र महत्वपूर्ण है । जयपुर में दो महत्वपूर्ण क्षेत्र गुजरवाड़ा और बान्दरसिन्दरी है जहाँ बिरल पाया जाता है ।

सोना (Gold) -- हाल ही में, अजमेर जिले के सराधना व भिनाय क्षेत्र की जमीन में गहराई तक सोना, ताम्बा, वोलोस्टोनाईट सहित बेशकीमती धातुओं के भण्डार दबे होने की विश्वस्त जानकारी मिली है। (दैनिक नवज्योति 20 मार्च, 2007) ।

6.4.2 अधात्विक खनिज

(अ) उष्मारोधी, उच्चतापसह एवं मृतिका खनिज

एस्बेस्टॉस (Asbestos)

एस्बेस्टास को "जादुई धातु" तथा "चट्टानी रूई" भी कहते हैं । यह प्रमुख रूप से कैल्शियम एवं मैंग्नेशियम से बनी रेशेदार धातु होती है । इसकी ताप सहनशक्ति अधिक होती है । इसलिए इस धातु का व्यापारिक तथा औद्योगिक महत्व है । इस धातु के रेशे की मजबूती, अघुलनशीलता, इकसारता, लचीलापन, खींचने पर न टूटना, तापरोधकता आदि विशेषताएं हैं । इनके अलावा इसमें न्यूनतम चालकता, उच्च विद्युत सहन–शीलता, रासायनिक क्रिया से मुक्ति आदि गुण हैं ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान, देश के कुल एस्बेस्टॉस उत्पादन का 90 प्रतिशत उत्पादन करता है । एस्बेस्टॉस उत्पादन के मुख्य क्षेत्र उदयपुर जिले के खैरवाडा व रिषभदेव में स्थित है । इसके अलावा डूंगरपुर, अजमेर, उदयपुर एवं जोधपुर में भी यह मिलता है ।

फेल्सपार (Felspar)

फेल्सपर एक विस्तृत नाम है जो सामान्यत: अलकली एल्युमिना सिलीकेट खनिजों के वर्ग के लिए प्रयुक्त होता है । व्यापारिक फेल्सपार–पोटाश स्पर और सोडास्पर का मिश्रण है । भारत में राजस्थान फेल्सपार का 61 प्रतिशत उत्पाद करता है । इस खनिज की प्राप्ति अभ्रक खानों से सह उत्पाद के रूप में होती है ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान का 96 प्रतिशत फेल्सपार अजमेर जिले से ही प्राप्त होता है । अजमेर तथा ब्यावर के निकट चक्की के पाटे में इसे पीसा जाता है । पीसा हुआ फेल्सपार सिरेमिक उद्योग की मांग की पूर्ति के लिए भेजा जाता है । जयपुर व पाली जिले में भी इसकी खानें पाई जाती हैं ।

चीनी मृत्तिका (China Clay)

यह सब मिट्टियों में मूल्यवान होती है । यह मृत्तिका प्राय: ग्रेनाइट की फेल्सपार नामक खनिज के क्षय से उत्पन्न होती है । यह साधारण सफेद पीलापन लिए सफेद रंग की होती है । सिरेमिक सिलिकेट उद्योग के लिए चीनी मृत्तिका महत्वपूर्ण है । मृत्तिका का उचित उपयोग करने के लिए इसकी धुलाई अनिवार्य है । इसकी धुलाई का एक कारखाना नीम का थाना में स्थापित किया गया है ।

उत्पादन क्षेत्र -- चीनी मृत्तिका के महत्वपूर्ण क्षेत्र राजस्थान में सवाईमाधोपुर, सीकर व अलवर आदि जिले हैं । उदयपुर के समीप खारा बरिया का गुढ़ा में इसके काफी बड़े भण्डार प्राप्त हुए है ।

(ब) इलेक्टॉनिक एवं आण्विक खनिज

अभ्रक (Mica)

अभ्रक आग्नेय और कायान्तरित चट्टानों में सफेद या काले अभ्रक के छोटे–छोटे टुकड़ों के रूप में पाया जाता है । सफेद अभ्रक को रूबी अभ्रक और हल्का गुलाबीपन लिए अभ्रक को बायोटाईट अभ्रक कहते हैं । राजस्थान के बहु मूल्य खनिजों में अभ्रक का मुख्य स्थान है । राजस्थान देश के कुल उत्पादन का लगभग 25 प्रतिशत खनन कर दूसरे स्थान पर है । राज्य में अभ्रक की लगभग 225 खाने हैं । क्षेत्र की दृष्टि से राजस्थान का देश में प्रथम स्थान है । अभ्रक पोटेशियम और हाईड्रोजन के सिलीकेट से बनता है ।

यूरेनियम (Urenium)

यह अणुशक्ति सम्बन्धी खनिज है । राजस्थान में आण्विक खनिजों की खोज जारी है । अनेक भागों में इनके पाये जाने की सम्भावनाएं हैं ।

उत्पादन क्षेत्र -- इसकी खाने डूंगरपुर, बांसवाड़ा और किशनगढ में हैं ।

(स) बहु मुल्य पत्थर

पन्ना (Emerald)

पन्ना उन विशिष्ट खनिजों में से एक है जिनमें राजस्थान का देश में एकाधिपत्य है । पन्ना एक सुन्दर मखमल के समान हरे रंग का रत्न है जिसें कभी–कभी हरी अग्नि भी कहा जाता है । पन्ना विरल की एक हरी किस्म है और रासायनिक तौर पर यह बैरिलियम और एल्यूमिनियम का एक जटिल यौगिक है । यह प्रकाशमयी होता है तथा अपने कठोर रंग, आपेक्षित घनत्व एवं अपवर्तक विशेषताओं के लिए जाना जाता है ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान में सर्वप्रथम इसका पता 1943 में उदयपुर जिले में कालागुमान क्षेत्र में लगा । इसके अतिरिक्त यह टिक्की व गोगुन्दा क्षेत्र में भी पाया जाता है ।

तामड़ा (Garnet)

राजस्थान का तामड़ा उत्पादन में एकाधिपत्य है । तामड़ा को रक्तमणि भी कहते हैं । अनेक शताब्दियों से टोंक जिले के राजमहल व अजमेर में सरवाड़ से प्राप्त तामड़ा संसार में प्रसिद्ध रहे हैं । यह वास्तव में लोहा व एल्युमिनियम का मिश्रण होता है ।

उत्पादन क्षेत्र -- तामड़ा की खाने अजमेर जिले में सरवाड़ तथा खरखारी, टोंक व भीलवाड़ा जिले के कई क्षेत्रों में है । इसके अतिरिक्त तामडा सीकर जिले में महवा व बागेश्वर में मिलती है । चित्तौड़गढ़ जिले के केसरपुर में हीरे के भण्डारों का पता लगा है । गार्नेट रत्न का उत्पादन देश में केवल राजस्थान में ही किया जाता है ।

(द) रासायनिक खनिज

नमक (Salt)

नमक सोडियम और क्लोरीन गैस का मिश्रण होता है । नमक से सम्बन्धित अन्य वस्तुएं जैसे सोड़ा एवं कॉस्टिक सोड़ा, सल्फर तथा अन्य रासायनिक वस्तुएं अत्यन्त महत्व रखती हैं ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान में नमक बनाने के लिए आदर्श सुविधाएं उपलब्ध है । राज्य में सांभर, पंचभद्रा, डीडवाना आदि खारे पानी की झीलें हैं । यहाँ नमक का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है । डॉ. डनीक्लीफ की गणनानुसार सांभर झील भारत में नमक का सबसे बड़ा स्त्रोत है । सांभर का नमक राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली व मध्यप्रदेश में खपता है ।

बेराइट्ज (Barytes)

रासायनिक संगठन के अनुसार बेराइट्ज बेरियम सल्फेट है और इसे भारी पत्थर भी कहते हैं । बेराइट्ज एक ऐसा खनिज है जो प्राकतिक चट्टानों को फोड़कर स्वत: ही बाहर निकल पड़ता है ।

उत्पादन क्षेत्र -- उत्पादन की दष्टि से राज्य में उदयपुर जिला प्रथम है । जहाँ जगतपुर नामक स्थान पर सबसे बड़े भण्डार है । बेराइट्ज का व्यापरिक उत्पादन उदयपुर, अलवर और भरतपुर जिलों तक सीमित है ।

चूना पत्थर (Lime Stone)

राजस्थान में चूना पत्थर सर्वाधिक महत्व का खनिज है । भवन निर्माण कार्य के लिए इसे अनेक प्रकार से प्रयोग किया जाता है । चूना सीमेन्ट बनाने के लिए एक कच्चा माल है ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान के सभी भागों में चूना पत्थर के भण्डार मिलते हैं । फलौदी लाखेरी, चित्तौड़गढ़ तथा निम्बाहेड़ा क्षेत्र के चूना पत्थर का प्रयोग, सवाईमाधोपुर, लाखेरी एवं चित्तौड़गढ़ के सीमेन्ट कारखानों में किया जाता है ।

फ्लोराइट (Florite)

खान तथा भू–विज्ञान विभाग ने सन् 1956 में डूंगरपुर जिले में मांडव की पाल के निकट इस खनिज को आर्थिक दृष्टि से खोद कर निकालने के लिए उपयुक्त भण्डार की स्थिति पता करने में सफलता प्राप्त की थी । यह औद्योगिक महत्व का खनिज है जिसका उपयोग मुख्यत: लोहा व इस्पात तथा रासायनिक उद्योगों में किया जाता है ।

उत्पादक क्षेत्र -- भारत में कहीं अन्यत्र नहीं मिलने के कारण राजस्थान इसके उत्पादन में एकाधिकार रखता है । माण्डव की पाल खानों से 1956 से फ्लोराइट का खनन हो रहा है और इसकी गिनती एशिया की प्रमुख फ्लोराइट खानों में होती है ।

(य) उर्वरक खनिज (Fertilizer Minerals)

जिप्सम (Gypsum)

इसे सेलखड़ी या हरसौंठ भी कहते हैं । यह एक खनिज पदार्थ की तहदार किस्म है जो अपने रवेदार रूप में सैलेनाईट कहलाती है । भारत में सबसे अधिक जिप्सम राजस्थान में मिलता है । भारत के कुल उत्पादन में राजस्थान का लगभग 90 प्रतिशत हिस्सा है ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान में नागौर, बीकानेर, गंगानगर, चुरू, जैसलमेर, बाड़मेर, पाली, जोधपुर आदि क्षेत्रों की खानों में जिप्सम निकाला जाता है ।

रॉक फॉस्फेट (Rock Phosphate)

रासायनिक खाद के लिए यह खनिज बहुत महत्वपूर्ण है । देश के उत्पादन का लगभग 56 प्रतिशत राजस्थान से प्राप्त होता है । राज्य में इसका उत्पादन निरन्तर बढ रहा है ।

उत्पादन क्षेत्र -- राज्य के उदयपुर जिले में झामर कोटड़ा स्थान पर रॉक फॉस्फेट के विशाल भण्डार हैं । इसके अलावा यह उदयपुर व जैसलमेर जिले के कई क्षेत्रों में पाया जाता है ।

(र) अन्य खनिज

संगमरमर (Marble)

नागौर जिले के मकराना का संगमरमर भारत में सर्वश्रेष्ठ है । अत: मकराना और संगमरमर एक दूसरे के पर्यायवाची हो गये हैं । अलौकिक प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण संगमरमर का प्रयोग प्राचीन

काल से ही विशिष्ट भवनों एवं ऐतिहासिक इमारतों में होता आ रहा है । ताजमहल इसका ज्वलंत उदाहरण है ।

राजस्थान वित्त आयोग एवं रीको ने संगमरमर के आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान में संगमरमर के अतुल भण्डार हैं । संगमरमर का उत्पादन करनें वाले क्षेत्र राज्य के उत्तर–पूर्व में नागौर, सीकर, जयपुर और अलवर जिलों मैं तथा दक्षिण–पश्चिम में उदयपुर, जालौर और सिरोही जिलों में स्थित है । कुछ संगमरमर जैसलमेर नगर के दक्षिणी–पश्चिमी भाग से भी निकाला जाता है ।

घीया भाटा (Soap Stone)

घीया भाटा चिकना, मुलायम सरलता से काटा छांटा जाने वाला पत्थर है । यह सामान्यत: मध्यम से उत्तम दाने वाली नीली–भूरी, भूरी–हरी होती है । स्टेटाइट घीया पत्थर एक अच्छी किस्म है । राज्य में कच्चे माल के रूप में घीया पत्थर उपलब्ध होने के कारण इनसे चलने वाले उद्योगों के लिए काफी सम्भावनाएं विद्यमान है ।

उत्पादन क्षेत्र -- जयपुर के डांगोथा झरना क्षेत्र, भीलवाड़ा में घेवरिया और चांदपुरा क्षेत्र तथा उदयपुर में देवपुरा क्षेत्र उत्पादन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है ।

6.4.3 ईधन खनिज

भूरा कोयला (Lignite)

राज्य कोयले के सुरक्षित भण्डारों की दृष्टि से गरीब है । राजस्थान लिग्नाईट कोयले का उत्पादन करता है । भूरा कोयले का प्रयोग अधिकतम रेल्वे द्वारा किया जाता है भूरा कोयला जलने में बहुत अधिक धुआँ देता है ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान में कोयला बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर व नागौर क्षेत्रों में पाया जाता है । राजस्थान के बीकानेर मण्डल में लिग्नाईट की मुख्य उत्पादन पेटी स्थिति है । इन क्षेत्रों में पलाना एक प्रमुख उत्पादन क्षेत्र है । पलाना की खानों से कोयला लगभग 60 वर्षो से निकाला जा रहा है और यह संसार का सर्वश्रेष्ठ लिग्नाईट है ।

खनिज तेल (Mineral Oil)

खनिज तेल की प्राप्ति केवल अवसादी शैलों में ही सम्भव होती है । बालू और चूने की अवसादी शैलों में तेल उसी तरह विद्यमान रहता है जैसे स्पंज में जल । खनिज तेल हाइड्रोकार्बन यौगिकों का मिश्रण होता है । करोड़ों वर्षो की अवधि में वनस्पति एवं जीवों के बड़ी मात्रा में कीचड़, मिट्टी बालू आदि में दबे रहने पर उन पर गर्मी दबाव, रसायन, जीवाणु और रेड़ियो सक्रियता आदि क्रियाओं के फलस्वरूप खनिज तेल की उत्पत्ति होती है ।

उत्पादन क्षेत्र -- राजस्थान के बीकानेर व जैसलमेर तथा जोधपुर में खनिज तेल मिलने की सम्भावनाएं हैं । बाड़मेर जिले के गुढ़ामालानी में स्वत: प्रवाह वाला खनिज तेल के भण्डार मिले है । शैल इन्टरनेशनल नाम की हॉलैण्ड की कम्पनी ने यह सफलता दर्ज की है । बाड़मेर जिले में खनिज तेल मिलने के बाद उसके दोहन के लिए मास्टर प्लान बनाया गया है । राजस्थान में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों

द्वारा बेस मेटल व हवाई सर्वेक्षण कराया गया है । इस प्रकार के सर्वेक्षण में यह देश का प्रथम राज्य है ।

उपर्युक्त खनिजों के अतिरिक्त राजस्थान में फ्लोराईट, इमारती पत्थर, स्फटिक, वर्मीक्युलाइट, मेलेनाइट आदि अनेक खनिज भी व्यापारिक स्तर पर निकाले जाते हैं ।

राजस्थान में खनिज खानों की संख्या की दृष्टि से वर्ष 2001 में उदयपुर जिले का प्रथम स्थान और झालावाड़ जिले का अंतिम स्थान था ।

बोध प्रश्न

प्रश्न 4 निम्न में से कौनसा धात्विक खनिज है ?

(अ) लोहा (ब) संगमरमर

(स) चूना (द) बेरिलियम

प्रश्न 5 राजस्थान का खेतड़ी--सिंघाना क्षेत्र किस खनिज के लिए प्रसिद्ध है ?

प्रश्न 6 राजस्थान में संगमरमर के उत्पादन का प्रमुख स्थान कौनसा है ?

प्रश्न 7 रक्तमणि किसे कहते है ?

प्रश्न 8 चीनी मृत्तिका की धुलाई का कारखना कहाँ स्थापित किया गया हैं?

प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में देखें ।

6.5 सारांश (Summery)

उपरोक्त विवरण से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि राजस्थान में अनेकों प्रकार के खनिज पाएं जाते हैं । मानव सहित सभी जीवधारियों के लिए परम आवश्यक पोषक तत्त्वों के अतिरिक्त ऊर्जा और अन्य आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति पृथ्वी के विशाल खनिज भण्डारों से होती है परन्तु इन भण्डारों की क्षमता सीमित है और जिस गति से मानव अपने सुख साधन बढ़ाने के लिए इन खानों से खनिज पदार्थ निकाल रहा है उससे प्रत्येक दिन खनिज भण्डार घटते जा रहे है और निकट भविष्य में अनेकों खनिज भण्डार बिल्कुल समाप्त हो जायेंगे । इस स्थिति. से उत्पन्न संकट से बचने के लिए हमें खनिज पदार्थो के अन्धाधुन्ध खनन को प्रतिबन्धित करके प्राकृतिक खनिज चक्रीय क्षमताओं के अनुरूप प्रबन्धीकरण करना होगा । यद्यपि भारत सरकार ने खनिज पदार्थो के खनन पर कुछ प्रतिबन्धात्मक उपाय किये हैं, परन्तु ये उपाय पूर्णत: पर्याप्त नहीं है अत: सम्पूर्ण खनिज पदार्थो के भण्डारों और उनके चक्रों की जानकारी के अनुरूप खनन उद्योग को योजनाबद्ध करना अति आवश्यक है । खनिज भण्डारों की विवेकपूर्ण मानव कल्याण के लिए आज की बड़ी आवश्यकता है । अब समय आ गया है कि हम अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए उपर्युक्त तथ्यों पर मनन करें अन्यथा हमारी आने वाली पीढ़ी हमें कभी माफ नहीं करेगी । यदि खनिज सम्पदा के दोहन की यही दर रही और नये स्त्रोतों का पता नहीं लगा पाएं तो हमारी खनन कार्य हो सकता है 2020 तक समाप्त हो जाएं ।

6.6 शब्दावली (Glossary)

1. जनसंख्या वृद्धि (Population Growth) – दो समय बिन्दुओं के बीच उसमें पाये जाने वाले जनसंख्या में परिवर्तन से है ।
2. विकास परियोजनाएं (Development Programms) – मानव के विकास हेतु बनाई गई योजनाएँ ।

3. मृदा अपरदन (Soil Erosion) – मिट्टी के कटाव को मृदा अपरदन या भूक्षरण कहते हैं ।
4. जैव विविधता (Bio Diversity) – एक क्षेत्र विशेष में विविध प्रकार की जातियों (जीव–जन्तुओं) के पाये जाने को ही जैव विविधता कहते हैं ।
5. पर्यावरणीय प्रदुषण (Environmental Pollution) – स्थानीय स्तर पर पर्यावरण की गुणवत्ता में कमी का होना ही पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है ।
6. भूस्खलन (Land Sliding) – यह एक प्राकृतिक विपदा है । भारी वर्षा के कारण पहाड़ी पर स्थित दर्रो व छिद्रों से जल बहने की वजह से चट्टानों के बड़े–बड़े टुकड़े टूट कर गिरते हैं जिसे भूस्खलन कहा जाता है ।
7. भूमि अवनयन (Land Degradation) – भूमि का धीरे–धीरे निम्नीकरण होना अर्थात् मिट्टी की उर्वरा शक्ति का नष्ट होना ही भूमि अवनयन कहलाता है ।

6.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. अद्भुत राजस्थान – माया शर्मा, सुनील शर्मा
2. पर्यावरण अध्ययन – रामकुमार गुर्जर, बी.सी. जाट
3. पर्यावरण अध्ययन – अनुजा त्यागी, मुजंला एवं नरेन्द्र जैन
4. सामयिक राजस्थान – एल.आर. भल्ला
5. प्राणी पारिस्थितिकी पर्यावरणीय जैविकी के विभिन्न आयाम एवं प्राणी वितरण – भाटिया, कोहली व स्वरूप
6. दैनिक नवज्योति 12 व 18 मार्च, 2007
7. Environment Science - S.C.Santra
8. राजस्थान 2003, बढ़ाना व मेहरा
9. पर्यावरण अध्ययन – मनोज कुमार यादव

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 माईकेनाइट, प्र. 2 चूना, प्र. 3. दूसरा, प्र. 4 लोहा, प्र. 5 ताम्बा प्र. 6 मकराना (नागौर), प्र. 7 तामड़ा (Garnet) प्र. 8 नीमकाथाना

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 राजस्थान की खनिज सम्पदा के उपयोग पर एक लेख लिखिए ?

प्रश्न 2 खनिज संसाधनों के दोहन से उत्पन्न समस्याएं कौन–कौनसी हो सकती है, विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 3 अतिदोहन के क्या–क्या कारण हो सकते हैं, समझाईये ?

प्रश्न 4 राजस्थान को खनिजों का अजायबघर कहा जाता है, इस कथन को स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 5 खनिज कितने प्रकार के होते हैं? इनके क्या–क्या उपयोग हैं ?

इकाई – 7

खाद्य

Food

इकाई संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 खाद्य संसाधन

7.2.1 विश्व की खाद्य समस्या

7.2.2 आधुनिक कृषि के पर्यावरणीय प्रभाव

7.2.3 उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग

7.3 सारांश

7.4 संदर्भ ग्रंथ

7.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप जान पायेंगे कि –

1. खाद्य संसाधन क्या होते हैं?
2. विश्व के विभिन्न भागों में खाद्यान समस्या क्या 'है?
3. उर्वरक एवं कीटनाशक के प्रयोग से उत्पन्न समस्यायें क्या है?
4. पीड़कनाशी के क्या वैकल्पिक उपाय हैं?

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

समस्त विश्व के जीवों के लिये भोजन एक प्राथमिक आवश्यकता ही नहीं एक प्रधान भौतिक आवश्यकता भी है । आज से पीछे के एक लम्बे अर्से पर गौर करें तो चूंकि जनसंख्या नाम मात्र थी अत: भोजन की समस्या भी नहीं के बराबर थी लेकिन शनैः–शनैः जब विश्व में जनसंख्या ने विकराल रूप लेना शुरू किया तो भोजन की समस्या भी उतनी ही तीव्र गति से गहराई जाने लगी । इस समस्या के निराकरण के लिये कृषि उत्पादन बढ़ाना ही एक मात्र विकल्प था ।

विश्व में जनसंख्या दबाव के कारण भी कृषि उत्पादन बढ़ाने के प्रयास किये गये । कृषि का विकास भी हुआ किन्तु कृषि योग्य भूमि धीरे-धीरे सिमटती गई । इसके उपरान्त भी कृषि वैज्ञानिकों के अथक प्रयासों से सीमित क्षेत्र में भी प्रति हेक्टेयर उत्पादन बढ़ाया गया ।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये अत्याधुनिक तकनीकों का विकास किया गया । लेकिन रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों एवं पीड़कनाशियों के अत्यधिक प्रयोग ने पर्यावरण संतुलन को गड़बड़ा दिया है।

आज कृषि उपज को बढ़ाने के लिये तथा बढ़ती जनसंख्या के लिये समुचित मात्रा में खाद्यान उपलब्ध करने की चेष्टा में मानव रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करके मृदा के भौतिक रासायनिक एवं जैविक घटकों का संतुलन बिगाड़ कर मृदा को प्रदूषित कर रहा है ।

एक ताजा सर्वेक्षण के अनुसार कुछ क्षेत्रों की मृदा में प्रति हेक्टेयर कीटनाशक(Insecticide) दवाओं का लगभग 300 आविष (toxin) इकट्ठा हो चुका है । ऐसे उर्वरक जिनमें फॉस्फोरस, अमोनियम सल्फेट, सोडियम तथा पोटेशियम नाइट्रेट अधिक होते हैं । सल्फेट सोडियम तथा पोटेशियम मिट्टी में पड़े रहकर मिट्टी की संरचना को विपरीत रूप से प्रभावित करते हैं । जबकि अमोनियम तथा नाइट्रेट आदि फसल द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं । वैज्ञानिकों द्वारा बताया गया है कि फास्फोरस की एक ग्राम मात्रा भी अतिसार तथा लकवे के कारण बन सकते हैं । कुछ नाइट्रेट जो फसल द्वारा इस्तेमाल नहीं होता है मृदा में एकत्रित हो जाता है तथा वर्षा ऋतु में बरसात के पानी के साथ बहकर धरती के अंदर भूमिगत जल में नाइट्रोजन आयनों की सान्द्रता में बढोतरी करता है । इस विषाक्त जल के सेवन से नवजात बच्चों में 'हीमोग्लोबीनीमिया' अथवा 'ब्लू बेबी' रोग हो जाते हैं व इसमें आक्सीजन की कमी से शिशुओं की मौत हो सकती है ।

पादपों तथा मनुष्य को परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से हानि पंहुचाने वाले कीट, कवक आदि जीवों को समाप्त करने के लिए रसायनशास्त्रियों ने ऐसे रसायन विकसित किये जो कीटों, कवकों, खरपतवारों, सूक्ष्मजीवों आदि को नष्ट कर सकते हैं । ये रसायन पीड़कनाशी (Pesticides) कहलाते हैं । आज कई हजारों प्रकार के पीड़कनाशी उपलब्ध हैं जिनके उपयोग से कृषि क्षेत्र के उत्पादन में काफी बढ़ोतरी हुई तथा 'हरित क्रांति' का भी उदय हुआ है । कुछ समय पश्चात् उनकी अत्यधिक मात्रा इस्तेमाल की जाने लगी तथा इनके इस्तेमाल से एक दूसरा पहलू सामने आया । कुछ ही वर्षों में यह पीड़कनाशी जैव एवं अजैव पदार्थों में घुल मिल कर सर्वव्यापी बन गये व भूमि में मिल गए, नदी, नालों में पहुंच गए तथा भूमिगत जल में भी पहुंचे । वर्तमान में पीड़कनाशियों के अवशेष संसार के हर समुद्र व लगभग हर प्रजाति के समुद्री जीवों में मौजूद है व फाइटोप्लेक्टोन कीट, मछलियों आदि सभी पादपों व जन्तुओं के शरीर में पाए गये हैं । इस तरह धीरे–धीरे पूरी खाद्य श्रृंखला तथा खाद्य चक्र को इन्होंने प्रदूषित कर दिया है ।

अत: कृषि विज्ञान अनुसंधान में जैव प्रौद्योगिकी (बायोटेक्नोलोजी) का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है । फसलों के सुधार एवं गुण स्थिरता को कायम रखने के लिए कोशिश हर स्तर पर संस्करण के महत्व पर जोर दिया जाना चाहिए । मनुष्य की बढती जनसंख्या की वजह से अन्य जीवों की संख्या घट रही है । इसकी रफ्तार इतनी तेज़ है कि जीवजगत की करीब सौ प्रजातियाँ प्रतिदिन नष्ट हो रही हैं । इसलिए मनुष्य प्राणी एवं पादप जगत को जीवित रखने तथा प्राकृतिक खाद्य श्रृंखला को बचाने के लिए जैविक विविधता का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है ।

7.2 खाद्य संसाधन (Food Resources)

खाद्य पदार्थो से तात्पर्य मानव को जीने के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करने वाले पदार्थों से है । खाद्य संसाधन प्राप्ति का प्रमुख स्त्रोत कृषि है । आज पूरे विश्व में बढ़ती जनसंख्या एवं घटते खेत–खलिहानों के कारण कृषि द्वारा खाद्य पदार्थों की पूर्ति नहीं हो पा रही है । कुछ देशों को छोड़कर विश्व के अधिकांश देशों में खाद्य संसाधनों की सदैव कमी रहती है । खाद्य पदार्थों की इस कमी के

कारण ही अधिकांश देशों में कुपोषण की समस्या पाई जाती है । भारत में भी खाद्य पदार्थों की कमी के कारण अनेक प्रदेशों के आदिवासियों को कुपोषण का शिकार होना पड़ता है । हरित क्रांति जैसे कार्यक्रम खाद्य संसाधनों के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण प्रयास है ।

वर्तमान में खाद्य पदार्थों को निम्नलिखित तीन प्रकार के संसाधनों से प्राप्त किया जाता है:

1. **वनस्पति :** खाद्य पदार्थों का बड़ा भाग वनस्पति उत्पादों से प्राप्त होता है । इसमें विभिन्न कृषि फसलों के अतिरिक्त फल, कन्दमूल, पत्तियाँ एवं खुम्बी आदि को सम्मिलित किया जाता है ।
2. **जीव-जन्तु :** जीव–जन्तुओं से हम विभिन्न खाद्य पदार्थ के प्रमुख तथा गौण रूप में मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, मत्स्यपालन आदि से प्राप्त करते हैं ।
3. **खनिज :** खाद्य पदार्थों के रूप में जल एवं चट्टानों से मिलने वाला नमक प्रमुख है ।

इन सभी खाद्य पदार्थों में बड़ा भाग पृथ्वी पर की जा रही विभिन्न प्रकार की कृषि से प्राप्त किया जाता है । विगत शताब्दी में तीव्रता से बढ़ी जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति के लिए निरन्तर कृषि क्षेत्र में भी वृद्धि की गई जिसके फलस्वरूप विभिन्न पर्यावरणीय समस्याएँ उद्भूत हुईहै ।

7.2.1 विश्व की खाद्य समस्यायें (World Food Problems)

पूरे विश्व में दक्षिण एवं दक्षिण पूर्वी एशिया एवं लेटिन अमेरिका के कुछ भागों में खाद्यान्नों की निरंतर कमी बनी रहती है । खाद्य सामग्री से सम्बन्धित सबसे भीषण अकाल सन् 2002 में दक्षिण अफ्रीका में देखने को मिला जब लगभग व 14.4 मिलियन लोग इससे बुरी तरह प्रभावित हुए । दो दशकों से युद्ध से त्रस्त अफगानिस्तान में खाद्य सामग्री की कमी से 5 मिलियन लोग प्रभावित हुये । हाल ही राजनैतिक अस्थिरता के चलते एवं खराब मौसम के कारण पूर्व के सोवियत यूनियन एवं उत्तरी कोरिया में लाखों लोग खाद्य सामग्री की कमी के कारण या तो कुपोषण का शिकार बने हुए हैं अथवा अनेकों रोगों से ग्रसित होने के पश्चात् मृत्यु के कगार पर पहुँच चुके हैं ।

विगत बीस वर्षों में विकासशील राष्ट्रों में भुखमरी से सम्बन्धित आकड़े निम्न ग्राफ में प्रदर्शित किए गए हैं ।

एशिया महाद्वीप में विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या (लगभग 61%) वास करती है । यहीं पर कुपोषण के शिकार सर्वाधिक व्यक्ति उपस्थित है । सन् 1980 में जहाँ एशिया में 30% लोग कुपोषण के शिकार थे वहीं सन् 2000 में यह आकड़ा 10% रह गया है । अफ्रीकी भाग में कुपोषण की स्थिति सबसे भयावह है जहाँ भूखेपन के आकड़ों में वृद्धि हुयी है । यही की लगभ 1/3 जनसंख्या कुपोषण का शिकार बनी हुयी है । अकाल की स्थिति बनने पर बड़ी मात्रा में खाद्य पदार्थों की उपलब्धता में कमी हो जाती है, भूखमरी फैलती है तथा देशों की आर्थिक दशा डगमगा जाती है । इससे प्रभावित लोग बड़ी संख्या में प्रवास करने लगते हैं । सरकारी प्रयासों के अंतर्गत इनके लिए विकसित शरणगाहों में ये आसरा प्राप्त करते हैं । संक्रामक बीमारियों एवं भूख के कारण लाखों लोगों की मृत्यु भी हो जाती है ।

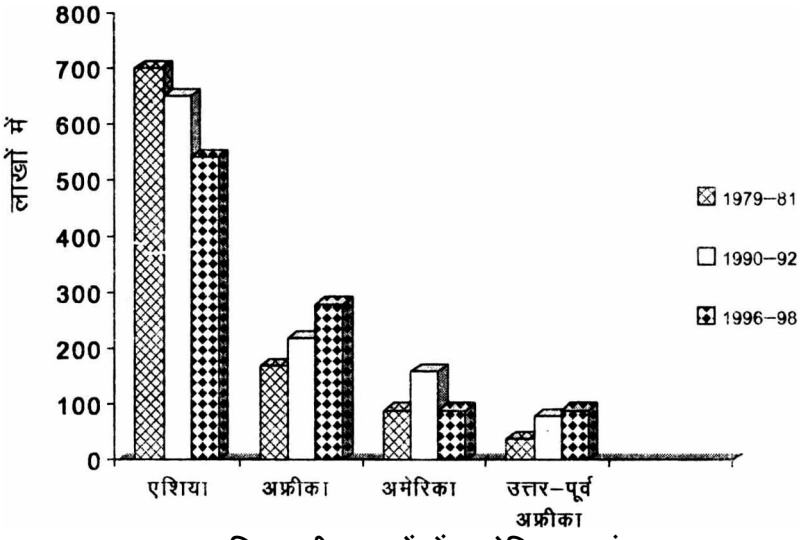

विकासशील राष्ट्रों में कुपोषित जनसंख्या

स्त्रोत - FAO-2002

विश्व में खाद्य समस्या की प्रकृति (Nature of the Food Problem in World)

विश्व में खाद्य समस्या के चार पहलू माने जाते हैं – मात्रात्मक (Quantitative), गुणात्मक (Qualitative), प्रशासनिक (Administrative) और आर्थिक (Economic) । इनमें से प्रत्येक पर नीचे प्रकाश डाला गया है –

1. **मात्रात्मक पहलू --** इनका सम्बन्ध खाद्यान्नों की कुल मांग और कुल आपूर्ति से होता है । निरन्तर खाद्यान्नों के अभाव के कारण आपूर्ति के लिए विदेशों से इनका आयात करना पड़ता है । खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाकर ही माँग और आपूर्ति में आवश्यक संतुलन स्थापित किया जा सकता है । यदि किसी वर्ष प्राकृतिक दशा व मौसम की प्रतिकूलता के कारण उत्पादन कम हो जाता है तो खाद्यान्नों का अभाव बढ़ जाता है और आयात किए बिना काम नहीं चल सकता ।
2. **गुणात्मक पहलू :** आज विश्व में अधिकांश नागरिकों को असन्तुलित भोजन मिलता है । भोजन में दूध, फल, माँस आदि रक्षात्मक पदार्थो का अभाव पाया जाता है । अत: लोगों को पर्याप्त मात्रा में पोषक–तत्व नहीं मिल पाते हैं । यही कारण है कि साधारण व्यक्ति की कार्यक्षमता कम होती है और उसका स्वास्थ्य कमजोर रहता है । अत: खाद्य समस्या का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि सर्वसाधारण को सन्तुलित और पौष्टिक आहार मिलना चाहिए । अर्थशास्त्र में नोबल पुरस्कार विजेता तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भारतीय अर्थशास्त्री डॉ. अमरत्य सेन का कहना है कि विश्व में ग्रामीण जनता का लगभग एक तिहाई भाग सदैव भूख व कुपोषण का शिकार रहता है । लोग भूख से मरते तो नहीं (क्योंकि सरकार अकाल से उनकी रक्षा करती है) लेकिन वे भूखों अवश्य मरते हैं ।
3. **आर्थिक पहलू --** आमतौर पर महँगे अनाज को खरीदने के लिए लोगों के पास आवश्यक क्रय शक्ति का अभाव रहता है । अत: खाद्यानों के अकाल के स्थान पर 'मुद्रा या क्रय शक्ति का अकाल' भी पाया जा सकता है । इस पहलू का सम्बन्ध आम जनता की गरीबी तथा खाद्यानों के ऊँचे

भावों से होता है । अत: सर्वसाधारण की आय में वृद्धि करके एवं खाद्यान्नों के भावों में समुचित कमी लाकर ही खाद्य समस्या के इस रूप का उचित समाधान किया जा सकता है ।

4. **प्रशासनिक पहलू --** इसका सम्बन्ध खाद्यान्नों के वितरण पक्ष से होता है न कि उत्पादन पक्ष से । प्राय: ऐसा भी हो सकता है कि खाद्यान्नों का उत्पादन तो बढ़ जाए लेकिन वितरण की व्यवस्था के दोषपूर्ण होने से खाद्य समस्या निरन्तर बनी रहे । ऐसी स्थिति में खाद्य समस्या प्रशासनिक रूप धारण कर लेती है । सार्वजनिक वितरण की उचित व प्रभावपूर्ण व्यवस्था ही खाद्य समस्या का निराकरण कर सकती है ।

बोध प्रश्न 1. खाद्य संसाधन क्या है?

बोध प्रश्न 2. खाद्य संसाधन का प्रमुख स्त्रोत क्या है?

7.2.2 आधुनिक कृषि के पर्यावणीय प्रभाव (Environmental Effect of Modern Agriculturel)

विश्व की बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति के लिए निरन्तर कृषि विकास जारी रहा है । यह कृषि विकास दो रूपों में हुआ । प्रथम – कृषि क्षेत्र में वृद्धि द्वारा तथा द्वितीय – कृषि क्षेत्र में वृद्धि के साथ–साथ कृषि की गहनता में वृद्धि, जिसके अन्तर्गत प्रति हेक्टेयर उत्पादन बढ़ाया गया । लेकिन इसका परिणाम रहा कृषि क्षेत्र बढ़ने के साथ–साथ वन क्षेत्र में कमी तथा कृषि गहनता में वृद्धि के साथ जल की कमी के साथ ही साथ मृदा उर्वरक में ह्रास । फलस्वरूप एक सीमा के बाद खाद्यान्नों के उत्पादन बढ़ने की अन्तिम वहन क्षमता (Carrying Capacity) आ गई । इस प्रकार मानव ने तीव्रता से कृषि क्रियाओं का विस्तार करके सर्वत्र पर्यावरण को हानि पहुँचाई है । कृषि गहनता को बढ़ाने के लिए उन्नत किस्मों के बीजों एवं उन्नत कृषि प्राविधिकी का उपयोग अपरिहार्य है । साथ ही रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का उपयोग किये बिना कृषि गहनता असम्भव है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण पर दुष्प्रभाव दृष्टिगत होते हैं ।

तालिका 7.1 विश्व की जनसंख्या में वृद्धि दर्शाते हुए

वर्ष	जनसंख्या
1650	54 करोड़
1850	100 करोड़
1930	200 करोड़
1960	290 करोड़
1981	450 करोड़
2001	613.7 करोड़
2015	720.7 करोड़
2050	900 करोड़

विश्व में बढ़ती जनसंख्या ने अनेक समस्याओं को भी जन्म दिया है । (तालिका 7.1) वनों का विनाश करके कृषि योग्य भूमि प्राप्त की जाती है जहाँ की पैदावर हमारे पोषण हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है परन्तु इसके साथ ही पेड़ों की कटाई से अनेक पर्यावरणीय समस्याएं भी सामने आयी है

। इनमें से प्रमुख है वर्षा का अनियमित क्रम, रेगिस्तानों का विस्तार, प्राणी विविधता का ह्रास इत्यादि । ऐसी ही अन्य मानव गतिविधि, कम क्षेत्रफल में अधिकाधिक कृषि उपज प्राप्त करने से फसल तो भरपूर प्राप्त होती है, परन्तु भूमि की उर्वरकता में तीव्रता से ह्रास होता है ।

एक अन्य समस्या और भी गम्भीर है । घासीय मैदान पूरे विश्व में फैले हैं । जहाँ पर वृक्षों अथवा वनस्पति की अपेक्षा घासीय परिस्थितियाँ व्याप्त रहती है । गाय, भैस, मवेशियों, घोडों इत्यादि के चरने हेतु ये विस्तृत स्थान उपलब्ध करवाते हैं । हमारी परिस्थितिकी के ये महत्वपूर्ण घटक हैं । परन्तु अत्यधिक चराई के फलस्वरूप इन घासीय मैदानों में वर्षा का जल ठहर नहीं पाता और त्वरित गति से बह कर निकल जाता है । इससे भूमिगत जल के स्तर का पुनर्भरण नहीं हो पाता । कुएं एवं सरोवर सूख जाते हैं । सूखे के कारण बीज अंकुरित नहीं हो पाते तथा भूमि बंजर हो जाती है जिससे वायु तक की दिशाओं में परिवर्तन हो जाता है । ये नमीयुक्त बादलों को अन्यत्र ले जाती हैं जिससे सूखे की स्थिति और गंभीर हो जाती है । इस प्रकार किसी समय की उपजाऊ भूमि अनुपजाऊ रेगिस्तानी भूमि में परिवर्तित हो जाती है । इसी को मरूस्थलीकरण (desertfication) कहते हैं ।

पारम्परिक फसलों के अतिरिक्त अब ऐसे पादपों का विकास किया गया है जो गर्म हवा में आसानी से वृद्धि कर सकते हैं । सामान्यत: फलीदार पौधे अधिक तापक्रम पर वृद्धि नहीं दर्शाते । इस संदर्भ में सभी प्रकार की फलियाँ, पत्ते वाली सब्जियाँ आदि खाए जाने योग्य है । ये रोगों के प्रतिरोधक हैं एवं मृदा की उर्वरकता में भी वृद्धि लाते हैं । इसी प्रकार अन्य फसल में ट्रिटिकेल भी लाभदायक है । यह राई एवं गेहूँ के मध्य की संकर प्रजाति है । यह कम उपजाऊ भूमि में भी आसानी से वृद्धि कर लेती है । ये सूखे के प्रतिरोधक है । बीजों की पौष्टिकता उच्च प्रकार की होती है तथा लवणीय जल में विकसित की जा सकती है । यह सब आनुवंशिक तकनीकी एवं आनानुवंशिक अभियाँत्रिकी के फलस्वरूप संभव हो सका है ।

अधिक उपज की प्राप्ति हेतु कृत्रिम या संश्लेषित उर्वरकों का प्रयोग अधिक कारगर सिद्ध हुआ है । इसके प्रयोग से उच्च गुणवत्ता वाली फसलों की अधिकाधिक मात्रा में प्राप्ति तो की जा सकी है, परन्तु लम्बी अवधि में इसके प्रयोग से मृदा की उर्वरकता का ह्रास रोक पाना संभव नहीं है । समस्त संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैण्ड व ब्राजील में कृषि पूरी तरह से याँत्रिक साधनों पर निर्भर है । वैज्ञानिक तरीकों से संचालित विधियों के फलस्वरूप बड़े–बड़े खेतों से उत्तम किस्म की फसलों की प्राप्ति हो जाती है । उदाहरण के लिए गायों से दूध प्राप्त करनें के लिए कम्प्यूटरीकृत प्रोग्रामों के द्वारा इनकी देखे–रेख की जाती है । इसकी नस्ल, आनुवांशिक सुधार व वृद्धि के अनुरूप स्वचालित प्रकार से इन्हें भोजन, एन्टीबायोटिक औषधियाँ व हार्मोन्स के इन्जेक्शन दिये जाते हैं । कृषि क्षेत्र जो कि विस्तृत इलाकों में फैले होते हैं, का भ्रमण हेलीकॉप्टर के द्वारा कृषि मैनेजर द्वारा किया जाता हैं । इनकी कृषि की सालाना आय लगभग 50 मिलियन डॉलर तक होती है । उपरोक्त याँत्रिक गतिविधियाँ बहुत अधिक खर्चीली हैं, इसलिए एक बार पुन: लोग पांरपरिक खेती की ओर उन्मुख होने लगे हैं ।

आज सम्पूर्ण यूरोप में कार्बनिक कृषि (organic farming) की विधियों से फसल उगायी जा रही है । स्विटजरलैण्ड व ऑस्ट्रिया में क्रमश: 10 व 8% खाद्यान्नों की प्राप्ति उपरोक्त विधि से ही की जाती है । ऐसी फसलें, गुणवत्ता के आधार पर रासायनिक विधियों से प्राप्त फसलों की अपेक्षा

बेहतर होती है । फसल प्राप्ति के ऐसे स्त्रोत पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं पहुँचाते, रासायनों के कम उपयोग से मृदा भी प्रदूषण से बची रहती है तथा लम्बे समय तक उपजाऊ बनी रहती है ।

उर्वरकों एवं पीड़कनाशकों का प्रयोग (Use of Fertilizer & Pesticides)

उर्वरकों की समस्या (Problems of Fertilizers)

मृदा में यदि संतुलित मात्रा में उर्वरकों का उपयोग किया जाये तो वह हानिकारक नहीं होता है । मृदा परीक्षण के बगैर ही जब इनका अधिक मात्रा में उपयोग किया जाता है तो ये हानिकारक होते हैं । इनके प्रयोग के समय यदि जल या नमी की समुचित मात्रा न हो तो पौधे जलकर नष्ट हो जाते हैं । लगातार उर्वरकों का प्रयोग किये जाने से मृदा में इनका संचय होता रहता है । जिससे मृदा के भौमिक एवं रासायनिक गुणों में निम्नीकरण हो जाता है तथा भूमि कठोर हो जाती है । इनके अत्यधिक प्रयोग से मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणु नष्ट हो जाते हैं । जिससे नाइट्रोजन स्थिरिकरण (Nitrogen Fixation) की प्रक्रिया बाधित होती है । नाइट्रोजन युक्त उर्वरक, नदी, नालों आदि से बहकर जल स्त्रोतों में इकट्ठे हो जाते हैं । जल में नाइट्रोजन की अधिकता के होने के कारण इनके अत्यधिक प्रयोग से मृदा में अम्लीयता या क्षारीयता विकसित हो जाती है । जलीय पादपों एवं जन्तुओं द्वारा ये नाइट्रेट मानव की खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर जाते हैं जिससे हिमोग्लोबीन मैट–हिमोग्लोबिन में परिवर्तित हो जाता है तथा उसकी ऑक्सीजन धारण क्षमता कम हो जाती है । इसी कारण मनुष्य में 'ब्लू बेबी' रोग उत्पन्न हो जाता है ।

पीड़कनाशी का प्रभाव (Effect of Pesticides)

वर्तमान में कृषि एक आवश्यक तथा लाभप्रद व्यापार हो गया है । आज के कृषक का मुख्य उद्देश्य है कि कृषि के उत्पादन को बढ़ाने के साथ–साथ फसल की कीटों, रोगों, चूहों व खरपतवार इत्यादि से रक्षा की जाये । अत: कृषक विभिन्न प्रकार के संश्रलेषित उर्वरकों का उपयोग कर उत्पादन बढ़ाता है तो विभिन्न रसायनों से पौधों को सुरक्षा प्रदान करता है ।

वे जन्तु तथा पादप जो फसलों एवं अन्य उत्पादों को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाते हैं उन्हें पीड़क या पेस्ट्स (pests) कहते हैं । कवक कीट व बड़े जन्तु (खरगोश, चिडियाँ आदि) पीड़क हो सकते हैं । पीड़क सम्पूर्ण पौधे या उसके अंगों को क्षति पहुँचाकर उत्पादन को कम कर देते हैं । अन्य पीड़क खलियानो या गोदामों में बीजों को खाकर नष्ट कर देते हैं । पौधों के अनेक रोगों के प्रसार भी इन पीड़कों के द्वारा होता है । जैसे पीड़को के द्वारा अनेक विषाणु, कवक व जीवाणुओं के रोगों का प्रसारण होता है ।

1. पीड़कनाशी (pesticides) : वे रसायन जो पीड़को को नष्ट कर देते हैं उन्हें पीड़कनाशी (pesticides) कहते हैं ।
2. कीटनाशक (Insecticides) : जो रसायन विभिन्न कीटों को मारने के लिए प्रयुक्त होते हैं, कीटनाशक (Insecticides) कहलाते हैं ।
3. फन्जीसाइड्स (Fungicides) : जो कवकों को मारने के काम में आते हैं उन्हें फन्जीसाइड्स (Fungicides) कहते है ।
4. जीवाणुनाशक (Bactericides) : जो जीवाणुओं को मारने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं उन्हें जीवाणुनाशक (Bactericides) कहते हैं ।

5. अपहृण नाशक (Weedicides) : जो खरपतवारों को नष्ट करने के लिए उपयोग में लाए जाते है उन्हें अपहृण नाशक (Weedicides) या खरपतवार–नाशक कहते हैं ।
6. रोडेण्टीसाइड्स (Rodenticides) : जो चूहों को मारने के लिए प्रयुक्त होते हैं रोडेण्टीसाइड्स (Rodenticides) कहलाते हैं ।
7. निमैटीसाइड्स (Nematicides) : जिनका प्रयोग निमैटोड्स को मारने में होता है उन्हें निमैटीसाइड्स (Nematicides) कहते हैं,
8. माइटीसाइड्स (Miticides) जो दीमकों को मारने के काम आते हैं वे माइटीसाइड्स (Miticides) कहलाते हैं ।

7.2.3 उर्वरकों एवं कीटनाशकों का पर्यावरण पर प्रभाव

पादपों की वृद्धि हेतु जल, प्रकाश व सी.ओ.2 के अतिरिक्त इनमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, कैल्शियम, सल्फर, मैग्नीशियम व पोटेशियम प्रमुख हैं । उर्वरकों में नाइट्रोजन, पोटेशियम, कैल्शियम व फॉस्फोरस के मिलने पर पादपों में वृद्धि की दर तीव्र तो होती ही है, साथ ही साथ उपज में भी भारी वृद्धि होती है । अकार्बनिक उर्वरकों के प्रयोग से ही विश्व में सन् 1950 से फसलों के उत्पादन में दोगुनी वृद्धि हो सकी है । सन् 1950 में जहाँ प्रति हेक्टेयर उर्वरकों का प्रयोग 20 किलो था वहीं सन् 2000 में यह बढ़कर 90 किलो प्रति हेक्टेयर तक पहुँच गया है । सामान्यतया किसानों को अपनी जमीन की पोषकता व फसल की वृद्धि हेतु आवश्यक पोषक पदार्थों की सही जानकारी नहीं होती, इसलिए ये अनावश्यक मात्राओं में उर्वरकों का प्रयोग करने लगते हैं । कृषि क्षेत्र में उपयोग में लायी गयी नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की मात्राएं मृदा के अतिरिक्त जलीय संसाधनों के प्रदूषण का प्रमुख स्त्रोत है ।

सामान्यतया पीड़कनाशियों के उपयोग से निम्न प्रभाव होते हैं–

1. पीड़कनाशी विषैले होते हैं । अत: इनके प्रयोग से लाभप्रद व हानिप्रद दोनों प्रकार के जीव नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार यह पारिस्थितिक तन्त्र के संतुलन को प्रभावित करते हैं ।
2. ये लम्बी अवधि तक स्थायी व अपरिवर्तित रहते हैं क्यों कि अपघटन बड़ी कठिनता से होता है।
3. खाद्य श्रृंखला के उत्तरोत्तर सदस्यों में इसकी सान्द्रता बढ़ती जाती हैं । अनेक खाद्य वस्तुओं जैसे फल, मांस, सब्जियाँ उपभोग की दृष्टि से सुरक्षित नहीं रहती ।
4. ये लाभकारी मृदा जीवों को नष्ट कर देतें है ।

पीड़कनाशी का वर्गीकरण (Classification of Pesticides)

पीड़कनाशी को उनके कुछ मुख्य गुणों व रासायनिक संरचना के आधार पर निम्न रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है –

(1) **ऑरगेनोक्लोरीन (Organonchlorine) –** डी.डी.टी. क्लोरडेन, एल्ड्रिन, एन्ड्रिन, हेप्टाक्लोर आदि । क्लोरीनेटिड हाइड्रोकार्बन होते हैं जो बेहद जहरीले होते हैं तथा आसानी से अपघटित नहीं होते, वसा में घुलनशील व तंत्रिकातंत्र के लिये आविष (Toxin) का कार्य करते हैं । ये आज पूर्णतया प्रतिबंधित है (डी.डी.टी. सिर्फ सरकारी मलेरिया विभाग द्वारा बनाया जा सकता है क्योंकि इसके अवशेष मृदा में 25–50 सालों तक पड़े रहते हैं तथा जैव संचयन के लिये उत्तरदायी होते हैं) ।

(2) **आरगेनोफोस्फेट (Organophosphate) --** मेलाथियॉन, पैराथियॉन डाइमिफॉस्स आदि वर्तमान में इस्तेमाल किये जाने वाले पीड़कनाशी हैं । ये मुख्यत: इसलिये प्रचलित है क्योंकि इनका अपघटन शीघ्र 15दिन के अन्दर हो जाता है । यह पीड़कनाशी पादप के रस में घुल जाता है तथा जब कीट पादप का रस पीता है तो जहरीले पीड़कनाशी के कारण वह मर जाता है । ये काफी ज़हरीले होते हैं तथा कम मात्रा में कीट को मारने के लिये काफी प्रभावी होते हैं ।

(3) **कार्बानमेट (Carbamates) --** एल्डीकार्ब, कार्बोयूरॉन, जेक्ट्रान आदि इनका अविष (toxin) कीट के तंत्रिकातंत्र व पेशियों पर दुष्प्रभाव डालता है जिससे कीट की मृत्यु हो जाती है ।

(4) **पायरीथ्रीनोइड (Pyrethrenoid) --** गुलदाऊदी (क्रिन्सेथीमम) से निष्कासित पीड़कनाशी प्रकृतिक है किन्तु वैज्ञानिकों ने इसी प्रकार के कई कृत्रिम पायरीथ्रीनोइड पीड़कनाशी निर्मित किये हैं जो काफी प्रभावी ढंग से कीटों को मारने में सक्षम हैं उदाहरणार्थ – एलीथ्रिन टेट्रामिथ्रिन रेजमिथ्रिन, साप्रेमिथ्रिन, डोकेमेथ्रिन आदि ।

पीड़कनाशी के दुष्प्रभाव

(1) पीड़कनाशी का अधिक उपयोग मृदा की उर्वरता को नष्ट करता है तथा मृदा प्रदूषण करता है ।

(2) अधिक मात्रा में पीड़कनाशी के उपयोग से जल व वायु का प्रदूषण होता है ।

(3) पीड़कनाशी तंत्रिकातंत्र पर दुष्प्रभाव डालते हैं, प्रतिरोध क्षमता को नष्ट करते हैं तथा कैंसर उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं ।

(4) काफी वर्षों तक एक ही पीड़कनाशी डालने से कीट उससे प्रतिरोधक क्षमता दर्शाते हैं ।

(5) प्राकृतिक रूप से कीटों को नष्ट करने वाले पक्षी व कीट यदि पीड़कनाशी छिडका हुआ अनाज खाते हैं तो पारिस्थितिक तंत्र असंतुलित हो जाता है ।

(6) पीड़कनाशी के हानिकारक रसायन खाद्य श्रृंखला के जैव संचयन व जैव आवर्धन करके इस श्रृंखला के सभी जीवों, यहाँ तक मानव को भी अनेक प्रकार की असाध्य बीमारियों से ग्रसित कर सकते हैं ।

(7) एट्रेजीन व्यापक रूप से प्रयोग में लाया जाने वाला (Herbicide) है । कृषकों में यह कैंसर जैसे घातक रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखता है ।

(8) पीड़कनाशी लम्बी अवधि तक स्थायी व अपरिवर्तित रहते हैं क्यों कि अपघटन बड़ी कठिनता से होता है ।

(9) खाद्य श्रृंखला के उत्तरोत्तर सदस्यों में इनकी सान्द्रेता भी बढ़ती जाती हैं । अनेक खाद्य वस्तुओं जैसे फल, मांस, बब्जियाँ उपभोग की दृष्टि से सुरक्षित नहीं रहती है ।

(10) ये लाभकारी मृदा जीवों को नष्ट कर देते हैं ।

पीड़कनाशीको से बचाव के उपाय

हमारे भोजन में पीड़कनाशी के प्रभाव को कम करने के लिए हमें निम्नलिखित सावधानियों पर ध्यान देना होगा–

(1) रोज़ाना के भोजन से पीड़कनाशी से उत्पन्न होने वाली हानियों को कम करने हेतु फलों व वनस्पतियों को स्वच्छ जल से धोना ।

(2) जहाँ तक संभव हो सब्जियों को छील कर ही प्रयोग में लाना ।

(3) ताज़े फलों का प्रयोग करना ।

(4) कीटनाशकों व रसायनों से उपचारित सब्जियों को उबाल कर बनाना ।

(5) माँसाहारी लोगों के लिये मछली व मुर्गो के माँस से वसीय भाग हटा लेना ।

(6) जहाँ तक संभव हो स्वयं के बगीचों में उगाए गए फलो व सब्जियों का ही प्रयोग करना ।

पीड़कनाशी के वैकल्पिक उपाय

इन्टीग्रेटिक पेस्ट मेनेजमेन्ट (I. P. M.) एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ रासायनिक पीड़कनाशी के इस्तेमाल के अलावा बहुत संभावनायें हैं । यह समग्र नाशी कीट प्रबन्धन विज्ञान की वह नवीन शाखा है जो कई विधियों के सम्मिलित एवं तर्कसंगक प्रयोग को प्रस्तावित करती है –

1. नीम, करण्ज आदि की खली इस्तेमाल करके कीटों को नष्ट किया जा सकता है ।
2. सौर ऊर्जा द्वारा मिट्टी को गर्म करने पर उसके कीट नष्ट हो जाते हैं ।
3. जीवाणु, कवक, विषाणु नीमेटोड आदि का इरतेमाल करके विशिष्ट प्रकार के कीटों को नष्ट किया जाता है । फीरोमोन का इस्तेमाल भी कीटों को नष्ट करने के लिये किया जाता है ।
4. कीट प्रतिरोधी फसल विकसित करके एवं बायोटेक्नोलोजी के ज्ञान का उपयोग करके कीटों को नष्ट किया जा सकता है ।
5. जैव उर्वरकों का जैसे राइजोबियम, नाइट्रोबैक्टर, नील हरित शैवाल, अजौला का इस्तेमाल तथा हरित खाद का उपयोग करने पर मृदा की उर्वरता बनाई रखी जा सकती है ।

बोध प्रश्न 5. पीड़कनाशको के क्या दुष्प्रभाव होते हैं ।

बोध प्रश्न 6. पीड़कनाशक के वैकल्पिक उपाय बताइये?

7.3 सारांश (Summary)

समस्त जीवों के लिए भोजन उनकी प्राथमिक आवश्यकता है । इसे प्रधान भौतिक आवश्यकता भी कहा जाता है । यह भोजन हम वनस्पति, जीव जन्तु एवम् खनिज जैसे संसाधनों से प्राप्त करते हैं । विगत में जब जनसंख्या का दबाव नहीं था तो खाद्य समस्या का आभास नहीं होता था, किन्तु तीव्रता से बढ़ती आबादी के साथ–साथ खाद्य उत्पादन में अपेक्षाकृत उतनी बढ़ोतरी नहीं होने से विश्व के सम्मुख खाद्य समस्या विकराल स्वरूप में सामने आई । अन्न उत्पादन बढ़ाने के लिये जंगल काट कर भूमि को. कृषि योग्य बनाया जा रहा है तथा कृषि उपज को बढाने के लिए बढती जनसंख्या के समुचित मात्रा में खाद्यान उत्पन्न करने की चेष्टा में मानव ने रसायनिक उर्वकों एवम् कीटनाशकों का साथ लिया ।

रसायनिक उर्वकों के लगातार प्रयोग से मृदा में इनका संचय होता रहता है । जिससे मृदा के भौतिक एवं रसायनिक गुणों में निम्नीकरण हो जाता है, भूमि कठोर हो जाती है तथा मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणु नष्ट हो जाते हैं जिससे नाईट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया बाधित होती है तथा नाइट्रोजन युक्त उर्वरक नदी नालों में बह कर जल को प्रदूषित करते हैं ।

इसी प्रकार पीड़कनाशी की अधिक मात्रा मृदा की उर्वरता को नष्ट करती है तथा मृदा, जल, वायु प्रदूषण करती है । जिससे पारिस्थितिक तंत्र असंतुलित हो जाता है । अत: रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग कम से कम करना चाहिये तथा इन्टीग्रेटेड पेस्ट मेनेजमैंट एवम् हरबीसाइड्स

का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग होना चाहिए तभी हम आधुनिक कृषि विकास के कारण हुये पर्यावरणीय परिवर्तन पर काबू रख पायेंगे ।

7.4 संदर्भ–ग्रन्थ

1. गुप्ता एच.सी.एल. – इनसेक्टिसाइडस् टोक्सिकोलोजी एण्ड यूज़ेज
2. श्रीवास्तव आर पी – प्रोबलम ऑफ इनसेक्टिसाइडल पॉल्यूशन ऑफ एनवायरमेन्ट
3. परमार बी.एस., दूरेजा पी – मीनीमाइज़िग एनवायरमेन्टल हज़ार्ड ऑफ एग्रो केमीकल
4. अनुजा त्यागी, मंजुला सक्सेना – पर्यावरण अध्ययन और नरेन्द्र जैन
5. पी.डी शर्मा – ईकोलोजी एण्ड एनवायरमेन्ट
6. रामकुमार गुर्जर, – पर्यावरण अध्ययन सी.बी. जाट

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विश्व खाद्य समस्याओं की व्याख्या कीजिए ?
2. आधुनिक कृषि के पर्यावरण के प्रभावों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ?
3. उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग कहां तक सार्थक है । स्पष्ट कीजिए ?

7.6 बोध प्रश्नों का उत्तर

उ 1. वह संसाधन जिनसे हम खाद्य पदार्थ प्राप्त करते है उन्हें खाद्य संसाधन कहा जाता है ।

उ 2. वर्तमान में खाद्य पदार्थ तीन प्रकार के संसाधनों से प्राप्त होते हैं वे हैं वनस्पति, जीवजन्तु एवम् खनिज ।

उ 3. वे रसायन जो पीड़को को नष्ट कर देते हैं उन्हें पीड़कनाशी (Pesticides) कहते हैं । वे रसायन जो विभिन्न कीटों को मारने के लिए प्रयुक्त होते हैं वे कीटनाशक (Insecticides) कहलाते हैं।

उ 4. पीड़कनाशी चार प्रकार के होते हैं:

1. ऑरगेनोक्लोरीन
2. आरगेनोफोस्फेट
3. कार्बोमेट
4. पायरीथ्रीनॉइड

उ 5. पीड़कनाशी जल, वायु तथा मृदा का प्रदूषण करते हैं तथा पीडकनाशी छिड़का हुआ फल, सब्जी या अनाज खाने से तंत्रिका तंत्र, प्रतिरोधक क्षमता पर असर होता है साथ ही पारिस्थितिक तंत्र भी असंतुलित हो जाता है ।

उ 6. नीम की खली का इस्तेमाल करके, फीरोमोन का इस्तेमाल करके, सौर ऊर्जा द्वारा मिट्टी को गर्म करके तथा इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेज्मेंट (I. P. M.) की सहायता लेना ही पीड़कनाशी के वैकल्पिक उपाय हैं ।

इकाई – 8

ऊर्जा

Energy

इकाई संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 ऊर्जा की बढ़ती आवश्यकता

8.3 नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन

8.4 अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधन

8.5 ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत एवं उपयोग

8.6 सौर–ऊर्जा

8.6.1 प्रकाश वोल्टीय सूर्य सेल

8.6.2 सौर–ताल

8.6.3 सौर कुकर

8.6.4 सौर–ऊर्जा द्वारा विद्युत उत्पादन

8.7 पवन ऊर्जा

8.8 बायो गैस

8.9 सारांश

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

8. उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे कि –

1. ऊर्जा के संसाधनों का प्रतिपादन
2. ऊर्जा की मांग में वृद्धि एवं स्पष्टीकरण, तथा
3. पर्यायी ऊर्जा स्त्रोत एंव उपयोग की व्याख्या करना है ।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

अनादि काल से मानव, ऊर्जा का उपयोग विभिन्न कार्यो जैसे–भोजन बनाने, भवन निर्माण, कृषि, उद्योग आदि में करता आया है । आज के युग में जहां औद्योगिक विकास में ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्थान है, वहीं मानव के जीवन को उन्नत बनाने में ऊर्जा महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयुक्त होने लगी है । यही कारण है कि आज किसी देश के विकास को उस देश में प्रतिव्यक्ति द्वारा होने वाली ऊर्जा

की खपत से मापा जाता है । विश्व के विकसित देशों जैसे अमेरिका, जापान और कनाडा में प्रतिव्यक्ति ऊर्जा खपत विकासशील देशों (जैसे भारत, चीन) से 10 से 75 गुणा अधिक है । लगातार बढ़ती जनसंख्या एवं इसके साथ–साथ ऊर्जा के बढते उपभोग ने वैज्ञानिकों एवं योजनाकारों को पारम्परिक ऊर्जा संसाधनो को योजनानुसार उपभोग करने एवं नये–नये ऊर्जा संसाधन विकसित करने के लिये प्रेरित किया है ।

हमारे जीवन के संचारण हेतु ऊर्जा अति आवश्यक है, इसलिए ऊर्जा को जीवन संचार भी कहा जाता है । किसी भी देश के आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण आधार ऊर्जा की उपलब्धता ही होता है । अत: समग्र आर्थिक विकास के लिये ऊर्जा की उपलब्धता अति आवश्यक होती है । आजकल जीवन की गुणवत्ता का मूल्यांकन भी ऊर्जा उपभोग से माना जाता है । ऊर्जा प्राप्ति के अनेक स्त्रोत है, जैसे–कोयला, पेट्रोलियम, सौर–ऊर्जा, आण्विक ऊर्जा, प्राकृतिक गैस, आदि । इन स्त्रोतों से प्राप्त ऊर्जा को घरेलू उद्योगों तथा कृषि क्षेत्रों में काम में लाया जाता है । तेजी से बढ़ती जनसंख्या से ऊर्जा खपत में भी बढ़ोतरी हुई है । बढती जनसंख्या, बढता औद्योगीकरण, बढ़ते वैज्ञानिक तरीके और घटते ऊर्जा स्त्रोत जैसे – लकड़ी, कोयला, आदि को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि ऊर्जा स्त्रोतों को भविष्य के लिये संरक्षित करना अति आवश्यक है ।

भारत में गैर–परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत दो तरह से काम आएंगे । एक तो कचरे से ऊर्जा बनाना व दूसरा गांवों में बिजली देना । केन्द्र सरकार ने 2010 तक दूर–दराज स्थित 25000 गांवों तक बिजली पहुंचाने का लक्ष्य रखा है । वर्तमान में 5000 मेगावाट बिजली पवन ऊर्जा, सौर–ऊर्जा, बायो गैस, माइक्रो हाइडल जैसे संसाधनों से उत्पादित की जा रही है । केन्द्र सरकार ने 2012 तक 12000 मेगावाट बिजली ऐसे स्त्रोतों से पाने का लक्ष्य रखा है । यह कुल लक्ष्य 120000 मेगावाट का 10% हैं ।

बोध प्रश्न -- 1

केन्द्र सरकार ने 2010 तक कितने गांवो में बिजली पहुंचाने का लक्ष्य रखा है ?

उत्तर: .....

.....

.....

बोध प्रश्न - 2

केन्द्र सरकार ने 2012 तक कितनी ऊर्जा प्राप्त करने का लक्ष्य रखा है ?

उत्तर: .....

.....

.....

8.2 ऊर्जा की बढ़ती आवश्यकता (Growing energy need)

ऊर्जा मानव जीवन का महत्वपूर्ण घटक है । उद्योग, मशीनें, परिवहन के सभी साधन, वैद्युत उत्पादन इकाईयाँ, घरेलू उपकरण, मनोरंजन के साधन आदि सभी के लिए किसी न किसी प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता होती है । भारत के सन्दर्भ में देखा जाऐ तो बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण, प्रत्येक वस्तु बहुतायत मात्रा में चाहिये यानि अधिक उद्योग, अधिक परिवहन के साधन, अधिक कृषि सभी कुछ बहुतायत में चाहिये । ऊर्जा की अतीव आवश्यकता तथा उसके महत्व के कारण परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों लकडी, कोयला, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस, आदि का अतिशय दोहन (Extreme

exploitatation) हो रहा है जो पर्यावरण की दृष्टि से विनाशकारी है । परम्परागत स्त्रोतों में सिर्फ जलविद्युत ही ऐसा स्त्रोत है जो असमाप्य व पर्यावरण की दृष्टि से सुस्थिर (Sustainable) है ।

बढ़ती हुई ऊर्जा की मांग के कारण ही गैर–परम्परागत (Non-conventional) व नवीनीकरण (Renewable) ऊर्जा स्त्रोतों का विकास समय की मांग है ।

ऊर्जा की मांग में अचानक भारी वृद्धि हुई है । एक अध्ययन के अनुसार 2030 तक इसमें 66 वृद्धि होने की संभावना है । इसमें से करीब 40% एशियाई देशों में होगी । इस वृद्धि को देखते हुये ऐसी आशंका की जा रही है कि प्राकृतिक गैस की मांग में वृद्धि आज के 23 से बढकर 2030 तक 28 हो जायेगी । प्राकृतिक तेल, कोयला तथा गैस की खपत पूरे विश्व में बढ़ जायेगी । इनका अनुपात क्रमश: 36,79 और 19 होगा । एक अध्ययन के अनुसार 2030 में चीन की तेल पर ।rनिर्भरता करीब 30 होगी । जैसे–जैसे कोयले की खपत में पर्यावरण की दृष्टि से कमी होगी, वैसे–वैसे प्राकृतिक तेल का उपयोग बढ़ता जायेगा ।

विश्व के 25 महानगरों में से 19 महानगर गरीब देशों में स्थित है । इनमें से 15 महानगरों में प्रत्येक की जनसंख्या एक करोड़ से भी अधिक है । विश्व की कुल जनसंख्या का पांचवा भाग विकसित देशों के शहरों में बसती है । 2025 तक 50 जनसंख्या शहरों में बसेगी । इसी अनुपात में शहरी ऊर्जा की खपत में बढ़ोतरी की संभावना है । जैसे–जैसे मानव शहरों की तरफ पलायन करता है, वैसे–वैसे उसके ऊर्जा की आवश्यकता में बदलाव आता है । उदाहरण के तौर पर जाम्बिया में 90% ग्रामीण लोग तथा फिलिपीन्स में करीब 70% लोग जैविक ईधन पर निर्भर है, जबकि शहरों में लकड़ी या खेतों के अपशिष्ट व गोबर जैसे जैविक उत्पाद आसानी से उपलब्ध नहीं होते है । शहरों में लकड़ी की आपूर्ति बड़े–बड़े वृक्ष काटकर पूरी की जाती है जिससे प्राकृतिक वनों को ज्यादा नुकसान होता है ।ईधन को जलाने के लिये विशिष्ट उपकरणों की आवश्यकता के कारण ईधन की कीमतें बढ़ती है । लकड़ी या मोमबत्ती को जलाने के लिये कोई विशेष उपकरण की आवश्यकता नही होती है, परन्तु कम दबाव वाली गैस (एल पी जी) तथा कैरोसिन ऊर्जा उपयोग करने के लिये विशिष्ट प्रकार के बर्नर का उपयोग आवश्यक होता है ।

जहां तक भारत का प्रश्न है, यहां मांग व आपूर्ति में बहुत अन्तर है । यहाँ त्क कि 1985 से हमें अपने विद्युत गृह चलाने के लिये कोयले का आयात करना पड़ता है । इसी तरह से प्राकृतिक तेल की खपत में प्रतिवर्ष 10% वृद्धि हो रही है । इसके उत्पादन की क्षमता देश में कम है, इस कारण हमारी बहुमूल्य व्देिशी मुद्रा इसके आयात में ही खर्च हो जाती है । एक अध्ययन के अनुसार भारत की बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था 4.6% ऊर्जा उत्पादन वृद्धि पर आधारित रहेगी जो कि विश्व की सबसे ज्यादा ऊर्जा पर निर्भर होगी । 1995 में करीब 63.3% ऊर्जा की आपूर्ति कोयले से, 18.6% तेल से 8.9% जल विद्युत योजना से, 8.2% प्राकृतिक गैस से तथा 1% नाभिकीय ऊर्जा से होती थी । 1995 में भारत में ऊर्जा उत्पादन करीब 8.8 क्वाड्स था जो 2010 में 16.4 क्वाड्स तक पंहुचने की संभावना है । इसकी तुलना में चीन का 35.6 क्वाड्स से 2010 में 64 क्वाड्स तक पंहुचने का अनुमान है । हमारे देश में कुल ऊर्जा का 50% उद्योगों, 22% परिवहन व 10% घरेलू कार्यो में उपयोग लिया जाता है । जनसंख्या में वृद्धि तथा आपूर्ति में कमी को देखते हुए हमारे देश में सदा ही ऊर्जा प्राप्ति की कमी रहेगी ।

बोध प्रश्न -- 3

किन--किन कारणों से ऊर्जा के परम्परागत स्त्रोतों का अतिशय दोहन हो रहा है ?

उत्तर: .....

.....

8.3 नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन (Renewable energy resources)

ऐसे ऊर्जा स्त्रोत जो कभी समाप्त न हो तथा जिसका पुन : उत्पादन संभव हो सके, नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत कहलाते है । इस प्रकार की ऊर्जा थोड़े समय में नवीकृत होती रहती है या असीमित मात्रा में होती है । इस श्रेणी के अंतर्गत जैविक संसाधन जैसे कृषि, वन, घास स्थल तथा जीव जन्तु आते है । जैविक संसाधनों में पुनरूत्पन्न या पुन:स्थापन होने की क्षमता होती है, अर्थात् इन संसाधनों की पुनर्स्थापना या पुननिर्माण संभव है । इन संसाधनों में प्रजनन गुण के कारण इनकी मात्रा में वृद्धि होती रहती है । इन संसाधनों की समुचित देख–रेख, योजनाबद्ध व सही प्रबन्ध करके इनसे निरन्तर उपभोग की सामग्री प्राप्त की जा सकती है । जैविक संसाधनों की एक अन्य विशेषता उनके परस्पर संबन्ध भी है । उदाहरण के लिये यदि कोई वन जलाया जाता है तो इससे न केवल वहाँ के वृक्ष ही प्रभावित होते हैं वरन् मृदा तथा वन्य जीव भी नष्ट होते हैं । जलीय संबंध भी परिवर्तित हो जाते हैं तथा तापक्रम भी प्रभावित होता है । इस प्रकार किसी क्षेत्र विशेष में जैविक संसाधन जटिल रूप से बंधे रहते हैं ।

ओलीवर एस. ओवन (1971) ने प्राकृतिक संसाधनों के वर्गीकरण में जैविक संसाधनों को असमाप्य संसाधन कहा है । अर्थात् ये संसाधन अनन्त है । ओवन के अनुसार समाप्य संसाधन दो प्रकार के होते हैं–

1. **अपरिवर्त्य :--** वे संसाधन जिन पर मनुष्य की गतिविधियों से कोई विपरीत परिवर्तन नहीं होते हैं । उदाहरणार्थ – आणविक शक्ति, वायु शक्ति, जलवृष्टि अथवा ज्वार भाटे की जलशक्ति इत्यादि।
2. **दुरूपयोज्य :--** इसमें मनुष्य की गतिविधियों से परिवर्तन की संभावना रहती है तथा इनका दुरूपयोग भी हो सकता है । उदाहरणार्थ – सौर ऊर्जा एक असमाप्य स्त्रोत है पर मानव की गतिविधियों से बढ़ते हुए वायु प्रदूषण के कारण पृथ्वी पर पहुंचने वाली सौर ऊर्जा प्रभावित होती है । इसी प्रकार वायुमण्डल का रक्षक कवच ओजोन परत में वायु प्रदूषण के कारण किसी भी प्रकार का परिवर्तन हानिकारक सिद्ध हो सकता है ।

संक्षेप में नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों में एक तो वह है जो जीव–भार पर आधारित होती है अर्थात् वनों से मिलने वाली लकड़ी, ईधन, पेट्रोपादप (petro plants), पादप जीव–भार (biomass), प्राणी अपशिष्ट, आदि तथा दूसरी जो प्रकृति से प्राप्त होती है, जैसे– सौर–ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, आदि (तालिका 8.1) । इन्हे गैर–परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत भी कहते है ।

तालिका 8.1. कुछ नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत व उनके उपयोग

ऊर्जा स्त्रोत	उपयोग
सीधी सौर ऊर्जा	
सक्रिय सौर ऊर्जा	घरों को गर्म या ठंडा रखने के लिए एवं पानी गर्म करने के लिए
निष्क्रिय सौर ऊर्जा	घरों को गर्म करने के लिए

सौर तापीय ऊर्जा	बिजली उत्पादन
सौर वोल्टीय	बिजली उत्पादन
परोक्ष सौर ऊर्जा	
जैव–भार ऊर्जा	ईधन के रूप में, बिजली, तरल व गैसीय ईधन के रूप में
पवन ऊर्जा	बिजली उत्पादन
जल ऊर्जा	बिजली उत्पादन
अन्य नवीकरणीय ऊर्जा	
भूतलीय ऊर्जा	बिजली उत्पादन, पानी व घरों को गर्म रखने के लिए
ज्वारीय ऊर्जा	बिजली उत्पादन

(स्त्रोत :- बाकरे व अन्य, 2006)

8.4 अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधन (Non-renewable energy resources)

वह ऊर्जा, जिसके खत्म होने पर पुन: प्राप्त करने के लिए कई हजार वर्ष लग जाऐं अर्थात् उन्हे पुन: प्राप्त करना आसान न हो, अनवीकरणीय ऊर्जा कहलाती है । उदाहरण– गैस, तेल, पेट्रोलियम, कोयला ऊर्जा, आदि । यह स्त्रोत प्राकृतिक अवस्था में पृथ्वी के गर्भ में छिपे है जिनकी मात्रा सीमित है । इन संसाधनों की पुनर्स्थापना नहीं होती है या पुनर्स्थापना की गति बहुत ही मन्द होती है । उदाहरण के लिये लौह, तांबा, जस्ता अयस्क या पैट्रोल स्कन्ध में वृद्धि नहीं होती है । एक बार यदि अनवीकरणीय संसाधनों का पूर्ण उपयोग कर लिया जावे तो समझना चाहीए कि यह खजाना समाप्त हो गया है । मनुष्य इनका उपयोग आने वाले कुछ दशकों तक ही कर सकता है । ऐसी स्थिति में मानव को उसका विकल्प खोजना होगा या इसके बिना ही काम चलाना होगा । नवीकरणीय संसाधनों के विपरीत अनवीकरणीय संसाधनों में परस्पर कोई संबन्ध नहीं होता है । जैसे किसी क्षेत्र में कोयला उत्खनन किया जा रहा है तो उसका प्रभाव अन्य खनिजों पर नहीं होगा ।

ओवन (1971) के वर्गीकरण में इन संसाधनों को समाप्य संसाधनों के अन्तर्गत रखा है । इन संसाधनों को उसने दो श्रेणियों में विभक्त किया है –

1. **संधारणीय संसाधन :--** इस श्रेणी में उन ससाधनों का समावेश किया गया है, जिनकी पुनर्स्थापना या पुनर्निर्माण संभव हो, जैसे वन, घासस्थल, वन्य जीव, कृषि, इत्यादि ।
2. **असंधारणीय संसाधन :--** इसके अन्तर्गत वे संसाधन रखे गये हैं जिनकी पुनर्स्थापना या पुनर्निर्माण पूर्णतया असंभव है । उदाहरणार्थ – पैट्रोल, कोयला, विभिन्न प्रकार के खनिज इत्यादि ।

   इन्हे ऊर्जा के परम्परागत स्त्रोत भी कहते है, अत: यह आवश्यक है कि ऐसी ऊर्जा, जो कि पुन: प्राप्त न हो सके, संरक्षित की जाए । पारम्परिक ऊर्जा के निम्नलिखित स्रोत हैं –

अ कोयला :-- कोयला शब्द ठोस ईधन के विभिन्न रूपों को दर्शाता है । वास्तव में कोयले की उत्पत्ति ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में वानस्पतिक पदार्थो के जमीन में हजारों सालों तक दबे रहने की क्रिया से हुई है । इन वर्षा में कई प्रकार की भौतिक एवं रासायनिक क्रियाएं हुई है, जिनके फलस्वरूप हमें उच्च ताप देने वाला ईधन प्राप्त होता है । कोयला एक उच्च कोटि का व्यावसायिक ऊर्जा स्त्रोत है जो हमें विभिन्न रूपों में प्राप्त होता है । लगभग 6000 अरब टन कोयला पृथ्वी के अन्दर है और अब तक 200 अरब टन से अधिक का उपयोग किया जा चुका है । विश्व में कुल कोयला उत्पादन 1980 में 273 करोड़ मेट्रिक- टन से बढकर 1986 में 323 करोड़ मैट्रिक टन हुआ जो 18.4 प्रतिशत की वृद्धि पंजीकृत करता है । कोयला औद्योगिक ऊर्जा का मुख्य स्त्रोत होने के अलावा कच्चा माल भी है । कोयला व लिग्नाईट मिलकर आज भी देश की वाणिज्यिक शक्ति मांग का 60 प्रतिशत के लिये लेखा देते हैं । विकसित विश्व में कोयले से तेल या गैस पर विस्थापन होने की प्रवृति है । भारत में मुख्य कोयला क्षेत्र है – रानीगंज, झारिया, पूर्वी और पश्चिमी बोकारो, पंचकान्हम सिंगरोली, टालचर, चन्दा–वर्धा ओर गोदावरी घाटी । कोयला निक्षेप के प्रमुख राज्य हैं – बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र । कुल मिलाकर अधिकतर भारतीय कोयले की गुणवत्ता ऊष्माधारिता की दृष्टि से वस्तुत: खराब है । यह खराब ऊष्माधारिता विद्युत, गैस और तेल में भी परिवर्तित की जा सकती है । यही कारण है कि हमारे उष्मीय और श्रेष्ठ उष्मीय शक्ति केन्द्र विद्युत शक्ति उत्पन्न करने के लिये व प्रादेशिक ग्रिड के भरण के लिये कोयला क्षेत्रों पर स्थित होते हैं । भारत में कोयला उत्पादन जो 1951 में केवल 35 मिलियन लाख टन था, जो 1988–89 में 180 मिलियन लाख टन से ऊपर पहुंच गया । कोयले का प्रतिव्यक्ति उपभोग 135 किग्रा. से लगभग 225 किग्रा तक बढा है । लिग्नाईट(भूरा कोयला) साधारणत: निम्नगुणी कोयला है ।

ब. प्राकृतिक गैस :-- प्राकृतिक गैस भी प्रकृति से प्राप्त होती है । इसी कारण यह भी सत्य है कि जब तक कच्चा तेल मिलता रहेगा तब तक प्राकृतिक गैस भी मिलती रहेगी । प्राकृतिक गैस में मुख्यतया मिथेन गैस होती है जो ज्वलनशील गैस है । इस गैस की ज्वलनशीलता को देखते हुए ही प्राकृतिक गैस विद्युत उत्पादन का अग्रणीय स्त्रोत है । भारत में गैस एक प्राकृतिक उपहार है । यह शैल रासायनिक उद्योग में ऊर्जा स्त्रोत और औद्योगिक कच्चा माल दोनों की तरह उपयोग में लिया जा सकता है । यह गैस आधारित शक्ति संयन्त्र निर्मित करने में कम समय लेते हैं । पाईप लाईन द्वारा गैस मुंबई और गुजरात गैस क्षेत्रों से अब मध्यप्रदेश, राजस्थान ले जायी जा रही है और उत्तरप्रदेश हजीरा–बीजापुर–जगदीशपुर गैस पाईप लाईन 1730 किमी. लंबी है और प्रतिदिन 180 लाख घनमीटर गैस ले जाती है । यह छ: उर्वरक और तीन द्रवित पैट्रोलियम गैस (LPG), रसोई गैस भी कहलाती है जो देष में अब अति सामान्य घरेलू ईधन है ।

स. प्राकृतिक तेल :-- पारम्परिक ऊर्जा स्त्रोत में प्राकतिक तेल का बहुत अधिक महत्व है । वर्तमान में यातायात एवं औद्योगिक इकाईयों में प्राकृतिक तेल का बहुत योगदान है । पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त प्राकृतिक तेल से हम विभिन्न द्रवीय तेल प्राप्त कर सकते हैं । जैसे – डीजल, पैट्रोल, केरोसिन, लुब्रिकेटिंग तेल, वैक्स, फर्निस ऑयल आदि । अवसादी शैल जिसमें पादप और प्राणी अवशेष होते हैं और लगभग दस से बीस करोड़ वर्ष पुराने हैं । खनिज तेल किसी भी अन्य खनिज की तरह स्थल पर असमान वितरित रहता है । विश्व में 6 प्रदेश हैं जो खनिज तेल से प्रचुर है । विश्व

के मुख्य तेल उत्पादक देश हैं – संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको, पहला यूएसएसआर और पश्चिमी एशियाई प्रदेश (ईराक, सऊदी अरब, कुवैत, ईरान, संयुक्त अरब अमीरात, कतर और बहरीन) भारत में खासकर प्रायद्विपेत्तर भारत के तृतीय शैलों और जलोढ़ निक्षेपों के बड़े अनुपात है । इस प्रकार के तेल विभव क्षेत्र 10 लाख वर्ग किलोमीटर से अधिक कुल क्षेत्र का एक तिहाई अनुमानित है । यह गंगा–ब्रह्मपुत्र घाटी में उत्तरी मैदान को, तटीय पट्टियों के साथ, उनके अपतट महाद्वीपीय शेल्फ (मुंबई हाई) के साथ, गुजरात के मैदान, थार मरूस्थल और अंडमान–निकोबार द्वीप समूह के आस–पास के क्षेत्र को ढ़कता है । स्वतन्त्रता तक असम ही केवल अकेला राज्य था जहाँ खनिज तेल वेधन किया जाता था । भारत में तेल सबसे पहले मकुम(उत्तर–पूर्व असम) में पाया गया, परन्तु तेल का वेधन लखीमपुर जिले के डिगबोई में शुरू हुआ । स्वतन्त्रता के पश्चात् गुजरात के मैदान और मुख्य निश्चय मुंबई तट पर पाये गये–अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधन (Non-renewable energy resources) देश का सबसे धनी तेल निक्षेप, मुंबई हाई(तट से 115 किमी.) कहलाता है । नये तेल निक्षेप गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और महानदी के डेल्टीय तटों के अपतट क्षेत्रों में पाये गये हैं । गैस साधारणत: तेल क्षेत्रों के साथ संघ में पाये जाते हैं, किन्तु विशिष्ट प्राकृतिक गैस निचय त्रिपुरा, राजस्थान और गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश और उड़ीसा के लगभग सभी अपतट तेल क्षेत्र में स्थित है ।

द. जलशक्ति :– जल हमारे जीवन का एक अत्यन्त उपयोगी तत्व है । इसे ऊर्जा में भी परिवर्तित किया जा सकता है । विद्युत उत्पादन के लिये पानी को ऊँचाई से गिराकर टरबाईन चलाया जाता है, जो विद्युत उत्पादन करता है । वास्तव में इस शताब्दी से पूर्व जलशक्ति छोटे पैमाने पर काम में ली जाती थी, अर्थात् 100 किलोवाट तक विद्युत का उत्पादन इससे किया जा रहा था । आजकल जलशक्ति से बड़े पैमाने पर विद्युत का उत्पादन किया जा रहा है । आज हमारे देश की कुल विद्युत उत्पादन क्षमता 1,31,000 मिलियन वाट का लगभग 23.78 प्रतिशत भाग जलशक्ति से ही प्राप्त किया जाता है । आजकल अपारम्परिक ऊर्जा स्त्रोत के रूप में लघु–पन बिजली परियोजना भी काम में ली जा रही है । जो सिद्धान्त रूप से जलशक्ति ही है । यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में लघु–पन बिजली परियोजना के विकास से 10,000 हजार मेगावाट से अधिक विद्युत उत्पन्न होने की संभावना है । विकेन्द्रीकृत रूप में विद्युत उत्पन्न करने का यह एक अच्छा उदाहरण है।

8.5 ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत एवं उपयोग (Use of alternate sources of energy)

दिन प्रतिदिन मानव समाज की ऊर्जा पर निर्भरता बढ़ती जा रही है, जबकि प्रकृति से मिलने वाले ऊर्जा के स्त्रोत, जैसे–तेल या कोयला धीरे–धीरे समाप्त होते जा रहे है । आने वाले दिनों में ऊर्जा या विद्युत उत्पादन करने के लिए हमें अन्य वैकल्पिक स्त्रोतों को खोजना होगा । विशेषत: ऐसे स्त्रोत नवीकरणीय होने चाहिये, उनसे प्रदूषण कम फैलना चाहिये तथा उसमें लागत भी कम आनी चाहिये । वैज्ञानिकों ने ऐसे स्रोतों की खोज का काम तेज कर दिया है । इससे यह आशा बंधी है कि शीघ्र ही हम ऐसे स्त्रोतों को विकसित कर सकेगें जिससे कम से कम प्रदूषण होता हो ।

8.6 सौर–ऊर्जा (Solar energy)

सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा को सौर ऊर्जा कहते है । सूर्य के अन्दर का आन्तरिक ताप बहुत अधिक रहता है इस अति उच्च ताप पर सबसे हल्की गैस हाइड्रोजन के नाभिकीय संलयित होकर हीलियम के भारी नाभिकों में बदलते रहते हैं । इस नाभिकीय अभिक्रिया में अत्यधिक ऊर्जा मुक्त होती है । इसी ऊर्जा को सौर ऊर्जा कहते है । सूर्य ऊर्जा का सबसे बड़ा स्त्रोत है । सूर्य से पृथ्वी पर प्रतिवर्ष पहुंचने वाली ऊर्जा लगभग 1.6x1018kWh (किलोवाट घंटा) है । पृथ्वी पर समस्त मनुष्यों द्वारा काम में ली जाने वाली ऊर्जा का मान 7x1013 kWh (किलोवाट घंटा) प्रतिवर्ष है । स्पष्ट है कि सूर्य से प्रति वर्ष खपत की तुलना में अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है । मानव सौर ऊर्जा का उपयोग समुद्र के पानी से नमक बनाने, कपड़े सुखाने, पानी गरम करने एवं प्रकाश के रूप में करता आया है । वर्तमान प्रौद्योगिकी के युग में सौर ऊर्जा के व्यापक उपयोग की विभिन्न संभावनाओं का पता लगाया जा रहा है । सौर ऊर्जा को एकत्र कर इससे ऊष्मा एवं विद्युत उत्पादन किया जा रहा है । सौर ऊर्जा को सौर कुकर, सौर तापक तथा सौर सेल में काम में लिया जाता है ।

गैर–परम्परागत स्त्रोतों में सबसे मुख्य स्त्रोत सूर्य है, क्योंकि इससे प्राप्त ऊर्जा सतत, निर्मूल्य एवं बहुत उपयोगी होती है । सूर्य किरणों द्वारा वैज्ञानिकों ने कई नई खोजें की है । सौर–ऊर्जा का उपयोग कर आम जीवन में होने वाली परम्परागत स्त्रोतों की हानि से बचा जा सकता है । सौर–ऊर्जा के विभिन्न तरीके अपनाकर ताप ऊर्जा में बदला जाता है ।

सौर–ऊर्जा संयत्रों का सबसे बड़ा बाजार न केवल भारत है, बल्कि उत्पादक भी है । मार्च 2005 तक भारत खेतों में 10 लाख सौर–ऊर्जा केन्द्र स्थापित कर चुका है । यह दुनिया के किसी भी देश से ज्यादा है ।

8.6.1 प्रकाश वोल्टीय सूर्य सेल (Photovoltic solar cell)

यह वह संरचना है जिससे सूर्य की ऊर्जा को सीधे विद्युत में परिवर्तित किया जा सकता है । प्रकाश वोल्टीय सेल अत्यधिक महीन फिल्म है जो सिलिकॉन की बनी होती है । इस पर कुछ विशिष्ट धातुओं की परत भी चढ़ाई जाती है । इससे सूर्य किरणों को सीधे विद्युत में परिवर्तित करना संभव हो जाता है । हम अपनी घड़ियों के केल्कुलेटर में यहां तक कि उपग्रह (satellite) में ऊर्जा को प्रकाश वोल्टीय सेल से ही प्राप्त करते है । कई कारखानों में इसकी बडी–बड़ी प्रपट्टिकायें (panel) बनायी जाती है, जिसमें सैकडों प्रकाश वोल्टीय सेल लगे होते है (चित्र 8.1) । इसके उपयोग में कठिनाई यह है कि इनके बनाने की लागत बहुत ज्यादा आती है । अधिक ऊर्जा प्राप्त करने के लिये जो बड़ी–बड़ी पट्टिकायें बनायी जाती है वह बहुत अधिक स्थान घेरती है । एक बार बन जाने के बाद यह बहुत उत्कृष्ट ऊर्जा स्त्रोत कहलाता है, कारण कि न्यूनतम रख–रखाव तथा न के बराबर प्रदूषण ।

प्रकाश वोल्टीय सेल का उपयोग विशेषत: सुदूर क्षेत्रों में अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि ऐसे दुर्गम स्थानों पर बिजली के तारों द्वारा बिजली पहुचाना अत्यधिक महंगा तथा खतरनाक होता है । सही संख्या में प्रकाश वोल्टीय सेल को लगाने से हैंडपम्प एवं रेफ्रीजरेटर का चलना, आटा चक्की में पिसाई करना, इत्यादि ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है । $\frac{1}{2} x \frac{1}{2}$ मीटर की एक पट्टिका से उत्पन्न बिजली से पांच कमरों में रोशनी की जा सकती है साथ ही टेलीविजन जैसे दिन–प्रति–दिन

के उपयोग वाले उपकरणों को भी चलाया जा सकता है । भारत जैसे देश में जहां ऊर्जा की सदैव कमी बनी रहती है, इस प्रकार की ऊर्जा महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकती है ।

8.6.2 सौर--ताल (Solar ponds)

जल भी सूर्य की ऊर्जा को प्राप्त कर सकता है, अत: आजकल सौर–ताल सूर्य की ऊर्जा को एकत्रित करने के लिये बनाया जाता है । इसकी गहराई एक मीटर से अधिक होती है । यह पूरी तरह से काले रंग के प्लास्टिक द्वारा आच्छादित रहते है । जब सूर्य की किरणें इस ताल की तली में पहुचती है तब वहां का पानी सूर्य की गर्मी को सोख लेता है तथा इस कारण से तलीय जल का तापमान 100 °C तक पंहुच जाता है । सतह के जल का तापमान वहां की वायु के तापमान के बराबर रहता है । गर्म जल को ऊपर निकालकर इससे भाप उत्पन्न की जाती है । कई बार तो तलछट में एक नमक की परत डाल दी जाती है, जिससे यह नमक तलछट में घुलने से उसमें गर्मी को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है । गर्म जल से भाप बनाकर विद्युत उत्पन्न की जा सकती है । यह तकनीक अभी पूरी तरह विकसित नहीं है और प्रयोगात्मक अवस्था में है ।

8.6.3 सौर कुकर (Solar cooker)

सौर कुकर में भी सूर्य से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग किया जाता है । इसका प्रारूप ऐसा होता है कि जिसमे एक बक्से–नुमा उपकरण होता है जिसको अंदर से काला कर दिया जाता है तथा इसी बक्से के अंदर खाना बनाने के लिये खाद्य–सामग्री से भरे डिब्बे रख दिये जाते है । इस बक्से का ऊपर का ढक्कन कांच का बना होता है । सूर्य की ऊर्जा सूर्य किरणों के रूप में कांच में से होकर कुकर के अंदर परावर्तित होती है ओर उस काली सतह को गर्म कर देती है, इस तरह गर्मी कुकर के अंदर कैद हो जाती है, किन्तु यह ऊर्जा प्रकाश के रूप में न होकर गर्मी के रूप में होती है जो कांच से होकर बाहर नहीं निकल सकती, इस कारण से सोलर कुकर के अंदर का तापमान 177°C तक पंहुच जाता है और अंदर रखे हुए ड्ब्बों में रखा हुआ खाना पक जाता है । खाना पकाने के साथ–साथ चीजों को सोलर कुकर के अंदर उबाला जा सकता है, भूना जा सकता है, आदि । खाना पूरा पकने के लिये 2 से 4 घंटे का समय लग जाता है तथा वह इस पर निर्भर करता है कि सूर्य किरणों में कितनी तेजी है अथवा खाद्य–सामग्री किस प्रकार की है । सोलर कुकर में बने भोजन से न तो विटामिन नष्ट होते है और न ही खनिज, इन तत्वों का हमारे भोजन में होना अति आवश्यक होता है । सोलर कुकर को बनाने में लागत भी बहुत कम आती है साथ ही सरकारी एजेन्सियां इन उपकरणों पर छूट भी प्रदान करती है ताकि लोगों की सोलर कुकर के उपयोग के प्रति रूचि बढ़े । बिना प्रदूषण किये और बिना किसी खर्चे के खाना बनाने का यह सबसे कारगर तरीका है ।

8.6.4 सौर--ऊर्जा द्वारा विद्युत उत्पादन (Production of electricity from solar energy)

सूर्य से विद्युत उत्पादन करने के लिये सूर्य किरणों को संकेन्द्रित किया जाता है, जिससे अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा मिल सकती है । इसके लिये बड़ी संख्या में अवतल (concave) दर्पणों का प्रयोग किया जाता है । उन पर गिरने वाली सूर्य की किरणें इस प्रकार से परावर्तित होती है कि वहां पर उपस्थित नलियों में जो तेल भरा रहता है, उसका तापमान 390°C तक पहुंच जाता है (चित्र 8.2)

। यह गर्म तेल पानी की टंकियों तक पहुंच जाता है तथा अपनी गर्मी को उस जल को दे देता है जिससे भाप उत्पन्न होती है । इस भाप से विद्युत उत्पन्न करने वाले टरबाइन चलते है तथा उनके चलने से विद्युत उत्पन्न हो जाती है । इस तरह की विद्युत उत्पादन में सबसे बड़ी कमी यह है कि रात्रि के समय या जब बादल छाये हुये हो तो सूर्य की किरणें दर्पणों तक नहीं पहुंच पाती । इससे विद्युत उत्पादन का कार्य बाधित होता है । इसलिये आजकल सौर–ऊर्जा के साथ–साथ नेफ्था (naptha) या प्राकृतिक गैस का उपयोग किया जाता है ताकि रात्रि के समय सूर्य की किरणों से ऊर्जा प्राप्त करके विद्युत उत्पन्न की जावे एवं रात्रि में नेफ्था या प्राकृतिक गैस से । हाल ही में राजस्थान सरकार ने जोधपुर के पास मथानिया में इस प्रकार के सम्मिलित प्रकिया वाले विद्युत संयंत्र का कार्यक्रम शुरू किया है, क्योंकि राजस्थान में प्रचुर मात्रा में सौर–ऊर्जा उपलब्ध है । इससे प्रदूषण करीब–करीब नहीं के बराबर होता है ।

बोध प्रश्न - 4

ऊर्जा की मांग में वद्धि क्यों हो रही है ?

उत्तर: .....

.....

.....

बोध प्रश्न - 5

नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन क्या है ?

उत्तर: .....

.....

.....

8.7 पवन ऊर्जा (Wind Energy)

पवन ऊर्जा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है । क्योंकि एक तो यह प्रदूषण से पूर्णत: मुक्त है तथा द्वितीय यह एक ऐसा गैर पारम्परिक ऊर्जा स्त्रोत है जो सतत रूप से उपलब्ध रहेगा । अलग–अलग भू–भागों का तापमान अलग–अलग होने के कारण वायु का प्रवाह बनता है तथा हवा बहती है । विशेषत: यह प्रक्रिया समुद्री किनारे पर बड़ी आसानी से देखी जा सकती है जहाँ भूमि पर उपस्थित हवा गर्म होने से ऊपर उठती है तथा उसकी जगह लेने के लिये समुद्र से हवा तेजी से किनारे की और बढ़ती है । देखा जाये तो यह भी सौर–ऊर्जा का ही एक अलग रूप है क्योंकि भू–भाग को गर्म करने का कार्य भी सौर–ऊर्जा ही करती है । सौर–ऊर्जा की ही तरह पवन ऊर्जा भी परिरक्षित अवस्था (dispersed phase) में होती है तथा उसका संकेन्द्रीकरण आवश्यक होता है । पवन के प्रवाह के कारण उसमें स्थित गतित ऊर्जा का उपयोग विद्युत ऊर्जा उत्पादन में किया जा सकता है । प वन ऊर्जा का सीधे रूप में कुएं से पानी निकालने, गेहूँ पिसने एवं तेल की घाणी चलाने में किया जाता है । समुद्र किनारों के आस–पास तथा पहाड़ियों की ऊचाइयों पर या किसी भी ऐसे स्थान पर जहाँ हवा प्राकृतिक रूप से हर समय बहती रहती है, पवन ऊर्जा उत्पन्न करने के लिये सर्वोत्तम होती है । पवन चक्कियां इन्हीं स्थानों पर लगायी जाती है । इन विशाल पवन चक्कियों के ब्लेड या पंखुडियां हवा के बहने से गतिमान हो जाती है तथा इस गति में ऊर्जा उत्पन्न करने की क्षमता होती है । इससे वायु

में उपस्थित ऊर्जा विद्युत में परिवर्तित हो जाती है । कई स्थानों जैसे – पहाड़ियों पर सैकड़ों पवन चक्कियां लगायी जाती है । विशेषत : द्वीपों पर, घास के मैदानों पर, समुद्री किनारों पर आदि, जहां हवा का प्रवाह सतत बना रहता है । एक बार बन जाने के बाद ये पवन चक्कियां बिना किसी अतिरिक्त खर्चे के ऊर्जा प्रदान करती रहती है तथा इससे किसी भी तरह का प्रदूषण नहीं फैलता । इससे न तो सल्फर डाईऑक्साईड, न कार्बन डाईऑक्साईड, और न ही कोई ग्रीन हाऊस गैसें निकलती है ।

भारत में पवन ऊर्जा की व्यापक संभावनाऐ है । यहाँ वायु की गति का राष्ट्रीय औसत 9.4 मीटर / सैकण्ड है । पवन की गति समुद्री किनारो के क्षेत्रों में बहुत अधिक रहती है इसलिए इन क्षेत्रों में पवन ऊर्जा का उपयोग सबसे अधिक किया जाता है । गुजरात में कच्छ एवं ओखा, उड़ीसा में पुरी तथा तमिलनाडु में तुतीकोरिन में पवन टरबाईन लगे है, जिनसे विद्युत का उत्पादन होता है । भारत में 1000 मेगावाट से अधिक ऊर्जा को पवन से उत्पन्न किया जा रहा है । राजस्थान में 6 से 17 किमी प्रति घण्टा एवं गर्मी में 20 से 40 किमी प्रति घंटा गति से चलने वाली हवाओं का पवन चक्कियों में उपयोग किया जाता है ।

राजस्थान में प्रथम पवन विद्युत योजना जैसलमेर के निकट अमर सागर में स्थापित की गई । इसकी क्षमता 2 मेगावाट है । इसी प्रकार चित्तौड़गढ़ के निकट देवगढ़ में सवा दो मेगावाट की क्षमता वाला पवन संयन्त्र स्थापित किया गया है । इन सभी योजनाओं द्वारा बिजली उत्पादन होता है ।

पवन ऊर्जा का क्षेत्र देश में 30% वार्षिक की दर से बढ़ रहा है । यह देश में व्याप्त ऊर्जा संकट दूर करने का एक सस्ता साधन है । पवन ऊर्जा उत्पादन में भारत दुनिया का पांचवा बड़ा देश हैं । चार अन्य देश क्रमश: जर्मनी, अमेरिका, डेनमार्क और इंग्लैंड है ।

बोध प्रश्न - 6

पवन चक्कियाँ किन--किन स्थानों पर लगाई जाती है ?

उत्तर: .....

.....

बोध प्रश्न - 7

पवन ऊर्जा के उत्पादन में भारत का कौन सा स्थान है ?

उत्तर: .....

.....

8.8 बायो गैस (Biogas)

ऊर्जा के गैर–पारम्परिक स्त्रोत में एक महत्वपूर्ण स्त्रोत बायो गैस है । ईधन के रूप में गावों में प्रयुक्त लकड़ी से वनों को एवं पर्यावरण को होने वाली हानि से रोकने के लिए बायो गैस प्लान्ट को बढ़ावा दिया जा रहा है । इसके अन्तर्गत जन्तुओं के अपशिष्ट, गोबर, पौधों एवं पेड़ों की सूखी पत्तियों आदि को मिलाकर सड़ाया जाता है । इससे उत्पन्न गैस का प्रयोग ईधन के रूप में किया जाता है । यह गैस अत्यन्त सस्ती, सरल एवं उपयोगी होती है । इससे व्यर्थ फैंका जाने वाला पदार्थ भी खाद के रूप में प्रयोग आ जाता है । इस गैस के जलने से धुंआ रहित लौ निकलती है । अत: यह एक प्रदूषण मुक्त गैस है । भारत विश्व का सबसे अधिक पशु रखने वाला देश है । यदि बायो गैस को ईधन स्त्रोत

के रूप में अपना लिया जावे तो यह ग्रामीण क्षेत्रों की 75 प्रतिशत ईधन की आवश्यकता को पूरा कर सकता है ।

सभी अपशिष्ट पदार्थ को डाइजेस्ट टैंक में किण्वन की क्रिया द्वारा सड़ाया जाता है । इससे उत्पन्न गैस में 65% मेथेन, 30% कार्बन डाईऑक्साईड, 1.2% हाइड्रोजन, 0.8% हाइड्रोजन सल्फाइड, 12% नाइट्रोजन, 1.2% ऑक्सीजन एवं 0.8% कार्बन मोनोक्साईड होती है । इस वक्त हमारे देश में 3.5 करोड़ बायो गैस संयत्रों से लगभग 1.5 करोड़ टन लकड़ी की बचत की जा रही है ।

बायोगैस के उपयोग से ग्रामीण क्षेत्रों की ऊर्जा एवं खाद की समस्या का समाधान एक साथ हो जाता है । ग्रामीण क्षेत्रों में ईधन के रूप में काम में ली जाने वाली लकड़ी प्रदूषण उत्पन्न करती है । लकड़िया कटने से वनो का विनाश होता है । इन दोनों दुष्प्रभावों से बायोगैस बचाती है । बायोगैस का उपयोग ऊर्जा के अतिरिक्त प्रकाश, कुटीर उद्योग, सिचांई में किया जाता है । राज्य में सबसे अधिक बायोगैस संयत्र उदयपुर में है ।

बोध प्रश्न - 8

बायो गैस का संगठन बताइये ।

उत्तर: .....

.....

8.9 सारांश (Summary)

बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपात में ऊर्जा की मांग में भी वृद्धि हुई है । नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों की मात्रा असीमित होती है, जबकि अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों के खत्म होने पर उन्हे पुन: प्राप्त करने में हजारों वर्ष लग जाते है । अत: पवन ऊर्जा, सौर–ऊर्जा और बायो गैस पर्यायी ऊर्जा स्त्रोतों के उत्तम विकल्प है ।

8.10 संदर्भ ग्रंथ (Literature cited)

1. बाकरे, बाकरे एवं वाधवा 2006 : पर्यावरणीय अध्ययन, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ ।
2. आमेटा एवं भारद्वाज 2005 : पर्यावरण अध्ययन: एक परिचय, हिमांशु पब्लिकेशंस, उदयपुर ।
3. Rana, S.V.S 2006 : Environment Studies, Rastogi Publications, Meerut.
4. झा, लतिका 2004 : पर्यावरण अध्ययन, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर ।
5. शर्मा, पी.डी 2004 : पारिस्थितिकी एवं् पर्यावरण, रस्तोगी पब्लिकेशन्स् मेरठ ।
6. राठौड़, चास्टा एवं् पोटलिया 2005 : पर्यावरण अध्ययन के मूल तत्व, यश पब्लिशिंग हाऊस, बीकानेर ।

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. भारत सरकार ने 2010 तक 25000 गांवों में बिजली पहुंचाने का लक्ष्य रखा है ।
2. केन्द्र सरकार ने 2012 तक 12000 मेगावाट बिजली पाने का लक्ष्य रखा है ।
3. ऊर्जा की अतीव आवश्यकता तथा उसके महत्व के कारण अतिशय दोहन हो रहा है ।
4. असीमित जनसंख्या बढ़ने से ऊर्जा की मांग में वृद्धि हो रही है ।

5. ऐसे ऊर्जा स्त्रोत जो कभी समाप्त न हो तथा जिसका पुन: उत्पादन संभव हो सके, नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत कहलाते है ।
6. समुद्र किनारों के आस–पास तथा पहाड़ियों की ऊचाइयों पर या किसी भी ऐसे स्थान पर जहां हवा प्राकृतिक रूप से हर समय बहती रहती है ।
7. पवन ऊर्जा उत्पादन में भारत दुनिया का पांचवा बड़ा देश हैं ।
8. बायो गैस में 65–मेथेन, 30–कार्बनडाईऑक्साईड, 1.2–हाइड्रोजन, 0.8–हाइड्रोजन सल्फाइड, 1.2–नाइट्रोजन, 1.2–ऑक्सीजन एवं 0.8–कार्बन मोनोक्साईड होती है ।

8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पर्यायी ऊर्जा स्त्रोतों के महत्व को समझाइये ।
2. सौर–ऊर्जा द्वारा विद्युत उत्पादन किस प्रकार किया जाता है, समझाइये ।
3. सौर कुकर की संरचना बताईये ।
4. ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत एवं् उनके उपयोग के बारे में विस्तारपूर्वक समझाईये ।
5. निम्न के बारे में संक्षिप्त टिप्पणीयां लिखिये –
   अ. पवन ऊर्जा
   ब. बायोगैस

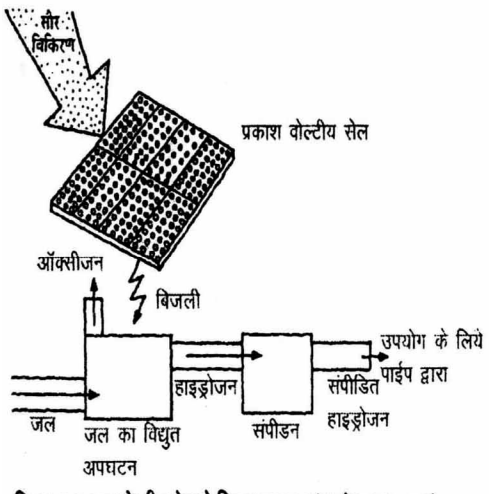

चित्र 8.1 प्रकाश वोल्टीय सेल से विद्युत उत्पादन (बाकरे व अन्य, 2006)

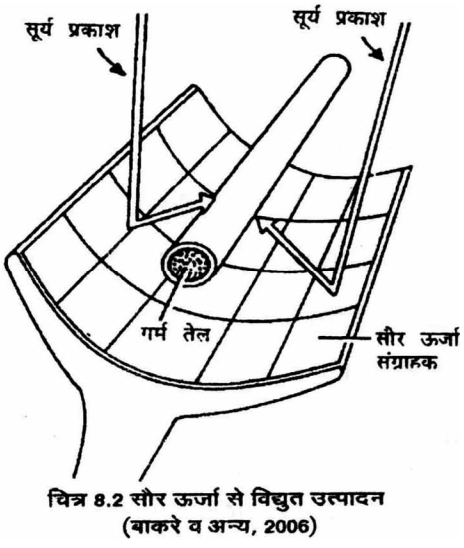

चित्र 8.2 सौर ऊर्जा से विद्युत उत्पादन (बाकरे व अन्य, 2006)

इकाई – 9

भूमि

Land

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 भूमि निम्नीकरण

9.3 मृदा अपरदन

9.3.1 मृदा अपरदन के कारण

9.3.2 मृदा अपरदन के प्रभाव

9.3.3 मृदा अपरदन को रोकने के उपाय

9.4 मरूस्थलीकरण

9.4.1 मरूस्थलीकरण के कारण

9.4.2 मरूस्थलीकरण नियंत्रण के उपाय

9.5 मृदा एवं व्यर्थ भूमि सुधार

9.6 सारांश

9.7 संदर्भ ग्रन्थ

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

9. उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे कि –

1. भूमि संसाधन के महत्व को स्पष्ट करना,
2. भूमि के निम्नीकरण के कारणों की जानकारी प्राप्त करना,
3. मृदा अपरदन व मरूस्थलीकरण के कारणों को जानना व उनको रोकने के उपाय ज्ञात करना, तथा
4. व्यर्थ भूमि की पुन: प्राप्ति को स्पष्ट करना है ।

9.1 प्रस्तावना(Introduction)

किसी राष्ट्र की मृदा उसकी सबसे मूल्यवान धरोहर होती है । मृदा प्राकृतिक वातावरण का एक महत्वपूर्ण घटक है । सामान्य रूप से मृदा पृथ्वी के धरातल की ऊपरी सतह है यह वनस्पति जगत को आधार प्रदान करती है । इससे मानव एवं पशु आहार प्राप्त करते हैं । मनुष्य की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं का यह आधार है । मानव एवं जीवों के लिए अति आवश्यक संसाधनो में भोजन के साथ भूमि की भी उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है । भूमि पर आवास निर्माण कर प्राणी स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है । भूमि पर ही जीवों के जीवन चक्र की सारी क्रियाऐं सम्पादित होती है ।

भूमि समतल, कहीं पहाड़, कही उपजाऊ तो कहीं बंजर पाई जाती है । भूमि की सबसे ऊपरी सतह को मृदा कहते है । मृदा कृषि में सहयोग प्रदान करती है ।

मृदा धरातलीय संरचना एवं मूल चट्टानों पर जलवायु एवं जैविक पदार्थो की सम्मिलित प्रतिक्रिया का परिणाम है । यह खनिज व जैव तत्वों का प्राकृतिक रूप से सम्मिश्रण है । धरातल पर मिलने वाले असंगठित पदार्थो की ऐसी परत जो मूल चट्टान व वानस्पतिक अंश के संयोग से बनती है, मिट्टी कहलाती है । मृदा के चार संघटक है – 1. जैविक पदार्थ 2. अजैविक पदार्थ 3. मृदा वायु एवं 4. मृदा जल । मृदा में अनेक भौतिक एवं रासायनिक गुण होते हैं जो कि इसके रंग, गठन संरचना, क्षारीयता एवं अम्लीयता पर निर्भर करते हैं । इसका निर्माण शैलों के अपक्षय से हुआ है । जिसमें समय के साथ विभिन्न जैविक पदार्थो का मिश्रण हो जाता है । मृदा निर्माण को जलवायु उच्चावच, जैविक पदार्थ, समय व मूल पदार्थ आदि प्रभावित करते हैं । भूमि प्राकृतिक संसाधनों में जीव विकास का एक महत्वपूर्ण अंग है । समुद्र के अतिरिक्त पृथ्वी का ऊपरी भाग भूमि है । इसी भूमि पर बड़े–बड़े आवासीय नगर, औद्योगिक नगर, आदि बने है । कृषि जो मानव जीवन का पोषण करती है, इसी भूमि पर होती है । मृदा इसका महत्वपूर्ण भाग है । दिन–पर–दिन भूमि का उपयोग अकृषि कार्यो के लिए अधिक व जन, वन व पशु–धन को सहेजने के लिए कम होने लगा है ।

भारत की मृदाओं का क्षेत्रवार वितरण इस प्रकार है –

1. पर्वतीय मृदा – ऐसी मृदा हिमालयी पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है ।
2. जलोढ़ या कापीय मृदा – ऐसी मृदा पंजाब, हरयाणा, झारखण्ड, पश्चिमी बंगाल, बिहार उत्तर–पूर्वी राजस्थान, उत्तरप्रदेश व नदियों के डेल्टाई भागों में मिलती है ।
3. काली या रेगड़ मृदा – यह मृदा महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तरी कर्नाटक, आंधप्रदेश व तमिलनाडु के भागों में मिलती है । राजस्थान के कोटा, बूंदी, बारा व झालावाड़ जिलों में भी काली मृदा पायी जाती है ।
4. लाल व पीली मृदा – यह मध्यप्रदेश, छोटा नागपुर पठार, मेघालय व दक्षिणी उत्तरप्रदेश में मिलती है ।
5. लैटेराईट मृदा – यह विशेषत: पूर्वी व पश्चिमी घाटों के समीप, मालाबार, राजमहल पहाड़ियां, अरावली के पूर्वी भागों, उड़ीसा व दक्षिणी महाराष्ट्र में मिलती है ।
6. मरूस्थलीय मृदा – ऐसी मृदा पश्चिमी राजस्थान, उत्तरी गुजरात, दक्षिणी पंजाब व हरियाणा में मिलती है ।
7. नमकीन या क्षारीय मृदा – उत्तरप्रदेश, राजस्थान, उत्तरी बिहार व दक्षिणी पठार के कुछ क्षेत्रों में ऐसी मिट्टी पायी जाती है ।

9.2 भूमि निम्नीकरण(Land degradation)

मृदा भूमि की ऊपरी सतह है । भूमि व मृदा अपने प्राकृतिक स्वरूप में कई पोषक तत्व समेटे हुए है । फल–फूलों की उपज इसी सतह की उर्वरकता पर निर्भर करती है । इस मृदा का मानवीय एवं प्राकृतिक कारणों से विनाश होता रहता है । शहरीकरण, औद्योगीकरण के कारण धीरे–धीरे भूमि का निम्नीकरण हो रहा है । तेज वायु का चलना, बाढ़, सूखा, वनों का काटना, उर्वरकता में कमी,

लवणीकरण, आदि कारक मृदा की उत्तमता में कमी लाते है । मृदा के इस नाश को मृदा का निम्नीकरण या तलावचन कहते है । इसके प्रचुर व लंबे समय तक उपयोग के लिये इसकी गुणवत्ता को बनाये रखना आवश्यक है । मृदा के गुणों में निम्नीकरण मुख्यतया: निम्न दो कारकों के कारण होता हैं । 1. प्राकृतिक, एवं 2. मानवीय

1. प्राकृतिक कारक

(i) वायु द्वारा भूमि की ऊपरी पर्त में कमी होना,

(ii) तेज जल धारा, वर्षा, बाढ आदि से मृदा का अपरदन होना,

(iii) भूकम्प द्वारा ऊपरी उपजाऊ मृदा का धंस जाना, एवं

(iv) रेगिस्तान के प्रसार के कारण उपजाऊ मृदा का रेत के नीचे दबना ।

2. मानवीय कारक

(i) अधिक अकृषि कार्य जैसे भवन निर्माण, औद्योगिक विकास, आवासीय कॉलोनियां आदि योजनाओं में काम आयी भूमि क्षेत्रफल में तो कम होती ही है परन्तु इसके मलबे व इमारती कूड़े से आस–पास की मृदा बंजर व अनुपजाऊ हो जाती है ।

(ii) कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये कई प्रकार के रासायनिक उर्वरक डाले जाते हैं जिनका सम्पूर्ण उपयोग नहीं होता वे अपशिष्ट पदार्थो व उप उत्पादों के रूप में भूमि में बने रहते हैं व मिट्टी की गुणवत्ता को समाप्त करते हैं ।

(iii) कृषि में डाले गए कीटनाशक पदार्थो का मृदा सतह पर अधिशोषण होकर उर्वरकता का समाप्त करना ।

(iv) औद्योगिक अपशिष्टों का भूमि पर बहाव होने से उर्वरकता का समाप्त होना ।

(v) बिना खाद दिए भूमि पर बार–बार फसल उगाना ।

(vi) घरेलू कूड़ा–करकट व औद्योगिक अपशिष्टों का निस्तारण करना ।

(vii) विभिन्न परिवहन के साधनों द्वारा मृदा का ह्रास होना ।

(viii) बांधों व नहरों के निर्माण से मृदा का ह्रास होना ।

भूमि के निम्नीकरण को रोकने के लिये निम्न उपाय किये जा सकते हैं –

(i) भवन निर्माण, खदानों आदि के अनुपयोगी भाग को फिर से गतों में भरा जाये ।

(ii) रसायनों के अति उपयोग की जगह गोबर–पत्ती आदि की जैविक खाद के साथ मिश्रित कर कम मात्रा में उपयोग किया जाये ।

(iii) रसायन अधिक विघटित होने वाले हो जिससे उनके उप उत्पाद मिट्टी में कम से कम रहे ।

(iv) औद्योगिक अपशिष्टों के हानिकारक भाग दूर करके उनका सही तरीके से निस्तारण किया जावे।

(v) फसलों को बदल–बदल कर बोया जावे ।

(vi) शहरी कचरे का निश्पादन उचित रूप से हो ।

इस प्रकार कुछ बातों को ध्यान में रखकर भूमि की उपरी सतह को गुणात्मकता को बचाया है ।

9.3 मृदा अपरदन(Soil erosion)

साधारणत: जल प्रवाह, वायुवेग व अतीव वर्षा एवं अन्य कारकों से शीर्ष मृदा एक स्थान से बहकर या उड़कर अन्य स्थान पर एकत्रित हो जाती है, इस किया को मिट्टी का अपरदन कहते है । भूमि अपरदन को रेंगती हुई मृत्यु भी कहा जाता है । इससे मृदाओं के पोशक जैविक तत्व, भौतिक बनावट व रासायनिक संरचना विनष्ट हो जाती है । मृदा की उपरी सतह नष्ट हो जाने पर उसकी उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती है । जिससे वहां किसी प्रकार की वनस्पति का पैदा होना असंभव हो जाता है । मृदा क्षरण वाला क्षेत्र कृषि अयोग्य हो जाता है । प्रसिद्ध पारिस्थितिकी विद्वान ई.पी. ओडम ने मृदा क्षरण को एक प्रकार के मृदा प्रदूषण की संज्ञा दी है । मृदा क्षरण से अंतत: पारिस्थितिकी तन्त्र विकृत हो जाता है ।

भूमि का अपरदन कई प्रकार का होता है । तीव्र गति से वर्षा के कारण निर्जन पहाड़ियों की मिट्टी जल में घुलकर बह जाती है, तो इसे भूमि का आवरण अपरदन (sheet erosion) कहते है । इस प्रकार का कटाव ढालू खेत, खाली पड़ी भूमि में तथा अत्यधिक कटाई, वनों के विनाश और बदलती खेती की प्रक्रिया के कारण होता है । धरातली अपरदन भूमि की ऊपरी मूल्यवान मिट्टी को बहा देता है, जिससे उसकी उर्वरा शक्ति नष्ट होती है । इस प्रकार का अपरदन राजस्थान के सिरोही, उदयपुर, अलवर, डूंगरपुर, आदि जिलों में अधिकतर देखने को मिलता है । परत या आवरण कटाव के कारण भूमि कृषि, वृक्षारोपण एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों के लिये अयोग्य हो जाती है । जब जल तीव्र गति से बहता है तो उसकी विभिन्न धाराएं मिट्टी को कुछ गहराई तक काट देती है, जिसके परिणामस्वरूप धीरे–धीरे धरातल में कई फुट गहरे गड्डे या नालियां बन जाती है । इस प्रकार के अपरदन को नालीनुमा अपरदन (gully erosion) एवं तीव्र प्रवाह कटाव (rill erosion) कहते हैं । इन नालीयो की मिट्टी दूसरे स्थानों पर बहकर चली जाती है । इस प्रकार का अपरदन धरातली अपरदन से अधिक हानिकारक होता हैं । इस प्रकार का अपरदन सवाई माधोपुर, कोटा तथा धौलपुर जिलों में अधिक दिखाई देता है।

अत्यधिक वृष्टि अथवा बांध के टूट जाने के कारण नदियों का बहाव तेज हो जाता है परिणामत: उपजाऊ भूमि में कटाव हो जाता है, इसे, तटवर्ती भूमि कटाव कहते हैं, इस प्रकार की क्रिया बाढ़ के दिनों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है ।

जल की तरह वायु के द्वारा भी होने वाला मिट्टी कटाव अत्यधिक प्रभावी होता है । राजस्थान के मरूस्थलीय क्षेत्रों में निरन्तर तेज आधियाँ चलती रहती है, इस कारण मरूभूमि में तेज वायु वेग से मिट्टी का अपरदन होता रहता है । इसके द्वारा मिट्टी कटकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर फैल जाती है इसे वायु अपरदन (wind erosion) कहते है । राजस्थान के पश्चिमी शुष्क मैदान के प्राय: सभी क्षेत्र इस प्रकार के अपरदन से प्रभावित है । इन विभिन्न प्रकार के अपरदनों द्वारा कई हैक्टेयर भूमि नष्ट हो चुकी है और लगातार हो रही है । इस प्रकार निरन्तर मृदा क्षरण एवं भूमि के कटाव के कारण निम्न प्रकार के दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं –

1. मृदा की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है ।
2. मृदा की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है ।
3. वनस्पतिजात एवं् वन सम्पदा नष्ट हो जाती है जिससे लकड़ी एवं ईधन की कमी हो जाती है ।
4. समुद्र का जलस्तर छिछला हो जाता है ।

5. भूमि कटाव के कारण परिवहन साधनों को चलाने में समस्या आती है ।

9.3.1 मृदा अपरदन के कारण (Causes of soil erosion)

मृदा अपरदन निम्न कारणों से होता है:

(i) वनों तथा घास के मैदानों पर बड़ी संख्या में पशुओं को चरने के लिए छोड़ दिया जाता है जो वनस्पति को अन्तिम बिन्दु तक चर कर उसे समाप्त कर देते है । इससे बड़े पैमाने पर मिट्टी का अपरदन होता है । इसके कारण वर्षा कम होती है । मृदा में सूक्ष्म जीवों की कमी हो जाती है, जो मृत पदार्थो के अपघटन व कुछ अकार्बनिक पदार्थो का अपघटन करते हैं । इस प्रकार ह्मामस व प्राप्त लवणों की कमी से उर्वरा शक्ति में कमी हो जाती है ।

(ii) अनेक क्षेत्रों के पहाड़ी ढालों पर आदिवासियों द्वारा कृषि के लिए उदयपुर, डूंगरपुर, कोटा बांसवाडा और चित्तौडगढ़ में वनों को काटकर कृषि योग्य बनाया जाता है, जिसके कारण धीरे–धीरे सभी क्षेत्रों में वन नष्ट होकर मिट्टी अपरदन प्रारम्भ हो रहा है ।

(iii) वर्षा ऋतु के आने से पहले शुष्क मैदान के मरूस्थलीय जिलों में भीषण गर्म आधियां चलती है। इस क्रिया द्वारा धरातल पर आवरण क्षय होता रहता है और कालान्तर में यह क्षेत्र अनुपजाऊ बन जाते है ।

(iv) कृषि के अवैज्ञानिक तरीको के कारण कृषक स्वयं मिट्टी के अपरदन का एक प्रमुख कारक है । ढालू क्षेत्रों में समोच्च रेखाओं के समानान्तर जुताई न करने से, दोषमुक्त फसलों की हेराफेरी अपनाने से व आवरण फसलें गलत तरीके से बोने से मिट्टी का क्षरण बढता है । प्राय: राजस्थान के दक्षिणी–पूर्वी क्षेत्रों में इस प्रकार का अपरदन देखने को मिलता है ।

जल द्वारा अपरदन चम्बल और उनकी सहायक नदियों के पठार पर काफी कटाव हुआ है । चम्बल नदी मिट्टी के अपरदन को बढाने वाली मानी जाती है । बाढ़ आ जाने से नदी के किनारों की उपजाऊ भूमि पर बहुत कटाव हो जाता है। राजस्थान में चम्बल, बनास, बाणगंगा, घग्घर आदि नदियों में बाढ़ आती है, जिससे मिट्टी अपरदन होता है । वायु द्वारा मिट्टी का अपरदन शुष्क क्षेत्रों में होता है । राजस्थान में इस अपरदन द्वारा गत शताब्दी में प्रतिवर्ग किलोमीटर लगभग एक करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी का विनाश हुआ है ।

9.3.2 मृदा अपरदन के प्रभाव (Effects of soil erosion)

मृदा अपरदन से निम्न हानियां है

(i) उर्वरक शक्ति वाली मृदा के नष्ट हो जाने से कृषि उत्पादन में कमी,

(ii) नदियों व नहरों की तह में जमकर उनका मार्ग अवरूद्ध करना,

(iii) बोए गऐ खेतों पर, उड़कर, जमी हुई मिट्टी व स्रेत के कारण अंकुरण ठीक से न हो पाना, एवं

(iv) नदियों के किनारे भूमि का कटाव होने से कृषि भूमि में कमी ।

9.3.3 मृदा अपरदन को रोकने के उपाय (Control measures of soil erosion)

मृदा अपरदन को रोकने एवं इसके संरक्षण के लिये निम्न विधियों को उपयोग में लाया जा सकता है ।

1. शस्य विज्ञान विधियाँ (Agronomical methods) : इस विधि में मानव द्वारा उगायी जाने वाली फसलों से मृदा को प्राकृतिक चादर के रूप में सुरक्षा प्रदान की जाती है । इनको जैविक विधियां भी कहते हैं । मुख्य रूप से प्रचलित विधियां निम्न है –

a. पट्टीदार खेती – इस विधि का उपयोग प्रवाह युक्त जल के वेग को कम करने में किया जाता है । इसमें अपरदन को रोकने वाली फसलों को समोच्चय रेखाओं में पंक्तियों के एकान्तरित कम में उगाया जाता है । मृदा को ढाल के विपरीत बहुत सी पंक्तियों में विभाजित किया जाता है । पट्टियों को ढाल के साथ समकोण पर बनाया जाता है । इन पट्टियों पर पंक्ति फसल तथा ढकने वाली फसल को उगाया जाता है । इस प्रकार पट्टीदार खेती के द्वारा मृदा अपरदन काफी हद तक कम हो जाता है ।

b. फसल चक्र – एक ही प्रकार की फसल लगातार उगाने से उस भूमि में विशेष तत्वों की कमी हो जाती है । यदि किसी क्षेत्र में कई प्रकार की फसलें एकान्तर क्रम में उगायी जाये तो इसे फसलचक्र कहते हैं । मृदा संरक्षण के लिये फसलचक्र अपनाते समय घास वाली एवं फलीदार फसलों का समावेश आवश्यक है । इस कारण मृदा की उर्वरकता बढती है, अपरदन रूकता है एवं मृदा को सुरक्षा प्रदान होती है ।

c. खादों का प्रयोग – गोबर, कम्पोस्ट एवं हरी खादों का प्रयोग करने पर मृदा की उर्वरकता में वृद्धि के साथ–साथ मृदा का गठन, संरचना, जलधारण क्षमता एवं चिपचिपापन बढ़ जाता है तथा मृदा अपरदन में कमी आ जाती है ।

d. रक्षक मेखला – इस विधि में विभिन्न वृक्षों एवं झाड़ियों को खेतों के किनारों पर उगाया जाता है । इन वृक्षों के कारण वायु का वेग समाप्त हो जाता है एवं वायु क्षरण से होने वाली हानि रूक जाती है ।

e. मल्च बनाना – पौधों के मूल तन्त्र सहित तने के आधार भाग को ठूंठ के रूप में फसल काटते समय खेत में छोड़ देते हैं । ठूंठ मक्का, कपास, तंबाकू गन्ना, दाल आदि पादपों के होते हैं । फसली पौधों को ठूंठ पंक्तियों के एकान्तर लगाते हैं । ठूंठ मृदा की नमी के वाष्पन को रोकते हैं व कार्बनिक पदार्थ प्रदान कर भूमि की उर्वरकता को बढ़ाते हैं ।

f. वनस्पति आवरण – इस विधि में वनारोपण एवं घास रोपण का उपयोग किया जाता है । सड़कों, रेलमार्गो, नहरों, सार्वजनिक स्थानों के निकट वनस्पतियों का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है । वनस्पतियों की जड़ें मृदा को बांधने में सहायक होती है, जिससे अपरदन को कम किया जा सकता है ।

2. यांत्रिक विधियाँ (Mechanical method) : कुछ यांत्रिक विधियां जिनका उपयोग मुख्यत: किया जाता है निम्न प्रकार की हो सकती है –

a. वेदिका निर्माण – चौड़े आधार वाली बंधी को वेदिका कहते हैं । इनका निर्माण ढालू मृदाओं पर अपधावन के नियन्त्रण हेतु किया जाता है । वेदिकाएं, अवशोषी बेन्वी या चौड़े आधार वाली तथा प्रणाल प्रकार की होती है ।

b. अवनालिका नियन्त्रण – लंबे समय तक अपरदन होने के कारण छोटी–छोटी रील धीरे–धीरे अपनालिका अपरदन का रूप धारण कर लेती है । इसके नियन्त्रण में अपवाह जल को रोकना, अपवाह का पथान्तर, अपवाह आवरण में वृद्धि एवं नवीन संरचनाओं को बनाकर किया जा सकता है ।

3. अन्य विधियाँ (Other methods) :

a. पशुचारण पर नियन्त्रण – अनियन्त्रित पशुचारण से वनस्पति आवरण समाप्त हो जाता है एवं मृदा के कण ढीले हो जाते हैं । इससे जल एवं वायु प्रवाह के कारण उपजाऊ मृदा नष्ट हो .जुाती है । अत: मृदा संरक्षण के लिये अनियन्त्रित पशुचारण नहीं होना चाहिए ।

b. खेतों को परती छोड़ना – गहन कृषि प्रणाली के द्वारा मृदा की उर्वरा शक्ति में ह्रास होता है । लगातार भू परिष्करण के कारण मृदा के कण ढीले हो जाते हैं । यदि खेतों को परती छोड़ा जाये तो मृदा की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है और भूक्षरण का नियन्त्रण होता है ।

c. विशेष फसलों को उगाना – कुछ पौधों में मूल तन्त्र अत्यधिक विकसित होता है जिससे मृदा के कण आपस में बंधे हुए रहते हैं । परिणामत: मृदा अपरदन सरलता से नहीं हो पाता है । उपर्युक्त विवरण को निम्न प्रकार से संक्षेपित किया जा सकता है –

(i) पहाड़ी, बंजर व नदियों के किनारे वाली भूमि में वृक्षारोपण किया जाये,

(ii) वर्षा जल को छोटे–बड़े तालाब बनाकर, बांध बनाकर व जल एकत्र करके नालियों द्वारा वितरित किया जाए, जिससे जल का वेग व मृदा अपरदन कम हो

(iii) जल के प्रवाह को, खेतों की मेड़बन्दी एवं ढालों पर कन्टूर (परिरेखा) बनाकर खेती की पद्धति अपना कर भी रोका जा सकता है

(iv) कुछ स्थाई घास की किस्में वायु अपरदन को रोकती है, एवं

(v) चराई की समय सीमा निश्चित होनी चाहिये ।

बोध प्रश्न - 1

मृदा अपरदन किसे कहते है?

उत्तर: .....

.....

9.4 मरूस्थलीकरण(Desertification)

मरूस्थलीकरण में मरूस्थल का निर्माण होता है । यह या तो जलवायु परिवर्तन के जुड़े प्राकृतिक परिघटना के कारण होता है या गलत भूमि उपयोग के कारण । वास्तव में जलवायु परिवर्तन के लिये भी यह अनुचित भूमि उपयोग पद्धति है जो ज्यादातर. इसके लिये जिम्मेदार है । वनस्पति आवरण के निष्कासन से क्षेत्र के स्थानीय जलवायु में विशिष्ट परिवर्तन होते है । इस प्रकार वनोन्मूलन, अतिचारण, वृष्टि, तापमान, वायुवेग इत्यादि में परिवर्तन लाते हैं और साथ ही मृदा अपरदन करते हैं । इस प्रकार के परिवर्तन फिर से मरूस्थलीकरण का कारण होते हैं । मरूस्थल भूमि के उस भाग को कहा जाता है, जहां वर्षा का अभाव, मृदा की अत्यधिक कम उर्वरकता, वनस्पति का अभाव तथा चारागाहों में चारे का अभाव । मरूस्थली क्षेत्र दो प्रकार के होते है । गर्म, जिनमें की ताप बहुत अधिक होता है, जैसे – थार, सहारा, कालाहारी, आदि एवं ठण्डे जिनमें कि ताप की बहुत कमी होती है, जैसे

– गोबी एवं लद्दाख का मरूस्थल । विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक क्रियाऐं व मनुष्य के क्रिया–कलापों द्वारा शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क भूमि को बढ़ावा मिलता है और मरूस्थल विस्तारित होता जाता है । एक अनुमान के अनुसार, भारत में थार मरूस्थल प्रति वर्ष 13 हजार एकड़ भूमि की गति से बढता जा रहा है । यह विस्तार आगरा, दिल्ली एवं मथुरा तक हो सकता है । मरूस्थली क्षेत्र में वर्षा प्रति वर्ष 25 सेमी से कम होती है, दिन का तापमान बहुत अधिक एवं रात्रि का बहुत कम होता है । आर्द्रता बहुत कम होती है । मरूस्थल की मृदा असंगठित, ढीली व अनुपजाऊ होती है ।

यह गलत नहीं है कि पिछले दो दशकों के दौरान मनुष्य द्वारा वन और अन्य पारिरिथतिक तन्त्र को अधिक क्षति पहुंचाई गई है । देश में आजादी के समय750 लाख हैक्टेयर, लगभग 22 प्रतिशत वन आवरण के अंतर्गत था । आज यह घटकर लगभग 10 प्रतिशत रह गया है । भारत में प्रत्येक 24 घण्टों में 100 लाख पेड़ों का हनन होता है । इस प्रकार वनोन्मूलन मरूस्थलीकरण का महत्वपूर्ण कारक है, प्राथमिकता इसका प्रभाव क्षेत्र की जलवायु पर पड़ता है । स्थल क्षेत्र पर वनस्पति का आवरण कम होने से मृदा में जल शोषण की क्षमता घट जाती है । वाष्पीकरण के कारण पानी तो उड़ जाता है परन्तु लवण उद्दिद मृदा में ही रह जाते है । इस प्रकार वहां वनस्पति नहीं उग पाती है । वनस्पति की कमी से जल तथा वायु अपरदन बढ़ता है । शहरीकरण. औद्योगीकरण, खनन कार्यो से मरूस्थलीकरण को बढावा मिलता है ।

मरूस्थलीकरण मानव कियाओं द्वारा प्रमुखत: शुष्क, अर्द्ध–शुष्क और शुष्क अर्द्ध–आर्द्र प्रदेशों में भूमि का ह्रास का परिणाम है । यह परिभाषा ड्रेग्ने द्वारा UNEP सम्मेलन में दी गई । इस परिभाषा को पृथ्वी सम्मेलन 1992 में और विस्तृत करते हुए दिया गया, जिसके अनुसार मरूस्थलीकरण एक प्रक्रम है, जो जलवायु के उतार–चढ़ाव, मानवीय प्रतिक्रियाओं और जैविक क्रियाओं द्वारा शुष्क अर्द्ध–शुष्क एवं शुष्क अर्द्ध–आर्द्र क्षेत्रों में बढ़ता है ।

9.4.1 मरूस्थलीकरण के कारण (Causes of desertification)

मरूस्थल बनने के प्राकृतिक व मानवजनित कारण है । प्राकृतिक कारणों में मिट्टी में उपजाऊ परत का अपक्षय, मिट्टी का क्षारीय होना, बालुका स्तुपों का खिसक्ना तथा तापमान का उतार–चढ़ाव है । मानवजनित कारणों में –

(i) कम वर्षा,
(ii) रात्रि एवं दिन के तापमान में अन्तर
(iii) मृदा की अधिक लवणता एवं अधिक वाष्पीकरण
(iv) वनों का विनाश,
(v) वृक्षों की जड़ें जो मिट्टी में नमी बनाये रखती है, का जलाऊ लकड़ी के रूप में प्रयोग करना,
(vi) अवैज्ञानिक तरीके से कृषि,
(vii) अनियन्त्रित पशु चराई
(viii) जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि
(ix) भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन
(x) भूमि का अवकर्षण,

(xi) अत्यधिक खनन,

(xii) युद्धों एवं भूमिगत परमाणु विस्फोटों के कारण, आदि कारण है जो मरूस्थलीकरण को बढ़ावा दे रहें हैं ।

मरूस्थल विश्व के सभी भागों में उपलब्ध है । भूमि का लगभग 35 प्रतिशत भाग मरू रूप में है । भारत में यह पंजाब, हरियाणा, राजस्थान एवं गुजरात में फैला हुआ है । मरूस्थलीकरण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मरूस्थल क्षेत्र में कई प्रकार की समस्याओं से मानव जाति तथा जन्तुओं को जूझना पड़ता है ।

9.4.2 मरूस्थलीकरण नियंत्रण के उपाय(Control measures of desertification)

(i) मरूस्थली वनस्पति को संरक्षित करना

(ii) वनों का विनाश रोकना,

(iii) उन्नत किस्म की घास लगाना, जिसमें पशुओं को चारा मिले तथा बालू मिट्टी का स्थिरीकरण हो,

(iv) मरूभूमि के सीमान्त क्षेत्रों में स्थानीय प्रजाति के वृक्षों का रोपण हो,

(v) शुष्क खेती की जाए,

(vi) पशु चराई नियन्त्रित की जाए,

(vii) खनन कार्य रोका जाए,

(viii) सतही एवं भूमिगत जल का प्रयोग नियन्त्रित किया जाए,

(ix) ऊर्जा प्राप्ति के अपारम्परिक स्त्रोतों का विकास किया जाए

(x) कृषि व्यवस्था को परिवर्तित किया जाए,

(xi) समस्या के प्रति जन चेतना फैलाई जाए, एवं

(xii) बालू टीलों पर मिट्टी को बांधने वाले वृक्ष (sand binder) एवं अन्य सूखा प्रतिरोधी (drought resistant) वनस्पति लगाई जाए ।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (CAZRI), जोधपुर द्वारा मरूस्थलीकरण को रोकने के लिए प्रयास किए जा रहे है । इसी प्रकार मरूभूमि को हरा भरा करने के लिए भी कई निजी संस्थाओं का गठन किया गया है । इसके अन्तर्गत इजराइल ने अपनी मरूभूमि को हरा भरा कर लिया है

बोध प्रश्न - 2

गर्म व ठण्डे मरूस्थल के उदाहरण लिखिए ।

उत्तर: .....

.....

बोध प्रश्न - 3

मरूस्थलीकरण के क्या कारण है ?

उत्तर: .....

.....

9.5 मृदा एवं व्यर्थ भूमि सुधार(Soil and wasteland reclamation)

राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड, नई दिल्ली (National Wasteland Development Board : NWDB) के अनुसार बंजर भूमि वह भूमि है जो जल एवं मिट्टी के उचित प्रबन्धन के अभाव में जल एवं वायु द्वारा अपरदित हो रही है तथा उसकी भौतिक एवं रासायनिक गुणवत्ता में मानवीय क्रियाकलापों के फलस्वरूप गुणात्मक ह्रास हो रहा है । वनों की अविवेकपूर्ण कटाई अर्थात् डीफोरेस्टेशन (deforestation), बाढ़, मरूस्थलीकरण, लवणीय जल का ठहराव, इत्यादि ऐसी प्रक्रियाऐं है जो वनस्पतीय प्रदेशों को नष्ट कर इन्हे अनुपजाऊ एवं व्यर्थ भूमि में परिवर्तित कर देती है ।

यदि भारत वर्ष की कुल भूमि (305 मिलियन हेक्टेयर) का आंकलन किया जाए तो हम पाएंगे कि इसमें से 18 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल भूमि शहरी आबादी की बसावट एवं उत्पादन गतिविधियों में प्रयुक्त की जा रही है, 2। मिलियन हेक्टेयर पहाड़ी एवं बर्फीले मैदानों रो आच्छादित है, 17 मिलियन हेक्टेयर भूमि संवर्धित व्यर्थ (culturable waste) है, 83 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल कृषि हेतु प्रयुक्त किया जाता है तथा 23 मिलियन हेक्टेयर भूमि को एक साल के लिए खाली छोड़ दिया जाता है । उपरोक्त आकडे स्पष्ट करते है कि कुल भूमि का पचास प्रतिशत भाग बिना किसी उपयोग के खाली पड़ा रहता है । भारत में मानव–भूमि अनुपात जनसंख्या के अत्यधिक होने के कारण मात्र 0.48 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति ही है ।

1. भारत में व्यर्थ भूमि को दो प्रारूपों में बांटा गया है.

(i) संवर्धन अर्थात् कृषि योग्य व्यर्थ भूमि (Cultural wasteland) इसके अंतर्गत जलमग्न, मार्शी भूमि, लेटराइट मृदा युक्त भूमि, महासागरों के तटीय क्षेत्र, वनों की कटाई से शेष रह गए क्षेत्र, खनन क्षेत्र, औद्योगिक अपशिष्ट भूमि व विस्थापन खेती (shifting cultivation) वाले भाग सम्मिलित किए गए है ।

विकासीय क्रियाओं जैसे सड़कों, बांधों, हवाई अड्डों के निर्माण, रेल मार्ग, खनन गतिविधियों, उद्योगों की स्थापना, इत्यादि के फलस्वरूप कृषि भूमि, घास के मैदानों एवं जंगलों के विस्तृत क्षेत्रों का नाश किया गया है ।

विस्थापन खेती फसल उगाने की एक ऐसी विधि है जिसके अंतर्गत एशिया व अफ्रीका में रहने वाले अनेक जनजाति समुदाय प्राकृतिक वनों को काट कर उसी क्षेत्र में जला देते है । इस प्रकार से प्राप्त की गयी राख के ऊपर खेती करते है । उत्तर–पूर्वी भारत में इस प्रकार की खेती को झूमिंग (Jhuming) के रूप में जाना जाता है ।

(ii)संवर्धन हेतु अनुपयुक्त अर्थात् कृषि अयोग्य व्यर्थ भूमि (Unculturable wasteland)-- बड़े–बड़े शहरों के आस–पास तथा जंगलों में कई स्थानों पर इस प्रकार की भूमि पायी जाती है । बंजर, पथरीली चट्टाने, बर्फ से आच्छादित पहाड़ी शिखर, हिमखण्ड अथवा ग्लेशियर्स (glaciers), खड़े ढलानदार क्षेत्र, आदि इस श्रेणी में सम्मिलित किए गए है । यहां पर भूमि को उपजाऊ बनाने के प्रयास व्यर्थ है । इसके विपरीत संवर्धन योग्य व्यर्थ भूमि का विकास कर इसे मानव प्रयोग हेतु उपजाऊ बनाया जा सकता है । इस प्रकार कृषि योग्य भूमि के कुल क्षेत्र में काफी वृद्धि लायी जा सकती है । राजस्थान में कुल भूमि का 1/5 भाग व्यर्थ भूमि है । यहां यह भूमि रेतीले टीलों के रूप में है ।

2. व्यर्थ भूमि सुधार :

खर्चीली पद्धति होने के कारण व्यर्थ भूमि को पुन: उपयोग में लाने के प्रयास दुष्कर सिद्ध होते है । इसके उपरान्त भी जहां तक संभव हो सके इस कार्य को अत्यावश्यक समझ कर क्रियान्वित किया जाना अपेक्षित है । व्यर्थ भूमि को पुन: उपजाऊ बनाने हेतु सामाजिक वानिकी (social forestry), सघन वृक्षारोपण (afforestation), घासीय मैदानों के रूप में चरागाहों का विकास नर्सरी का निर्माण, इत्यादि प्रकियाओं के द्वारा किया जा सकता है । इसी संदर्भ में दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में व्यर्थ भूमि पर ग्रामीणों के द्वारा नारियल एवं यूकेलिप्टस के वृक्ष उगाये जाते है, जिन्हे बाद में काट कर इनसे एवं इनके उत्पादों से ये लोग पैसा कमाते है ।

व्यर्थ भूमि के विकास में महिलाओं के योगदान के बारे में किये गये शोध के अनुसार महिलाएं ईधन उठाना, गोबर उठाना, जल भरना आदि व्यर्थ के लिये जंगल का नित्य उपयोग करती है । यदि व्यर्थ भूमि पर नीम, महुआ, तेंदु, साल, अर्जुन, आदि के छालयुक्त पेड़ लगाये जायें व झाड़ियां आदि लगवायी जाये तो ईधन के रूप में हरे पेड़ भी नहीं कटेंगे व महिलाओं को आसानी से ईधन भी मिलेगा । इस प्रकार व्यर्थ भूमि की, वन या ईधन या वनस्पति या चारागाह के रूप में पुन: प्राप्ति हो सकती है । दुनियां की अधिकतर बंजर भूमि या तो अम्लीय है या क्षारीय है । अम्ल अथवा क्षार के आयनों की उपस्थिति से मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणवत्ता नष्ट हो जाती है । अम्लीय बंजर भूमि में चूने का प्रयोग करने से मृदा में न सिर्फ अम्लता कम होती है बल्कि उसमें कैल्सियम का सांद्रण भी बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा की संरचना, जल में घुलनशीलता, वायवीय संरन्द्रता आदि में सुधार होता है । सूक्ष्म जीवों की संख्या में बढ़ोतरी से भूमि उपजाऊ हो जाती है । क्षारीय बंजर भूमि के सुधार हेतु जिप्सम का भी प्रयोग किया जाता है । इसके लिये जिप्सम का ताजा चूर्ण और फॉस्फो जिप्सम का उपयोग किया जाता है । इस प्रकार की भूमि के सुधार हेतु गहरी जुताई, उचित जल निकासी, नियन्त्रित सिंचाई आदि कियाओं को अपनाना चाहिए । व्यर्थ भूमि के सुधार हेतु नील हरित शैवालों का भी प्रयोग किया जाता है, जिससे कार्बनिक पदार्थो की मात्रा में वृद्धि हो सके । राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड, नई दिल्ली भी व्यर्थ भूमि सुधार हेतु प्रयासरत है जिसका नया मिशन है भूमि निम्नीकरण रोकना, व्यर्थ भूमि को प्रतिपालित उपयोग में लाना, जीव भार प्राप्यता बढ़ाना और पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखना । पिछले सात वर्षो के दौरान राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड, नई दिल्ली ने कई क्रियाओं की शुक्सात की और बढ़ावा दिया और यह प्रदर्शित किया कि भारत की व्यर्थ भूमियों के पुनरूद्धवन की चुनौती को पूरा करने में सक्षम है ।

बोध प्रश्न - 4

झूमिंग कृषि से क्या अभिप्राय है?

उत्तर: .....

.....

9.6 सारांश(Summary)

भूमि की ऊपरी सतह को मृदा कहते है । मानवीय व प्राकृतिक कारणों से मृदा का विनाश हो रहा है । जल प्रवाह, वायु वेग व अतीव वर्षा के कारण मृदा का अपरदन हो रहा है । वृक्षारोपण

द्वारा मृदा अपरदन एवं मरूस्थलीकरण को रोका जा सकता है । इसी प्रकार सामाजिक वानिकी व चारागाहों की स्थापना द्वारा व्यर्थ भूमि को पुन: उपजाऊ एव उपयोगी बनाना संभव है ।

9.7 संदर्भ ग्रंथ(Literature cited)

1. बाकरे, बाकरे एवं वाधवा 2006 : पर्यावरणीय अध्ययन, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ ।
2. आमेटा एवं भारद्वाज 2005 : पर्यावरण अध्ययन. एक परिचय, हिमांषु पब्लिकेशंस, उदयपुर ।
3. Rana S.V.S 2006 : Environmental Studies, Rastogi Publications, Meerut।
4. झा, लतिका 2004 : पर्यावरण अध्ययन, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर ।
5. राठौड़, चास्टा एवं पोटलिया 2005 : पर्यावरण अध्ययन के मूल तत्व, यश पब्लिशिंग हाऊस, बीकानेर ।
6. शर्मा, पी.डी. 2004 : पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ ।
7. त्यागी, सक्सेना एवं जैन 2005 : पर्यावरण अध्ययन, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर ।

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. साधारणत: जल प्रवाह, वायुवेग व अतीव वर्षा के द्वारा भूमि की ऊपरी परत एक स्थान से बहकर या उड़कर अन्य स्थान पर एकत्रित हो जाती है, इस क्रिया को मिट्टी का अपरदन कहते है ।
2. गर्म मरूस्थल जिनमें कि ताप बहुत अधिक होता है जैसे– थार, सहारा, कालाहारी, आदि एवं ठण्डे जिनमें की ताप की बहुत कमी होती है, जैसे – गोबी एवं लद्दाख का मरूस्थल ।
3. मरूस्थलीकरण के कारण – कम वर्षा, अधिक वाष्पीकरण, वनों का विनाश, अनियन्त्रित पशु चराई, जलवायु में परिवर्तन एवं मृदा की ऊपरी उपजाऊ पर्त का अपरदन ।
4. 4. विस्थापन खेती फसल उगाने की एक ऐसी विधि है जिसमें प्राकृतिक वनों को काट कर उसी क्षेत्र में जला देते है । इस प्रकार से प्राप्त की गयी राख के ऊपर खेती करते है ।

9.9 अथ्यासार्थ प्रश्न

1. मृदा अपरदन के विभिन्न कारणों, प्रभाव एवं रोकने के उपायों पर संक्षेप में लिखिये ।
2. मरूस्थलीकरण को रोकने के उपायों की सविस्तार व्याख्या कीजिए ।
3. भूमि निम्नीकरण से क्या अभिप्राय है?
4. व्यर्थ भूमि सुधार के बारे में विस्तार से समझाईये ।

इकाई – 10

जैव भौगोलिकी

Biogeography

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 भारत के जैव भौगोलिक क्षेत्र

10.2.1 पश्चिमी हिमालय

10.2.2 पूर्वी हिमालय

10.2.3 पश्चिमी भारतीय मरूस्थल : इण्डस मैदान

10.2.4 गंगा के मैदानी क्षेत्र

10.2.5 मध्य भारत

10.2.6 पश्चिमी घाट या मालाबार क्षेत्र

10.2.7 पूर्वी घाट या दक्षिणी पठार

10.2.8 आसाम

10.2.9 अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह

10.3 भारत के जंतु भौगोलिक क्षेत्र

10.4 राजस्थान के जैव भौगोलिक क्षेत्र

10.4.1 मरूस्थलीय क्षेत्र

10.4.2 अरावली पर्वत

10.4.3 अरावली से पूर्व का क्षेत्र

10.5 राजस्थान की संकटग्रस्त एवं क्षेत्र विशेषी जातियां

10.5.1 संकटग्रस्त जातियां

10.5.2 क्षेत्र विशेषी जातियां

10.6 सारांश

10.7 संदर्भ ग्रन्थ

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

10. उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेगे कि –

1. भारत के जैव भौगोलिक क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त करना,
2. राजस्थान के जैव भौगोलिक क्षेत्रों की व्याख्या करना, एवं

3. राजस्थान की संकटग्रस्त व क्षेत्र विशेषी जातियों का प्रतिपादन करना ।

10.1 प्रस्तावना(Introduction)

जैव भूगोल (biogeography) पारिस्थितिकी विज्ञान (environmental science) का एक प्रमुख विषय है । जैव भूगोल (biogeography) के अन्तर्गत पादप तथा जन्तुओं के भूधरातल पर वितरण का अध्ययन किया जाता है । विश्व में भिन्न–भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में आवासित पादप व जन्तु समुदाय एक दूसरे से भिन्न पाये जाते है । पादप भूगोल के अन्तर्गत विभिन्न पादपों की उत्पत्ति, उद्‌गम स्थल, वितरण तथा उनके मध्य व्याप्त वातावरणीय पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करते है । वैज्ञानिकों का यह निष्कर्ष है कि पृथ्वी–पर किसी भी क्षेत्र की वनस्पति का वितरण (distribution) प्रमुख रूप से जलवायु द्‌वारा निर्धारित होती है ।

जन्तु भूगोल (zoogeography) के अन्तर्गत विभिन्न जन्तुओं की उत्पत्ति, वितरण तथा उनके मध्य पर्यावरणीय पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करते है

10.2 भारत के जैव भौगोलिक क्षेत्र(Biogeographical regions of India)

भारत उपमहाद्‌वीप 6 से 30 डीग्री उत्तरी अक्षांशों के मध्य स्थित है । यहां पर मिट्टी जलवायु तथा वनस्पति की विविधताऐं मिलती है । इसी कारण भारत एक जैव विविधता सम्पन्न राष्ट्र के रूप में जाना जाता है । भौगोलिक दृष्टि से भारतीय उपमहाद्‌वीप को कई क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है । समय–समय पर वैज्ञानिकों ने भारत को कई भौगोलिक क्षेत्रों में विभक्त किया है । इनमें प्रमुख प्रयास करने वालों में क्लार्क (1898), हुकर (1906), राजी, जैन (1983), मेहरहोमजी (1984) आदि के प्रयास सराहनीय है । भारतीय वन्य–जीव संस्थान (Wild Life Institute of India) ने भारत को 10 जैव भौगोलिक क्षेत्रों में विभक्त किया है । किन्तु चटर्जी द्‌वारा 1962 में प्रस्तावित वर्गीकरण सर्वमान्य है । इनके अनुसार भारत को 9 भौगोलिक क्षेत्रों में विभक्त किया गया है ।

भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों (चित्र 10.1) का संक्षिप्त वर्णन निम्न है :

10.2.1 पश्चिमी हिमालय (Western Himalayas)

हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं में विश्व की सबसे ऊंची पर्वत चोटी उपस्थित है, जो पूरे भारतवर्ष के जलवायु तथा वनस्पति वितरण को प्रभावित करती है । इस क्षेत्र के अन्तर्गत कश्मीर से कुमायुं एवं सिक्किम के पश्चिम भाग के विस्तृत क्षेत्रों के भूभाग आते है । वार्षिक औसत वर्षा 100 सेमी होती है । जलवायु ऊष्ण कटिबंधी तथा उपोष्ण कटिबंधीय प्रकार की होती है । यहां की भूमि पर आर्द्र व सूखे क्षेत्रों में उगने वाले मिश्रित वानस्पतिक पादप अधिकतर शिवालिक पहाड़ियों की तलहटी में पाये जाते है । यहां निम्न प्रकार के पादप मिलते है – अधिक ऊंचाई पर भोजपत्र, चीड़(चिलगोजा), बांस, ओक, देवदार, क्रिसमस ट्री, केसर तथा कम ऊंचाई पर टीका साल, ढाक, गूलर, कत्था, शीशम, अर्जुन, सेमल, जामुन, आदि । ऊंचाई के अनुसार इसमें तीन प्रकार के वानस्पतिक अनुक्षेत्र पाये जाते है –

(क) उप पर्वतीय क्षेत्र -- इस अनुक्षेत्र की समुद्र तट से ऊंचाई लगभग 1500 मीटर तक है, जिसमें हिमालय की तराई का इलाका और शिवालिक पर्वत श्रेणियाँ सम्मलित है । उपोष्ण वनों के इस क्षेत्र में पाई

जाने वाली प्रमुख पादप प्रजातियाँ है– साल, सेमल, ढाक, अर्जुन, तुंग, धौंकड़ा हल्दू, बांस, शीशम एवं करौंदा इत्यादि । अधिक ऊंचाई पर चीड़ भी मिलता है ।

(ख) शीतोष्ण अनुक्षेत्र -- 1500 से 3000 मीटर की ऊंचाई तक के इस अनुक्षेत्र में पर्वतीय शीतोष्ण वन पाये जाते है जिनमें चीड़, देवदार, ओक, मेपल, भोजपत्र, नाख, पोपलर, सरो, एवं टेक्सस आदि आवृतबीजी एवं शंकुधारी वृक्ष मिलते है ।

(ग) पर्वतीय अनुक्षेत्र -- 3500 मीटर से ऊपर हिमरेखा तक अधिकतर छोटे वृक्ष एवं झाड़ियाँ ही मिलते है । हिमरेखा के समीप तो केवल शाकीय पौधे ही पाये जाते है । इन पौधों में बुरांस की झाड़ियाँ तथा एबीस, बेदुला एवं जूनीपेरस प्रमुख है ।

10.2.2 पूर्वी हिमालय(Eastern Himalayas)

यह क्षेत्र ऊपरी आसाम से लेकर सिक्किम तक एवं नागालैण्ड, मणीपुर, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा, दक्षिणी पूर्वी अरूणाचल प्रदेश तथा दार्जिलिंग तक फैला हुआ है । पश्चिमी हिमालय की तुलना में तापमान और वर्षा अधिक होते है । यहां 200 सेमी से अधिक वर्षा होती है । बर्फ भी बहुत कम पड़ती है और हिमरेखा 5500 मीटर की ऊंचाई पर है । इस क्षेत्र में सरेस, कचनार, ढाक, शीशम, अमलतास, कदम्ब, अर्जुन, शहतूत, चन्दन, जामुन, सेमल कटहल, बांस तथा सवाना घास के मैदान मिलते है । यही उच्च पर्वतीय क्षेत्रों पर चीड़, देवदार, ओक, व विभिन्न प्रकार के आर्किडस मिलते है । इसे भी तीन अनुक्षेत्रों मे ऊंचाई के अनुसार विभाजित किया गया है –

(क) उष्ण अनुक्षेत्र -- लगभग 1800 मीटर की ऊंचाई तक उष्ण अर्द्ध–सदाबहार वन और नम पर्णपाती वन पाये जाते है । इस क्षेत्र में पाये जाने वाली प्रमुख पादप प्रजातियां है – साल अर्जुन, सिरस, कटहल, डिलेनिया एवं कचनार इत्यादि ।

(ख) शीतोष्ण अनुक्षेत्र -- 1800 से 3800 मीटर की ऊंचाई तक के क्षेत्र में सामान्य शीतोष्ण पर्वतीय वन मिलते है, जिनमें ओक, सिमप्लोकोस एवं अनेक शंकुधारी वृक्षों की प्रजातियां और अधिक ऊंचाई पर सेलिक्स रोडोडेन्ड्रोन (बुरांस) इत्यादि पादप प्रमुखता से पाये जाते

(ग) पर्वतीय अनुक्षेत्र -- 3800 मीटर से हिमरेखा तक रोडोडेन्ड्रोन एवं जूनीपेरस की झाड़ियां और अधिक ऊंचाई पर शाकीय पौधे मिलते है ।

10.2.3 पश्चिम भारतीय मरूस्थल : इण्डस मैदान(West India desert : Indus plains)

यह उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र (north western) निम्न पांच प्रमुख भूभागों से निर्मित है –

(i) पश्चिमी राजस्थान एवं अरावली पर्वत श्रृंखलायें (ii) कच्छ की खाड़ी, (iii)उत्तरी गुजरात (iv) हरियाणा के मैदानी भाग तथा पंजाब, एवं (v) थार मरूस्थल ।

थार मरूस्थल 446000 वर्ग किमी तक फैला हुआ है । बाकी क्षेत्र पहाड़ी तथा चट्टानी है । यहां वर्षा का वार्षिक औसत काफी कम है, अत: यहां का तापमान काफी अधिक होता है व शुष्क मौसम प्राय: 8 महीने से अधिक तक रहता है । यहां ज्यादातर वनस्पति मरूदभिदीय लक्षण प्रदर्शित करती है व यहां काफी क्षेत्र लवणीय (saline) या बालूई है । तापक्रम की अधिकता और वर्षा की कयो से इस क्षेत्र की वनस्पती में प्रमुखतया उष्ण कंटीले वन(dry scrbby forest) काफी दूर–दूर समूह में

पाये जाते है । यहां बेर, पीलू थोर, बबूल, रोहिड़ा, डांसरा केक्टस, खेजड़ी, दुई, मूंज, आकड़ा कैर, भाखडी, खींप, सणिया, भरूंट एवं पेनिकम घास आदि वनस्पतियां पायी जाती है ।

10.2.4 गंगा के मैदानी क्षेत्र (Gangetic planis)

यह क्षेत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बंगाल तथा बिहार के उपजाऊ भागों से मिलकर बना इलाका है । यहां वर्षा सामान्य होती है तथा मृदा जलोढ़ (alluvial) प्रकार की होने से भूमि उपजाऊ होती है एवं विविध (diverse) प्रकार की वनस्पति के उगने के लिये अत्यन्त उपयुक्त होती है । पूर्वी बंगाल में 150 सेमी से अधिक वर्षा किन्तु पश्चिमी क्षेत्रों में 70 सेमी से भी कम वर्षा रिकार्ड की गई है । पूर्वी भाग के सुन्दरवन में मेन्ग्रोव वन पाये जाते है जो अधिकतर गंगा एवं ब्रह्मपुत्र के डेल्टा के पास उपस्थित है । यहां की प्रमुख वनस्पति उष्ण नम (tropical humid decuduous) या शुष्क पर्णपाती वन (tropical deciduous फोरसेट) है । जैसे – आम, अंजीर, ताड़, कटहल, साल, शीशम, टीक, बबूल, टेमेरिक्स आदि ।

10.2.5 मध्य भारत(Central India)

यह गंगा के मैदान तथा प्राय:द्वीप (Gangetic plains and Peninsular) के मध्य भारत तक फैला हुआ क्षेत्र है। इसमें उड़ीसा, गुजरात तथा मध्यप्रदेश के कुछ क्षेत्र तथा विंधिया व सतपुड़ा (Vindhya and satpura) की पर्वत श्रृंखलायें सम्मिलित है । वर्षा की अधिकता सामान्य रूप से वर्ष में 150 से 200 सेमी तक और सामान्य तापमान के कारण यही टीक के पर्णपाती वन दूर–दूर तक फैले है । इसके अतिरिक्त यहां निम्न प्रकार की वनस्पति पाई जाती है, जैसे - गूलर, अर्जुन, शीशम, करोंदा, तेंदू ढ़ाक, बांस तथा कई जातियों की फर्न, बेर, बबूल, डांसरा, खेजड़ी एवं शुष्क कंटीले वन भी अधिकांश मरूभूभागों में पाये जाते है ।

10.2.6 पश्चिमी घाट या मालाबार क्षेत्र (Western ghat or Malabar region)

यह काफी विस्तृत क्षेत्र है तथा उत्तर में दक्षिणी गुजरात से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक इसका विस्तार है । यह भाग महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरला, तथा तमिलनाडु के मध्य में स्थित है । सर्वाधिक वर्षा के कारण उष्ण सदाबहार वन पाये जाते है, जो धीरे–धीरे प्रायद्वीप के भीतरी भाग(पूर्वी भाग) की ओर अर्ध सदाबहार तथा उपोष्ण या पर्वतीय शीतोष्ण सदाबहार वनों मे(नीलगिरी पर) परिवर्तित हो जाते है । अत: उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में मुख्यत: चार प्रकार के वन पाये जाते है–

(क) उष्ण नम सदाबहार वन-- ये वन समुद्र तट के सम्मुख पश्चिमी घाट की निचली ढलानों पर मिलते है, यहाँ वृक्षो की प्रचुरता मिलती है ।

(ख) मिश्रित पर्णपाती या मानसूनी वन -- ये पश्चिमी घाट के पहाड़ी प्रदेशों में 5000 फुट की ऊँचाई तक मिलते है । अधिकांश वृक्ष पर्णपाती होते है तथा वृक्ष ऊँचें नही होते है ।

(ग) शीतोष्ण सदाबहार वन -- ये नीलगिरी की पहाड़ियों पर पाये जाते है जो 5000 फुट की ऊँचाई तक मिलते है । नीलगिरी के सदाबहार वन शोलो के नाम से प्रसिद्ध है ।

(घ) मैन्ग्रोव वन – मुम्बई एवं केरल के समुद्री तट तथा एलीफेन्टा, उट्टान मोरा आदि टापुओं में मैन्ग्रोव वन वनस्पति को निरूपित करने वाले पादप पाये जाते है ।

मुख्य रूप से यहाँ उपरोक्त क्षेत्रों में पहाड़ी ढलानों पर चाय तथा काँफी के बागान पाये जाते है । यहां की प्रमुख वनस्पतियों में बांस, शीशम, टीक, रबर, सिन्होना, महागोनी ताड़, नारियल, सुपारी, साल, अर्जुन, तेंदू लौंग, कोरडिया राइजोफोरा एवीसीनिया आदि पाये जाते है ।

10.2.7 पूर्वी घाट या दक्षिणी पठार (Eastern ghats or The Deccan Plateau)

दक्षिण पठार के पूर्व की ओर निचली पर्वत श्रृंखलाएं पूर्वी घाट निर्मित करती है । इस क्षेत्र में आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटका, तथा तमिलनाडु के भूभाग सम्मिलित है । पूर्वी घाट के ढलानों पर उत्तरी पूर्वी मानसून के सक्रिय होने से सघन वन पाये जाते है । यहां शुष्क पर्णपाती (dry deciduous) तथा अर्ध सदाबहार (semi-evergreen) वन मिलते है । पूर्वी घाट के कुछ क्षेत्रों में वर्षा कम होने से इस भूभाग व इन ऊंचे पहाड़ी पठारीय क्षेत्रों पर मरूद्भिदीय पादप पाये जाते है । यहां जामुन, चंदन, डिप्टेरोकार्पस, स्टरक्यूलिया, आदि पादप पाये जाते है । शुष्क क्षेत्रों में मरूद्भिदीय पादप जैसे अकेशिया, कैर, कैक्टस, थोर, डांसर, बबूल, खेजड़ी, धोंक, वजदेती, बेर, आदि पाये जाते है ।

10.2.8 आसाम (Assam)

यह क्षेत्र संसार भर में आर्द्र स्थान के रूप में प्रसिद्ध है, क्योंकि यहां चेरापूंजी स्थित है जहां विश्व की सर्वाधिक वर्षा (1000 सेमी) होती है । यहां अधिक वर्षा के कारण अधिक नमी व तापक्रम कम या सामान्य से अधिक रहता है । यहां सघन उष्ण सदाबहार वन फैले हुये है । उत्तरी क्षेत्रों में ठंडे भूभागों पर वनस्पति शीतोष्ण प्रदेशों के समान विस्तारित है तथा सदाबहार वनों में गुर्जन, माइकिलिया साल, बांस, टीक, शहतूत, फ्रेगमाइटिस, थीमिडा इम्परेटा, सैकेरम, आदि वृक्ष व घास पाई जाती है । ठंडे पहाड़ी क्षेत्रों में कीटभक्षी घट पादप, आर्किड फर्न, चीड़, देवदार, रोडोडेन्ड्रोन, आदि पादप पाये जाते है ।

10.2.9 अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह (Andman & Nicobar Islands)

बंगाल की खाड़ी में पाये जाने वाले अण्डमान में 204 द्वीपसमूह तथा निकोबार में 22 द्वीपसमूह सम्मिलित है । यहां कई दुलर्भ व क्षेत्र विशेषी (endemic) जातियां पायी जाती है । यहां लगभग 300 सेमी वर्षा रिकॉर्ड की गई है । इस क्षेत्र में तटीय भागों पर मैन्ग्रोव वनस्पति की अधिकता है । द्वीप के अन्दर जाने पर ऊंचे वृक्ष विस्तारित है । यहां आर्किड, फर्न, बांस, अर्जुन, गुर्जन, ऐरीका नायपा, आदि पादप पाये जाते है । मैन्ग्रोव वनस्पति में राइजोफोरा, ब्रुगिएरा व कोरालिया के वृक्ष पाये जाते है ।

बोध प्रश्न - 1

पश्चिमी हिमालय में पाई जाने वाली पादप जातियों के नाम लिखिए ।

उत्तर: .....

.....

बोध प्रश्न - 2

इण्डस मैदान किन भूभागों से मिलकर बना है '

उत्तर: .....

.....

10.3 भारत के जन्तु भौगोलिक क्षेत्र (Zoogeographical regions of India)

भू वैज्ञानिक प्रेटर ने अपने अध्ययन द्वारा 1934 में भारत को अनेक जीव भौगोलिक भागों में विभाजित किया है जो उत्तर में हिमालय से प्रारम्भ होकर दक्षिण में नीलगिरी वन तक है, जिसका विवरण निम्न है–

(1) हिमालय प्रदेश -- भूभाग एवं जलवायु के अनुसार इसे निम्न तीन भागों में बांटा गया है –

(I) लद्दाख का शीत शुष्क प्रदेश – भारत के उत्तर पश्चिम में शुष्क पर्वतीय क्षेत्र है । यहाँ तीव्र सर्दी होती है । यहाँ प्रमुखत: पाये जाने वाले जीव– याक, गुरल, हंगल, जंगली बकरी तथा विशिष्ट प्रकार के हरिण है ।

(II) हिमालय के निम्न वन भूभाग – यह अत्यधिक जीव सम्पदा तथा विविधता वाला प्रदेश है, इसमें पाये जाने प्रमुख जीव शेर, बघेरा, सांभर, गुरिल, बारहसिंगा, चीतल, भालू बंदर, आदि है। इस भूभाग में जम्मु–कश्मीर प्रांत, हिमाचल प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल के नीचे के भूभाग हैं ।

(III)हिमालय का वृक्ष विहीन क्षेत्र – इस भूभाग में ऊचांई वाला क्षेत्र आता है । अत: यहां पर वृक्ष की उपलब्धता अत्यधिक कम होती है । अत्यधिक शीत के कारण यह अधिकतर हिमाच्छादित रहता है । यहां पाये जाने वाली वन्य जीव सम्पदा में कस्तूरी मृग, मोनाल पक्षी, हिम तेंदुआ, भालू जंगली बकरा, आदि है ।

(2) उत्तर के मैदानी क्षेत्र -- जब इस भूभाग का विभाजन किया गया था तब वहां बहुत वन थे किन्तु आज नहीं के बराबर है । यहाँ पर पाये जाने वाले जीव शेर, हाथी, तेंदुआ, नीलगाय भेड़िया, लकड़बग्घा, चीतल, आदि है । यह प्रदेश अत्यन्त ही सुन्दर है ।

(3) राजस्थान का मरूस्थल -- यह भारतीय पश्चिमी क्षेत्र है जहां वर्षा अत्यधिक कम व सर्दियों में अधिक शीत व गर्मीयों में अधिक तापमान एवं बालु रेत मिलती है । यही वन्य जीवों में नीलगाय, काले हिरण, चीतल, भेड़िया, लोमड़ी, विभिन्न प्रकार के सर्प, छिपकलियां, आदि मिलते है ।

(4) पठारी क्षेत्र -- भारत के निचले प्रायद्विपीय भूभाग को इस क्षेत्र में रखा गया है । यह भारत का दक्षिण पश्चिम पठारी क्षेत्र है । इस भूभाग पर हाथी, शेर, बंदर, लंगर, हिरण इत्यादि मिलते है।

(5) मालाबार तटीय क्षेत्र -- यहां भारतीय दक्षिण पश्चिमी अधिक नमी वाले क्षेत्र है, इसमें केरल से महाराष्ट्र तक के क्षेत्र सम्मिलित है । यह समुद्री तट पर अधिक लवणता वाले प्रदेश है । इस भूभाग पर हिरण, लंगर, हाथी, नेवला, शेर, आदि पाये जाते है ।

(6) नीलगिरी क्षेत्र -- यह भारत का निम्न पर्वतमाला वाला क्षेत्र है । यहाँ पर नीलगिरी पर्वत माला है । यहां पर उष्ण आर्द्र परिस्थितियां है । यहाँ पर हरिण के अतिरिक्त विभिन्न प्रजातियों के पक्षी मिलते है तथा कुछ स्थानों पर हाथी भी पाये जाते है किन्तु शेर आदि नहीं पाये जाते है ।

बोध प्रश्न - 3

मरुक्षेत्र में पाये जाने वाले जन्तुओ के नाम लिखिए ।

उत्तर: .....

.....

10.4 राजस्थान के जैव भौगोलिक क्षेत्र(Biogeographical regions of Rajasthan)

राजस्थान की वन–सम्पदा न केवल आज अपितु विगत अतीत से ही आकर्षण का केन्द्र रही है । यहां की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, भूगर्भीय संरचना, धरातल मिट्टी तथा जलवायु, आदि इसके प्रमुख कारण रहे है । राजस्थान के वन एवं वनस्पति तथा पादप प्रजाति संगठन के विसात अध्ययन हेतु भूआकृतिक आधार पर सम्पूर्ण राज्य को निम्न तीन प्राकृतिक क्षेत्रों में बांटा जा सकता है ।

10.4.1 मरूस्थलीय क्षेत्र (Desert region)

राज्य का पश्चिमी शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र जिसे राजस्थान मरूभूमि या थार का मरूस्थल भी कहा जाता है, लगभग 1,96,150 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला हुआ है । अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के पश्चिम में अवस्थित यह रेगिस्तान शेष भारत से भिन्न है । इसकी प्रमुख विशेषताऐ है – कम वर्षा (150–200 मिलीमीटर), अधिक तापमान (45-47°C), तेज हवाऐं (70-80 किलोमीटर प्रति घण्टा), तेज धूप, कम आर्द्रता तथा रेतीले मैदानों के बीच स्थिर, अर्धस्थिर तथा अस्थिर रेत के टीले की परिवर्तनशील आकृति एवं संरचना प्रकृति के अद्‌वितीय शिल्प का अनुपम उदाहरण है । शुष्क मरूभूमि में पायी जाने वाली वनस्पति अत्यन्त विरल एवं छितराई हुयी दृष्टिगोचर होती है तथा रूद्ध वृद्धि (stunted), कंटीली व काष्ठीय झाड़ियों एवं बहुवर्षीय शाकीय प्रजातियों द्‌वारा निरूपित होती है । वृक्ष अत्यन्त विरल एवं कम संख्या में दिखाई देता है, लेकिन इन सभी प्रजातियों में शुष्कता–प्रतिरोधी क्षमता उल्लेखनीय होती है । उनका वातावरण में वनस्पति की अपनी विशेषताऐ है, जो अन्यत्र नहीं पायी जाती है । इन विशेषताओं के कारण ये पौधे अपने आपको तापक्रम के उतार–चढ़ाव एवं कम जल वाली रेतीली भूमि में विकसित होने के लिए अनुकूल बना लेते है ।

(i) बालुका स्तूपों की वनस्पति तथा पादप समुदाय (Vegetation and plant communities of sand dues) – रेतीले टीले एवं इनसे सटे हुए क्षेत्र मरूभूमि को सर्वाधिक सामान्य आवास स्थलियां (habitats) कही जा सकती है, जिनमें विभिन्न प्रकार की पादप प्रजातियां पायी जाती है । विभिन्न प्रकार के बालुका सदूपों, जैसे – स्थिर, आंशिक रूप से गतिमान एवं गतिमान रेतीले टीलों पर पाई जाने वाली वृक्ष एवं क्षुप प्रजातियां है अरनी, फोग लोना एवं मोराली इत्यादि क्षुप प्रजातियां, जबकि कुछ रेतीले टीलों पर कुमटिया खेजड़ी, एवं पीलू जैसे वृक्ष पाये जाते है । रेतीले टीलों पर पाई जाने वाली प्रमुख बहुवर्षीय शाकीय प्रजातियों में बुई तुम्बा (इण्डायण), सिणिया, हिरन चाबा, मेहफूली, खींप, सरपुंखा, गोखरू, आदि है ।

(ii) रेतीले मैदानों में पाये जाने वाले पादप समुदाय (Plant communities of sandy plains) – मरूभूमि का अधिकांश भाग रेतीले मैदानों एवं ऊंचे–नीचे टीलों के द्‌वारा निर्मित है, अत: यहां

रेतीले मैदानों में मृदा एवं जैविक कारकों के अनुसार अलग–अलग स्थानों पर विभिन्न प्रकार के पादप समुदाय पाये जाते है, जैसे – खेजड़ी-कैर, हिंगोट–बोरड़ी, बोरड़ी–फोग बबूल–पीलू-खेजड़ी, बबूल-हिगोट–कैर कैर–ककेड़ा-अरनी, खींप–सरपुंखा, इत्यादि । उपर्युक्त पादप समुदाय प्रजातियों में शुष्क एवं विषम फरइस्थितियों के प्रतिरोध की पर्याप्त क्षमता होती है ।

(iii) कंकड़ीले / चट्टानी मैदान (Gravelly rocky plains) – थार मरूस्थल के बहुत बड़े हिस्से में कंकड़ युक्त चटियल मैदान भी पाये जाते है । कंकड़ों का निर्माण सतत् वायु प्रक्रिया के द्वारा इन क्षेत्रों में होता है । ऐसे आवास स्थलों में उगने वाली प्रमुख पादप प्रजातियां है – पीली हुलहुल़ धमासा, राम बुई, खींप, झोझर, ऊंट. कटाला, इत्यादि । यही नहीं, इन कंकड़ीले मरूस्थलीय मैदानों में कुछ पादप प्रजातियां श्यान स्वभाव (prostrate habit) एवं ताराकार आकृति प्रदर्शित करती है तथा इनकी शाखाऐं भूमि पर फैली रहती है । इनमें दूधली, चिड़ियों का खेत, धौलफूली एवं गोखरू प्रमुख है । वृक्ष एवं क्षुप प्रजातियों में खेजड़ी, पीलू आकड़ा कैर, झाड़ी बेर एवं ककेड़ा का उल्लेख किया जा सकता है । कुछ विशेष स्थानों पर घास–लेग्यूम पादप समुदाय भी पाये जाते है । घास प्रजातियों में मिलेनोसेक्रिस ओरोपिटियम, ट्रेगस, इत्यादि उल्लेखनीय है ।

(iv) खारी मिट्टी के कछार (Saline tracts) – सम्पूर्ण मरूभूमि में अनेक स्थानों पर लवणयुक्त मृदा या खारी मिट्टी के लम्बे–चौड़े मैदान भी देखे जा सकते है । साथ ही डीडवाना, सांभर एवं कुचामन में खारे पानी की झीलें भी मौजूद है । जबकि पचपदरा, थोभ बाप, कापरड़ा तालछापर, लूनकरणसर इत्यादि क्षेत्रों में नमक के बेसिन्स (basins) पाये जाते है । इन लवणीय क्षेत्रों में मुख्य रूप से लवणोद्भिद पादप पाये जाते है, जैसे – स्यूडा फ्रूटिकोसा हेलोजाइलोन रिकरवम साल्मोला बेरियोसोमा क्रेसा क्रिटिका ऐल्युरोप्स लैगोपोइडिस इत्यादि ।

बोध प्रश्न - 4

राजस्थान में किन--किन स्थानों पर लवणोद्भिद पादप पाए जाते है? किन्हीं पांच लवणोद्भिदों के उदाहरण लिखिए ।

उत्तर: .....

.....

(v) जलोद्भिद एवं उभयचारी पादप (Aquatic and amphibious plants) – पश्चिमी राजस्थान में अनेक जलाशय, तालाब एवं जलीय आवास भी उपस्थित है । इन प्राकृतिक आवासों में अनेक जलीय एवं उभयचारी पादप प्रजातियां, जैसे – हाइड्रिला (सेवार), लेम्ना (dath), नाजास, पोटामोजिटोन स्पाईरोडिला इत्यादि पायी जाती है । इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षो में विदेशी जलीय खरपतवार जलकुम्भी (आइकोरनिया क्रेसिपिस) का उद्भव भी मरू जलाशयों में देखा जा सकता है ।

10.4.2 अरावली पर्वत(Aravali ranges)

यह राजस्थान का दूसरा विलक्षण भूआकृतिक क्षेत्र है । अरावली पर्वत श्रृंखलाऐं गुजरात में चम्पारन से प्रारम्भ होकर उत्तर–पूर्वी दिषा में 692 किमी की दूरी तय करके दिल्ली के पास समाप्त होती है । राजस्थान में ये दक्षिणी–पश्चिमी दिशा में गुजरात के खेडू ब्रहमाय क्षेत्र से प्रविष्ट होती है

तथा 550 किमी की दूरी तक उत्तर-पूर्व में खेतड़ी तक फैली हुई है । इन पर्वत श्रृंखलाओं की समुद्र तल से ऊँचाई दक्षिण से उत्तर की तरफ धीरे-धीरे घटती जाती है । विशेष बात यह है कि जैसे–जैसे ऊंचाई कम होती है तो वातावरण तथा भूमि में परिवर्तन के कारण वनस्पति भी बदल जाती है । खेतड़ी में जहां ऊँचाई 792 मीटर है, वनस्पति मुख्य रूप से कंटीले वृक्षों एवं झाड़ियों के रूप में परिलक्षित होती है । यहां के प्रमुख वृक्ष एवं क्षुप प्रजातियां है– रोंइन कुमटिया हिंगोट कैर, थोर, गंगेरन अडूसा, आकड़ा अरनी, इत्यादि ।

यदि बीजापुर वन क्षेत्र (1000 मीटर) जिला पाली से आगे की पहाड़ियों की वनस्पति का अध्ययन करें तो यहां मिश्रित पर्णपती वनों की बहुलता दिखाई देती है तथा इन जंगलों में प्रमुख वृक्ष प्रजाति धावड़ा है, एवं इसके साथ बेल, झीरा सालर, खांखरा (ढाक), अमलतास, तेन्दू कलम दूधी, इत्यादि वृक्ष सहयोगी प्रजातियों के रूप में पाये जाते है ।

राजस्थान की दक्षिणी–पश्चिमी सीमा पर अवस्थित माउण्ट आबू (ऊंचाई 1727 मीटर) न केवल अरावली पर्वत श्रृंखलाओं, अपितु पश्चिमी हिमालय व नीलगिरी पर्वत के बीच के क्षेत्र में सर्वाधिक ऊंचाई वाली पर्वत चोटी है । यहां विभिन्न ऊंचाइयों के अनुरूप पाई जाने वाली वनस्पति अलग-अलग प्रारूपों में विभेदित है, हालांकि कुछ स्थानों पर दो अलग–अलग क्षेत्र जहां पृथक होते हैं, वहां मिश्रित प्रकार की पादप प्रजातियां भी पाई जाती है ।

माउण्ट आबू में 1300 मीटर की ऊंचाई तक लगभग वही पौधे पाये जाते है, जो कि बीजापुर क्षेत्र की वनस्पति निर्मित करते है, परन्तु इससे अधिक ऊंचाई की और बढ़ने पर पर्णपाती वन (deciduous forests), अर्ध उपोष्ण सदापर्णी वनों में परिवर्तित होते प्रतीत होते है । जिनमें मुख्य रूप से सालर, बरना, बैची, बिछुआ, चमेली, गुरजन, आम, जंगली गुलाब, जामुन, कड़ाया इत्यादि पादप प्रजातियाँ दृष्टिगोचर होती है । विभिन्न प्रकार के फर्नर, जैसे– ओफियोग्लोसम एथाइरियम, इत्यादि भी यहां की वनस्पति का प्रमुख घटक है ।

अनेक पादप प्रजातियां माउण्ट आबू में ऐसी भी पाई जाती है जो क्षेत्र विशेषी (endemic) वितरण प्रदर्शित करती है व यहां के अलावा विश्व में कहीं नहीं पाई जाती, ये है – बोन्नाया ब्रेक्टियोइडिस, डिक्लिप्टेरा आबूऐंसिस, ओल्डेनलेंडिया क्लाउसा, स्ट्रोबाइलेंथस हालबरगोई हाइड्रिला पोलीस्पर्मा एवं वेरोनिका एनागेलिस वेरा ब्रेक्टियोइडिस, इत्यादि । विशेष बात यह है कि ये पौधे बहुत कम संख्या में उपलब्ध है तथा ऐसा प्रतीत होता है, कि इनमें से कुछ पादप प्रजातियां तो विलुप्ति के कगार पर है । इसका सबसे बड़ा कारण माउण्ट आबू में विकास के नाम पर पिछले 25–30 वर्षो में वनों के विनाश के रूप में उभर कर आया है ।

10.4.3 अरावली से पूर्व का क्षेत्र (The area in the east of Aravali)

अरावली पर्वत श्रृंखलाओं से पूर्व दिशा में स्थित भूभाग, राज्य का तीसरा महत्वपूर्ण भूआकृतिक क्षेत्र अजमेर से लेकर अरावली श्रृंखलाओं के समानान्तर बढ़ते हुए, दक्षिणी एवं दक्षिणी–पूर्वी भूभाग में फैला हुआ है । यह भूभाग समतल अथवा पठार जिसमें अरावली की निचली पहाड़ियां जाल–सा बनाती है । यहां की वनस्पति के विस्तृत अध्ययन हेतु इसे निम्न छः उपक्षेत्रों में विभेदित किया जा सकता है, ये है.

(i) भोरात पठार (Bhorat Plateau)– सिरोही जिले का पूर्वी भाग, अधिकांश उदयपुर जिला एवं सम्पूर्ण डूंगरपुर जिला इसी क्षेत्र में आते है । उदयपुर के उत्तर–पश्चिम में कुम्भलगढ़ एवं गोगुन्दा के बीच यहां अरावली शाखा की पहाड़ियां फैली हुई है । इस भूभाग की समुद्रतल से औसत ऊंचाई लगभग 1225 मीटर है । अत: इन पहाड़ियों पर मिश्रित पर्णपाती वन पाये जाते है, जिनमें विभिन्न ऊंचाइयों के अनुसार क्षेत्रीकरण (zonation) परिलक्षित होता है । अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्र की वनस्पति में प्रमुख वृक्ष प्रजाति सालर है एवं इसके साथ सहयोगी प्रजाति के रूप में धावड़ा, गुरजन एवं कड़ाया के वृक्ष पाये जाते है ।

(ii) बनास बेसिन (Banas basin)– उदयपुर जिले का पूर्वी भाग, पश्चिमी चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा, पश्चिमी अजमेर, टोंक, जयपुर, पश्चिमी सवाई माधोपुर एवं अलवर जिले का दक्षिणी भाग मिलकर बनास बेसिन क्षेत्र कहलाता है । यहां देवगढ़ के पास पहाड़ियों की अधिकतम ऊंचाई 582 मीटर है तथा यहां की वनस्पति में मुख्यतया: मिश्रित पर्णपाती वन पाये जाते है, जिनमें प्रमुख वृक्ष प्रजाति धावड़ा दृष्टिगोचर होती है तथा इसके साथ कुमटा, झीरा सालर, कंटार, अमलतास, कुनाली तेन्दू गुरजन, दुधी, इत्यादि सहयोगी प्रजातियां पायी जाती है ।

(iii) छप्पन पठार (Chhappan Plateau)– उदयपुर जिले का दक्षिणी–पूर्वी भाग, दक्षिण चित्तौड़गढ एवं समस्त बांसवाड़ा जिला इस पठारी भूभाग में अवस्थित है । यहां पठारी क्षेत्र की समुद्रतल से अधिकतम ऊंचाई 350 मीटर है, जबकि पहाड़ियों की ऊंचाई 700 मीटर से अधिक नहीं है । इस क्षेत्र में मुख्यतया: पर्णपाती वन पाये जाते है जिनमें सागवान प्रमुख वृक्ष प्रजाति है । कुछ गौण परिवर्तनों को छोड़कर ऊंचाई का वानस्पतिक वितरण पर विशेष प्रभाव परिलक्षित नहीं होता, केवल अधिक ऊंचाई वाले इलाकों में सागवान के स्थान पर अन्य वृक्ष प्रजातियां जैसे झीरा, सालर, आंवला कड़ाया इत्यादि पाये जाते है । पहाड़ों के ढलानों पर सघन वन मिलते है, जिनमें सागवान के अतिरिक्त हल्दू काली सिरस, महुवा, कलम, अर्जुन, बांस एवं दुधी पाये जाते है । पहाड़ियों के निचाई वाले क्षेत्रों में. हारसिंगार भी सर्वाधिक पाया जाता है । बाहरी क्षेत्रों में सागवान के शुष्क पर्णपाती वन, कटीले वृक्ष समुदाय द्वारा प्रतिस्थापित हो जाते है, जिनमें सागवान के बहुशाखित टेढ़े–मेढ़े ठूंठ, रोंझ ढाक एवं इन्द्राजो अन्य प्रजातियों के साथ पाये जाते है ।

(iv) दक्षिण पठार (Deccan Plateau) - राजस्थान का दक्षिणी–पूर्वी भाग जिसमे, कोटा, बूंदी झालावाड़ तथा बारा जिले सम्मिलित है, दक्षिणी पठार कहलाता है । इस क्षेत्र में विन्यायन श्रृंखलाओं की शाखाऐं (मुकुन्दरा पर्वत श्रृंखलाओं के रूप में) तथा बूंदी के पास अरावली श्रृंखलाओं की शाखाऐं भी उपस्थित है । पहाड़ों पर उगने वाले वन पर्णपाती प्रकार के है जिनमें धौंकड़ा आधार पर से चोटियों तक प्रभावी वृक्ष प्रजाति के रूप में दृष्टिणेचर होता है । इसके अतिरिक्त हस्कू बेल, सालर, अचार, अमलतास, सेजा बांस, आदि निचले भाग में अधिक पाये जाते है । मध्य भाग में कत्था, गुरजन, कड़ाया इत्यादि वृक्ष प्रजातियां पायी जाती है । बाहरी परिक्षेत्रों में रोंझन जैसी वृक्ष प्रजातियां देखी जा सकती है ।

(v) विंध्याचल की कगार भूमि (Vindhyan scrapland) - ये बनास और चम्बल नदी के बीच का क्षेत्र है, जिसमें भरतपुर, धौलपुर एवं सवाई माधोपुर जिले सम्मिलित है । इस क्षेत्र का अधिकतर

भाग उपजाऊ तथा कृषि योग्य है जबकि कुछ भाग बीहड़, कन्दरायुक्त तथा बंजर व उपेक्षित है । पेड़ तथा झाड़ियां प्राय: दूर–दूर है । सवाईमाधोपुर जिले का अधिकांश भाग मिश्रित पर्णपाती वनों से ढका है । यहां हल्दू, मीठा नीम, कलम, जंगल जलेबी, खजूर, आदि पर बसेरा बनाये प्रवासी पक्षी अत्यन्त मनोहारी दृश्य प्रस्तुत करते है ।

(vi) उत्तर–पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र (North-east hilly regions)- यह क्षेत्र अरावली पर्वत की उत्तर–दक्षिण दिशा में फैली लगभग समानान्तर श्रृंखलाओं से बना है तथा अलवर जिले में है । यहां पहाड़ों पर उगे मिश्रित पर्णपाती वन स्पष्टत: तीन क्षेत्रों में बांटे जा सकते है । सबसे ऊपर सालर, मध्य क्षेत्र में धावड़ा तथा निचले क्षेत्रों में बबूल, कुनाली एवं पलाश वृक्ष प्रमुख रूप से मिलते है । सबसे घने वन सरिस्का में है, जहां बाघ परियोजना स्थापित की गयी है । इस क्षेत्र में सांभर, चीतल, नीलगाय, चौसिंगा, चिन्कारा, जंगली बिल्ली तथा सूअर, सियार, लंगर, आदि पशु भी स्वतन्त्र रूप से विचरण करते देखे जा सकते है ।

बोध प्रश्न - 5

अरावली श्रृखला के पूर्व क्षेत्र को किन भूभागों में विभक्त किया गया है ?

उत्तर: .....

.....

राजस्थान की वनस्पति का अध्ययन करते समय ऐसा प्रतीत होता है कि यहां की वन–सम्पदा बड़ी तेजी से नष्ट हो रही है । अधिकांश पहाड़ियां चटियल एवं वीरान हो चुकी है । वर्षा के पानी के अत्यधिक कटाव के कारण अच्छी व समतल भूमि बीहड़ लगती है । बांसवाड़ा क्षेत्र जो पहले बांस के वनों के लिए प्रसिद्ध था, अब बासविहीन हो गया है । अधिकांश स्थानों पर मौलिक वनस्पति नष्ट होती जा रही है तथा पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है । राज्य की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण तथा आदिवासी है जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए वनस्पति पर निर्भर है । खेती एवं ईधन के लिए वनों की निरन्तर कटाई के कारण इस क्षेत्र का प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ता जा रहा है । अगर इसी तरह पर्यावरण प्रदूषित होता रहा, तो सम्भवत: वह दिन दूर नहीं, जब हम वन सम्पदा के लिए न केवल तरस जायेंगे अपितु पहले से मौजूद रेगिस्तान को हरा–भरा करने की हमारी योजनाऐं भी पूर्णत: ध्वस्त हो जाएगी । अत: वनों का विकास एवं संरक्षण तथा पर्यावरण सुरक्षा आज की सबसे बड़ी समस्या एवं आवश्यकता है जिसके समाधान के लिए सरकार, पर्यावरण–प्रेमी, स्वयंसेवी संस्थाओं एवं सामान्य जन को युद्ध स्तर पर प्रयास करने होंगे अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब प्रदूषण रूपी भस्मासुर हमारी हरी–भरी धरती को तहस–नहस कर देगा । अब भी समय रहते इसका निदान नहीं किया गया तो हम स्वयं ही इस विनाश के लिए उत्तरदायी होगें ।

10.5 राजस्थान की संकटग्रस्त व क्षेत्र विशेषी जतियां (Endangered and endemic species of Rajasthan)

10.5.1 संकटग्रस्त जातियां (Endangered species)

अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (IUCN; International Union for Conservation of Natural Resources) ने 1988 में संकटग्रस्त जातियों को परिभाषित किया था । यह ऐसी जातियां है, जिनको

यदि संरक्षित नहीं किया गया तो वे भविष्य में विलुपा हो जायेगी । अधिकांश संकटग्रस्त पादप तथा जीव जाति विकासशील देशों में है, जहां जैवविविधता सर्वाधिक है किन्तु अशिक्षित होने के कारण वह अपनी जैव संपदा का मूल्य नहीं समझते है तथा उसे विकसित देशों को निर्यात कर देते है । इस स्थिती से उभरने के लिये तथा विकासशील देशों की जैव संपदा नष्ट ना हो, इसका अनावश्यक दोहन ना हो, पादप व जन्तु धरती से विलुप्त नहीं हो जाये, इन सभी बातों को ध्यान में रख कर IUCN ने काफी प्रयासों के पश्चात 1973 में संकटग्रस्त जातियों को बचाने के लिये एक कन्वेंशन किया, जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर नियंत्रण लगाना था । यह CITES (Convention on International Trade in Endangered Species of World Flora and Fauna) के नाम से प्रचलित हुआ । 1975 में यह लागू किया गया जिस पर केवल 10 देशों ने हस्ताक्षर किये थे, तत्पश्चात् 1992 तक भारत ने व 192 देशों ने इस पर हस्ताक्षर किए ।

IUCN के निर्देष पर अधीनस्त संस्थान सरवाइवल सर्विस कमीशन (survival service commission), ने काफी वर्षो तक पूरे विश्व में कार्य करने के बाद एक पुस्तक का प्रकाशन किया जिसे रेड डेटा बुक (लाल किताब)का नाम दिया गया । इसी प्रकार की लाल पुस्तक कई देश, जैसे– ब्रिटेन, भारत, न्यूजीलैंड, आदि अपने देश के लोरा व फॉना का भी प्रकाशन करते है, जबकि IUCN विश्व स्तर पर इस पुस्तक का प्रकाशन करती है । जनवरी 1972 को प्रथम बार इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ था उसके बाद इसके चार संस्करण ओर आ गये है । इस पुस्तक में (i) लुप्त हो रही जातियां, (ii) उनके आवास, (iii) जीवों की संख्या में कमी, एवं (iv) वर्तमान में विश्व में उपस्थित सभी पादप व जन्तु जातियों की संख्या का वर्णन किया गया है । इस पुस्तक में कई रंगों के पृष्ठों पर जानकारी दी गई है । रंगीन पृष्ठों का अभिप्राय निम्न है :

(i) संकटग्रस्त लुपाप्राय: या लुप्त हो रही जातियां जिनका ध्यान रखना आवश्यक है, उनकी जानकारी लाल पृष्ठों पर दी जाती है,

(ii) क्षेत्र विशेषी प्रजातियां जो केवल कुछ ही स्थानों तक सीमित है व इनके बारे में यह आशंका है कि यह समाप्त नहीं हो जाये यह सफेद पृष्ठों पर अंकित है

(iii) लुप्तप्राय: जातियां जिनकी संख्या तेजी से कम हो रही है, उनका वर्णन पीले पृष्ठों पर है

(iv) अप्राप्य व दुर्लभ ऐसी जातियां जिनका विवरण उपलब्ध नहीं है, किन्तु यह आशंका है कि वह कम हो रही है उनका वर्णन भूरे पृष्ठों पर लिखा है, एवं

(v) ऐसी प्रजातियां जिन विशेष स्थानों पर बचाकर उनकी संख्या बढ़ाई जा रही है उनका वर्णन हरे पृष्ठों पर लिखा है ।

IUCN (1988) ने निम्न पांच जातियों की संरक्षण श्रेणियां निर्धारित की, जो इस प्रकार है :

(i) विलुप्त जातियां (Extinct species) – ऐसी जातियां जो अब इस संसार से गायब हो चुकी है व जीवित अवस्था में नही मिलती, विलुप्त कहलाती है, जैसे डायनोसोर तथा रायनिया जो टेरिडोफिटिक पादप था ।

(ii) संकटग्रस्त जातियां (Endangered species) – यह ऐसी जतियां है जिनका यदि हमने संरक्षित रखने के इन्तजाम नहीं किये तो निकट भविष्य में विलुप्त होने के निकट है, जैसे –जिन्गो बाइलोबा।

(iii) सुभेद्य (Vulnerable species) – यह वे जातियां है, जिनके शीघ्र ही संकटग्रस्त श्रेणी में आने की संभावना है तथा इनकी संख्या में निरन्तर ह्रास होता जा रहा है ।

(iv) दुर्लभ जातियां (Rare species) – यह ऐसी जातियां है, जो प्राय: सीमित भौगोलिक श्रेणियो में अथवा अत्यधिक कम जनसंख्या के कारण एकल सदस्यों के रूप में रह गई है ।

(v) अपर्याप्त ज्ञात जातियां (Insufficient known) – यह ऐसी जातियां है, जो पृथ्वी पर उपस्थित तो है, किन्तु इनके वितरण के बारे में अधिक पता नहीं है ।

बोध प्रश्न - 6

राजस्थान की संकटग्रस्त जतियों के पाँच उदाहरण लिखिए।

उत्तर: .....

.....

10.5.2 क्षेत्र विशेषी जातियां (Endemic species)

जीवमण्डल में जब कोई जाति किसी विशेष कारण से किसी एक ही सीमित क्षेत्र में मिलती है, जैसे –द्वीप, नदी, वन, पहाड़ पर ही, तो उस जाति को क्षेत्र विशेषी जाति कहते है । भारत में पूर्वी हिमालय में लगभग 5000 क्षेत्र विशेष जातियां मिलती है ।उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में जैवविविधता बहुत अधिक मिलती है एवं वन क्षेत्रों में ऐसी जातियां की संख्या भी अधिक पायी जाती है जो केवल उन्ही क्षेत्रों में सीमित रहती है । जिस गति से वनों को काट कर आवास, कारखानें, सड़कें, इत्यादि बनाई जा रही है, उससे वैज्ञानिकों को उपरोक्त जातियां जो आज तो वनों में है, किन्तु वन कटने से लुप्त हो जायेंगी, इसका खतरा महसूस हुआ और फिर पूरे विश्व में उन स्थलों को विभिन्न संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से सुरक्षित करने के प्रयास किये जाने लगे ।

राजस्थान में लगभग 41 एन्ज्योस्पमर्स एवं 1 जिम्नोस्पर्म पादप संकटग्रस्त है । राजस्थान के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र विशेषी / स्थानिक (A) एवं संकटग्रस्त (B) पादपों की सूचि निम्न है :

क्रं.सं.	वानस्पतिक नाम	सामान्य नाम	कुल	वितरण क्षेत्र	संवर्ग
1.	एलाइसीकारपस मोनीलीफर वर वेनोसस	जुहीगास	फेबयेसी	उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान	A
2.	एनोजीसयस रोटनसीफोलिया	धावड़ों / इन्द्रोको	कोम्ब्रेटीएसी	पश्चिमी राजस्थान	A&B
3.	बरलेरिया प्राइनोटिस वार. डाइकेन्था	बज्रदंती	एकेन्थसी	पश्चिमी राजस्थान	A
4.	केलीगोनम पोलीगोनोइडिस	फोग	पोलीगोनेसी	राजस्थान मरुस्थल	B
5.	सेन्क्रस पीरुराई	लम्बायों भुरट	पोएसी	पश्चिमी राजस्थान	A
6.	कोमीफेरा वाइटाई	गुगल	बुरसेरेसी	पश्चिमी राजस्थान के पहाडी इलाके	A&B
7.	कोंन्वोलवुलस	कालंद	कोंन्वोलावुलेसी	माउण्ट आबू	A

	सिंन्डिकस				
8.	एफीड्रा फोलीऐटा	अन्धो- खींप लाना	नीटेसी (जुमनोस्पमर्स)	राजस्थान मरुस्थल	B
9.	फारसेटिया मेकरेन्था	मोटियो -हिरण चाबा	ब्रेसीकेसी	राजस्थान मरुस्थल	A
10.	गाइसेकिया फारनेसियोड़ीसा	मोरन्ग / सुरेली	आइजोएसी	पश्चिमी राजस्थान	A
11.	लेप्टाडिनिया रेटील्युलेटा	जीवंती	एस्क्लिपीड़ियेसी	राजस्थान मरुस्थल	B
12.	लेसीयूरस सिंन्डिकस	सेवन घास	पोएसी	जैसलमेर	B
13.	रोजा इनवोलकुरेटा	गुलाब	रोजेसी	माउण्ट आबू	B
14.	टेकोमेला अण्डुलाटा	रोहिड़ा (मारवाड़ टीक)	बिगनोनीयेसी	राजस्थान महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्य	B
15.	टेफरोसिया फलसीफोरमिस	राटी बियानी	फेबयेसी	जैसलमेर	A
16.	ट्रीबुलस राजस्थानेनसिस	-	जयगोफाइलेसी	जैसलमेर एवं जोधपुर के पहाड़ी इलाके	B
17.	विधानीया कोगुलेंस	पनीरबंध	सोलोनेसी	अजमेर जैसलमेर एवं जोधपुर	B
18.	जीजिपस ट्रनकाटा	बोटी	रेमनेसी	पश्चिमी राजस्थान (कायलना जोधपुर)	A

10.6 सारांश(Summary)

जैव भौगोलिकी के अन्तर्गत पादप तथा जन्तुओं के भूगर्भीय वितरण का अध्ययन किया जाता है । भारत को नौ जैव भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है : पश्चिमी हिमालय, पूर्वी हिमालय, इण्डस मैदान, गंगा के मैदानी क्षेत्र, मध्य भारत, पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट, आसाम एवं अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह । इसी प्रकार राजस्थान को भी तीन जैवभौगोलिक क्षेत्रों में बांटा गया है : मरूस्थलीय क्षेत्र, अरावली पर्वत व अरावली से पूर्व का क्षेत्र । इन क्षेत्रों में पायी जाने वाली ऐसी पादप जातियां जिन्हें संरक्षण प्रदान नहीं किया गया तो वे विलुप्त हो जाएगी, इन्हें संकटग्रस्त जातियां कहते है तथा वे पादप जातियां जो किसी एक ही सीमित क्षेत्र में मिलती है उन्हें क्षेत्र विशेषी जातियां कहते है।

10.7 संदर्भ ग्रन्थ (Literature cited)

1. शर्मा, त्रिवेदी एवं धनखड़ 2005 : पारिस्थितिकी एवं पादपों की उपयोगिता, रमेश बुक डिपो, जयपुर।
2. भाटिया, कोहली एवं स्वरूप 2000 : पर्यावरणीय जैविकी के विभिन्न आयाम, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।

3. वर्मा, गुप्ता एवं यादव 2001 : पादप पारिस्थितिकी तथा पादप भूगोल, अल्का पब्लिएकेशंस, अजमेर ।
4. शर्मा, सिंघल एवं गुर्जर 2006 : पर्यावरण शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर ।
5. Sharma, P.D.2006 : Ecology and Environment, Rastogi Publications, Meerut.
6. त्यागी, सक्सेना एवं जैन 2005: पर्यावरण अध्ययन, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर ।
7. राठौड़, चास्टा एवं पोटलिया 2005 : पर्यावरण अध्ययन के मूल तत्व, यश पब्लिशिंग हाऊस, बीकानेर ।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. पश्चिमी हिमालय में अधिक ऊंचाई पर भोजपत्र, चीड़ (चिलगोजा), बांस, ओक, देवदार, क्रिसमस ट्री, केसर तथा कम ऊँचाई पर टीक, साल, ढाक, गूलर, कत्था, शीशम, अर्जुन, सेमल, जामुन, आदि वनस्पतियां पायी जाती है ।
2. इण्डस मैदान पांच प्रमुख भूभागों से निर्मित है : (i) पश्चिमी राजस्थान एवं अरावली पर्वत श्रृंखलायें, (ii) कच्छ की खाड़ी: (iii) उत्तरी गुजरात, (iv) हरियाणा के मैदानी भाग तथा पंजाब, एवं (v) थार मरूस्थल ।
3. हरिण, चीतल, साम्मर, नीलगाय, विभिन्न जाति के सर्प, छिपकलियां आदि ।
4. राजस्थान में डीडवाना, सांभर एवं कुचामन में खारे पानी की झीलें, जबकि पचपदरा, थोभ बाप, कापरड़ा तालछापर, लूनकरणसर, इत्यादि क्षेत्रों में नमक के बेसिन्स पाये जाते है । इन लवणीय क्षेत्रों में मुख्य रूप से लवणोद्भिद पादप पाये जाते है, जैसे – स्यूड्रा फ्रूटिकोसा, हेलोजाइलोन रिकरवम ,साल्सोला बेरियोसोमा क्रेसा क्रिटिका ऐल्युरोप्स लैगोपोइडिस इत्यादि ।
5. भोरात पठार, (ii) बनास बेसिन, (iii) छप्पन पठार, (iv) दक्षिण पठार, (v) विंध्याचल की कगार भूमि, एवं (vi) उत्तर–पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र ।
6. केलीगोनम पोलीगोनोइडिस, कोमीफोरा वाइटाई, लेसीयूरस सिन्दिकस, रोजा इनवोलकूरेटा, एवं टेकोमेला अण्डुलाटा

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत के जैवभौगोलिक क्षेत्रों की व्याख्या किजिए ।
2. पश्चिमी व पूर्वी हिमालय में पायी जाने वाली पादप जातियों के नाम लिखिये ?
3. क्षेत्र विशेष जातियों से क्या अभिप्राय है ? उदाहरण दीजिए ।
4. IUCN द्वारा प्रकाशित रंगीन पृष्ठों वाली पुस्तक से आप क्या समझते है ?
5. IUCN द्वारा प्रतिपादित जातियों की संरक्षण श्रेणियां बताइये ।

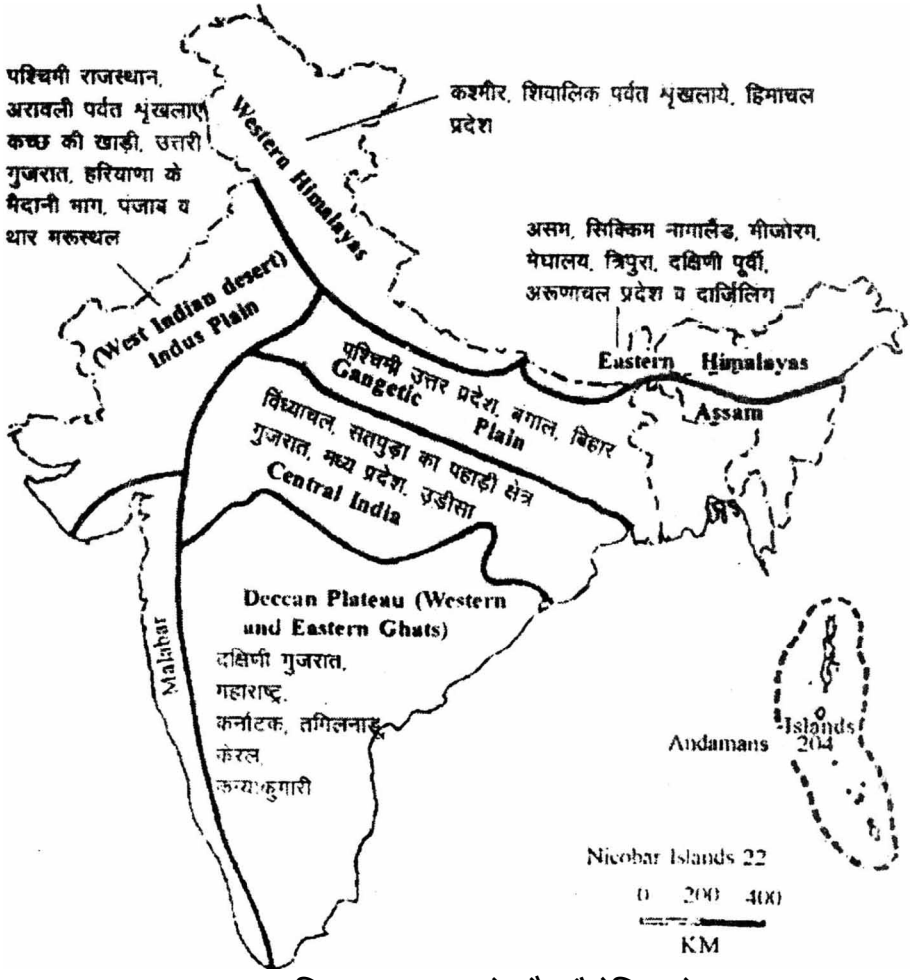

चित्र 10.1 भारत के जैवभौगोलिक क्षेत्र

इकाई – 11

जैवविविधता

Biodiversity

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 आनुवांशिक विविधता

11.3 जातीय विविधता

11.4 पारिस्थितिक तन्त्र विविधता

11.5 जैवविविधता का महत्व

11.6 हॉट स्पोट्स (तप्त स्थल)

11.6.1 भारत के तप्त स्थल

11.7 जैव विविधता को संकट

11.8 राजस्थान मरूस्थल की जैवविविधता

11.8.1 जातीय विविधता

11.8.2 आनुवांशिक विविधता

11.8.3 पारिस्थितिकी तंत्र विविधता

11.9 जैव विविधता का संरक्षण

11.10 सारांश

11.11 संदर्भ ग्रन्थ

11.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

11. उद्देश्य (Objectives)

इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे कि -

1. आनुवांशिक, जातीय व पारिस्थितिक तंत्र विविधता की विवेचना करना,
2. जैवविविधता के महत्व को प्रतिपादित करना,
3. तप्त स्थल की संकल्पना को स्पष्ट करना, तथा
4. राजस्थान मरूस्थल की जैवविविधता की जानकारी प्राप्त करना ।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

कीड़े मकोड़े, केंचुए, पक्षी, पशु, सांप, मक्खी, छिपकली, आदि अनेक प्रकार के जन्तुओं तथा जंगलों, खेतों एवं बगीचों में अनेक प्रकार के पेड़–पौधों को हम लोग प्राय: देखते हैं । जीवों की ये किस्में

पृथ्वी पर उपस्थित सारी किस्मों अर्थात् जातियों की संख्या की तुलना में कुछ भी नहीं है । प्रकृति में जंतुओं की 1212 लाख से अधिक तथा जीवाणु, शैवालों से लेकर विशालकाय वृक्षों तक पादपों की लगभग 5 लाख से अधिक जातियों की खोज हो चुकी है । अनेक वैज्ञानिक उन अज्ञात जातियों की खोज में लगे रहते हैं, जिनकी संख्या पृथ्वी पर न जाने कितनी होगी । अत: पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के प्राणियों एवं वनस्पतियों की जातियां पायी जाती है, उनमें पायी जाने वाली विभिन्नताएं ही जैव विविधता कहलाती है । जैवविविधता से तात्पर्य विश्व में पाए जाने वाले विभिन्न जीव एवं उनकी विविध प्रजातियां है । पृथ्वी पर जीवों की विविधता अपार है । हमारे चारों तरफ विद्यमान वह सब कुछ, दृष्टिगत अथवा दृष्टिगत इकाईया जिसमें जीतन है एवं जिसका एक स्वतन्त्र अस्तित्व है वे जैवमंडल की विशाल जैव विविधता का हिस्सा है । जैव विविधता में जैव का अर्थ जीव से है तथा विविधता का अर्थ है भूमण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल में पायी जाने वाली जीवों की विभिन्न जातियों व प्रजातियों की विविधता से है । प्रकृति में उपस्थित हर प्रजाति चाहे वह वनस्पति हर या प्राणी अथवा सूक्ष्मतम जीव है, के कुछ विशिष्ट गुण होते हैं, जिनके कारण वे अन्य जीवों से भिन्न होते हैं । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में पृथ्वी ही एक मात्र ऐसा अनोखा ग्रह है जिस पर जीवन व्याप्त है, जिसमें अति सूक्ष्म जीवाणुओं से लेकर विशालतम प्राणी व्हेल, सूक्ष्म पौट्रमो प्लेंकटोन से लेकर विशालतम वृक्ष रेडबुड तक सम्मिलित है । जीवन के रूपों की यह विशाल विभिन्नताएं करोड़ों वर्षो में हुए उद्विकास का परिणाम है । जैव विविधता एवं उनका संरक्षण मानव जाति के लिये अति महत्वपूर्ण है । सभी जैविक प्रजातियां किसी न किसी रूप में वातावरण पर एवं वातावरण किसी न किसी रूप में इन जीवों पर सदैव निर्भर रहता है । मानव जाति के हित में इन जैविक विविध प्रजातियों का संरक्षण अति आवश्यक है क्योंकि मनुष्य को अपने जीवन यापन के लिए इन्हीं जीवित प्रजातियों से भोजन, दवाइयां, वस्त्र एवं अन्य आवश्यक वस्तुऐं प्राप्त होती है । यहां तक कि विघटन जैसी अनिवार्य क्रिया के लिए अतिसूक्ष्म जीवाणुओं की आवश्यकता होती है अन्यथा पृथ्वी पर अपशिष्टों का ढेर, सड़े गले पते, जीवों के शरीर, आदि कभी नष्ट नहीं होते । हमारी पृथ्वी पर लगभग 13 लाख प्रकार के जीवधारी रहते हैं, जिनमें मानव का स्थान सर्वोच्च है । प्रकृति ने पृथ्वी के धरातल, समुद्रो, झीलों, नदियों आदि में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और जलचर, थलचर एवं उभयचर जीवों का सृजन किया है । हमारी पारिस्थितिकी को संतुलित बनाये रखने हेतु इन सभी घटकों की भूमिका अति महत्वपूर्ण है ।

जीवन रूपों की इन्हीं विशाल विभिन्नताओं को वैज्ञानिक रूपों में "जैवविविधता" का नाम दिया गया है । अर्थात् संपूर्ण जैव मण्डल में उपस्थित जीवों की विभिन्न प्रजातियों एवं उप प्रजातियों की विविधता सामान्य अर्थ में जैव विविधता कहलाती है ।

टेक्नोलोजी एससमेंट 1987 के संयुक्त राज्य कार्यालय की रिपोर्ट के अनुसार जैव विविधता की परिभाषा इस प्रकार है, "जीव जंतुओं में पायी जाने वाली विभिन्नता, विषमता तथा पारिस्थितिकी जटिलता ही जैव विविधता कहलाती है । '

मानव के जीवन यापन के लिए जैवविविधता का अस्तित्व में रहना अत्यन्त आवश्यक है किन्तु अज्ञानतावश मानव ने अपने क्रिया–कलापों से अपने ही वातावरण में सर्वत्र प्रदूषण फैलाया है जिसके फलस्वरूप पृथ्वी पर जैव विविधता की मात्रा में अत्यन्त कमी आयी है । एक अध्ययन से पता चला है कि विगत 70 वर्षो से मानव ने लगभग 1 लाख जीव प्रजातियों एवं 76 प्रतिशत वन प्रजातियों को

लगभग नष्ट कर चुका है । वर्तमान में इन सभी जैवविविधता को बचाने की अत्यन्त आवश्यकता है । जीवों की प्रकृति के आधार पर जैव विविधता का अध्ययन निम्न तीन स्तरों पर किया जा सकता है ।

11.2 आनुवांशिक विविधता(Genetic diversity)

इसके अन्तर्गत कोशिकाओं में उपस्थित जीनों का अध्ययन करते है । ये जीन एक ही जाति के दो जीवों में भेद करने के लिए उत्तरदायी है । उदाहरण के लिए मनुष्य के दो बच्चों में विभेद उनके रंग, कद, बाल, रहन–सहन, इत्यादि के आधार पर किया जाता है । उनमें ये अन्तर उत्पन्न करने के लिए जीन उत्तरदायी है ।

वर्तमान में जैवविविधता शब्द ने व्यापक रूप धारण कर लिया है । इसका प्रयोग कई स्तरों के वर्णन के लिए किया जाने लगा है, जैसे – जाति, समुदाय, जीन, जैव संगठन, पारिस्थितिकी तन्त्र विविधता, आदि ।

आनुवांशिक विविधता के अन्तर्गत जीवों की वंशानुगत विभिन्नताऐं आती है । यह विविधता जीव की कोशिकाओं में उपस्थित क्रोमोसोम (गुणसूत्र) संख्या, संरचना, डी.एन.ए. संरचना, संख्या एवं उनकी स्थिति पर निर्भर करती है । डी.एन.ए. तथा क्रोमोसोम की विभिन्न स्थितियां, भिन्न रूप से उनका योग और अन्र्त परिवर्तन ही विविधताओं को उत्पन्न करता है । आनुवांशिक विविधता की उत्पति वातावरण से जीव को अनुकूलित करने के लिए तथा जीवन यापन के लिए आवश्यक है । यदि' कुछ जीवों को नष्ट कर दिया जाये तो उनके जीनों की अनुपस्थिति विविधता की मात्रा कम करेगी, जीवों में अनुकुलन कम हो जायेगा, अत: विश्व का पारिस्थितिक तन्त्र असंतुलित हो जायेगा ।

किसी जाति के सदस्यों में आनुवांशिक भिन्नता जितनी कम होगी उसके विलुप्त होने का खतरा उतना ही अधिक होगा, क्योंकि वह वातावरण के अनुसार स्वयं को अनुकूलित करने में विफल रहेगी । एक ही पादपों के गुणों में जो जीन की विभिन्नता उत्पन्न होती है वह विविधता वातावरण में परिवर्तन के कारण होती है । जीनों की भिन्नता के कारण ही विभिन्न प्रकार की किस्मों का जन्म होता है ।

11.3 जातीय विविधता(Species diversity)

प्रजाति विविधता के अंतर्गत प्रजातियों की विविधता का अध्ययन किया जाता है । एक वंश में विभिन्न प्रकार की जातियां उपस्थित होती है । जीवों में एक समान सदस्यो का ऐसा समूह जो आपस में मुक्त रूप से प्रजनन करता हो तथा उर्वर संतान पैदा करने में सक्षम हो, उसे जाति कहते हैं । विश्व में जीवों की अनेक प्रजातियां हैं । इनमें अपने–अपने वातावरण के अनुकूल जीवित रहने की क्षमता है । यह सभी प्रकृति में अलग–अलग भूमिकाएं निभाती है तथा कोई जाति ठीक दूसरी जाति जैसी नहीं है या अनुपयोगी नहीं है, जिसे विलुप्त होने दिया जा सके । सभी जातियां प्रकृति के रहस्यों को या अनुवांशिक रहस्यों को छिपाये हुए है । इनके अध्ययन से हमें इन रहस्यों की जानकारी मिल सकती है । इनके नष्ट होने से इनकी भूमिका कोई अन्य जाति उपयुक्तता से नहीं निभा सकती है । ये अपने–अपने वातावरण में जीवित रहने की क्षमता वहां की अनुकूलन पारिस्थितकी द्वारा उत्पन्न करते है । उदाहरण – गुलाब का पौधा पहाड़ी क्षेंत्रों में काफी लम्बा, बड़ी पत्तियों वाला होता है क्योंकि पत्तियों तक प्रकाश पूर्ण रूप से नहीं पहुंच पाता । जबकि मरूस्थल में यह छोटा, कंटीला व छोटी पत्तियों वाला

होता है । रेगिस्तान में पानी की कमी होने के कारण वाष्पोत्सर्जन को रोकने के लिए पादप में ये अनुकूलन पाया जाता है ।

जातीय विविधता से तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाली जातियों से है, जिस क्षेत्र में अधिक आवास होगें, वहां अधिक जातीय विविधता पायी जाती हैं । सभी जीव जन्तु एवं पौधों को इनकी विविधता बनाए रखने के लिए संरक्षित किया जाता है । किसी भी पारिस्थितिकी तन्त्र को स्थायित्व प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि उसमें जैवविविधता बहुतायत में पायी जाऐ ।

11.4 पारिस्थितिक तन्त्र विविधता(Ecosystem diversity)

भिन्न–भिन्न जैविक समुदायों की विविधता व जटिलता ही पारिस्थितिकी तंत्र की विविधता कहलाती है । विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तन्त्रों के आधार पर जीव भी विभिन्न प्रकार के होते है । उदाहरणार्थ – समुद्री जल में पारिस्थितिक तन्त्र झीलों के पारिस्थितिक तन्त्र से भिन्न होता है । खारे पानी के जीव स्वच्छ जल के जीवों से भिन्न होते है । इसमें असंख्य भोज्य स्तर के साथ ऊर्जा स्थानान्तरण, संतुलित भोज्य जाल व खनिज पदार्थो का चक्रीकरण हेतु तंत्र में पारिस्थितिक प्रकियाएं संपन्न होती है, इसके अंतर्गत विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों में जो जैव विविधता पायी जाती है वह सम्मिलित है, जैसे अलवणीय जलीय तंत्र व समुद्रीय तंत्र की जैव विविधता अलग–अलग प्रकार की होती है । समुद्र में शार्क, व्हेल इत्यादि मिलती है, अलवणीय जलीय तंत्र में नहीं मिलेगी । इसी प्रकार वन, घास प्रदेश व मरूस्थल या रेगीस्तान के पादप व जीव एक दूसरे से भिन्न प्रकार के मिलेंगे, यह भिन्नता पारिस्थितिकी तंत्र स्तर की विविधता कहलाती है ।

पारिस्थितिकी तन्त्र भी जीवों व पादपों की विविधता के साथ अधिक विविध होते जाते है । उसके लिए जहाँ वर्षा प्रचुर मात्रा में होती है, वहां पर जीव एवं पादपों की कई प्रजातियां पायी जाती है । इन क्षेत्रों में पारिस्थितिकी तन्त्र भी कई प्रकार के पाए जाते है । अधिक वर्षा वाले क्षेत्र में प्रचुर वन परिस्थितिकी तन्त्र एवं तटीय क्षेत्र में मेंग्रोव या दलदली पारिस्थितिकी तन्त्र पाये जाते है ।

बोध प्रश्न - 1

जैवविविधता की परिभाषा दीजिये ।

उत्तर: .....

.....

11.5 जैवविविधता का महत्व(Importance of biodiversity)

जैव विविधता मानव जाति एवं जीव जंतुओं के जीविता के लिये अत्यन्त आवश्यक है । यह जैव विविधता हमारी व जीव जंतुओं की आधारभूत आवश्यकताएं पूरी करते हैं । भोजन, आवास, औषधि, ईधन, श्वांस के लिये अति आवश्यक गैस ऑक्सीजन एवं हवा इत्यादि उपलब्ध करवाते हैं । इन्ही प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य, राष्ट्र और विश्व की आर्थिक व्यवस्था निर्भर होती है । वह राष्ट्र जो जैव विविधता में सबसे आगे हैं वह आर्थिक रूप से उतने ही आत्मनिर्भर है । यही कारण है कि जैव विविधता की गिरती हुई संख्या को देखते हुए पूरा विश्व इसके संरक्षण में लगा हुआ है । जैवविविधता का होना समस्त भूमण्डल वासियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । सभी जीव कई प्रकार सें अपने पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करते है । उपभोक्ता एवं उत्पादक का संतुलन आवश्यक है, यदि उत्पादन कम होगा

तो उपभोक्ता को अन्यत्र विचरण करना पड़ेगा तथा पारिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तन आयेगा । जहां तक अचल जैव संपदा का महत्व है इसको मूल्यांकित करना आसान है, किन्तु सचल जैव जिनमें मुख्य उपभोक्ता शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों ही होते है, को मूल्यांकित करना कठिन कार्य है ।

एक महत्वपूर्ण उदाहरण द्वारा जैवविविधता का मूल्य एवं. महत्व को समझा जा सकता है। जैसे कि वनस्पति जगत कार्बन डाईऑक्साईड को वायुमंडल से अवशोषित करते है तथा प्राणी जगत के लिए शुद्ध ऑक्सीजन उपलब्ध कराते है यहां वनस्पति जगत उत्पादक है तथा जैव जगत उपभोक्ता हुआ । यदि इन वनस्पति की संख्या कम होती है, तो उपभोक्ता अन्यत्र विस्थापित होगें एवं इनकी संख्या में भी कमी हो जावेगी ।

यदि पक्षी बीजों को अपने मल द्वारा दूसरी जगह पर नहीं गिरायेगें तो अन्य स्थानों पर वह वनस्पति उत्पन्न नहीं हो पायेगी जिससे उस प्रजाति की वनस्पति का क्षेत्रफल कम हो जायेगा ।

इसी प्रकार वातावरण में उपस्थित सूक्ष्म जीव उपयोगी भी होते है तथा हानिकारक भी । जीवाणु मानव व अन्य जीवों को पोषित करते है तथा हानिकारक जीवाणु रोग फैलाकर जीव संख्या को नियोजित करते है ।

बड़े मांसाहारी जीव छोटे को खाते है जिससे उनकी संख्या नियंत्रित रहती है तथा बड़े मांसाहारी जीव जीवित रहते है । अत: जैवविविधता अति महत्वपूर्ण है । इसके बिना पृथ्वी पर जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा ।

यह व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहे इसलिए समय–समय पर प्राकृतिक उपभोक्ता एवं उत्पादकों का आंकलन करना आवश्यक है । इनको मूल्यांकित कर इनके बीच सामंजस्य स्थापित करना अतिआवश्यक है ।

11.6 हॉट स्पोट्स(तप्त स्थल) (Hot Spots)

जैव विविधता के तप्त स्थलों से तात्पर्य विश्व के ऐसे स्थानों से है जहाँ पर जैव विविधता अत्यधिक हो या लुप्त होने वाली हो, या जहां कम क्षेत्र उपलब्ध हो या विशेष क्षेत्रीय जातियों की बहुलता हो अथवा जीव जातियों के अस्तित्व पर निरन्तर बढ़ता हुआ संकट विद्यमान हो । सर्वप्रथम नोरमन मेयर्स (Norman Mayers) ने (1988) में तप्त स्थल की अवधारणा प्रस्तुत की । यह तप्त स्थल पात्रे(in-situ) संरक्षण हेतु प्राथमिकतायें तय करने के उद्देश्य से तय किये गये । 18 तप्त स्थल ऐसे केन्द्र है जहां सर्वाधिक विविधता पायी जाती है, लेकिन यहां सबसे अधिक पादप व जन्तु जातियों के जीवन को विलुप्त होने का खतरा भी रहता है । ऐसे क्षेत्र, जहां असाधारण रूप से जातियों की उपस्थिति के कारण आवास समृद्ध होते हो, विशेष रूप से ऐसी स्थानीय दुर्लभ(rare) जातियों का समूह पाया जाता हो जो विश्व में अन्य किसी क्षेत्र में नहीं मिलते, तप्त स्थल कहलाते है । मेयर्स व साथियों ने सन् 2000 में संशोधित सूची में 25 तप्त स्थल पुन: रिपोर्ट किये । विश्व में तप्त स्थल को चिन्हित करने का आधार इस प्रकार है– (1) सीमित क्षेत्र जातियों की संख्या अधिक हो एवं यह जातियां कहीं और नहीं पायी जाती हो, तथा (ii) आवास के नष्ट होने की संभावना अधिक हो ।

दुनिया की 14 प्रतिशत पादप जातियाँ कुल उपलब्ध विश्व धरातल के 0.2 प्रतिशत भाग में मिलती है । दुनिया की लगभग 60–70 प्रतिशत जैवविविधता तप्त स्थलों व वृहद जैवविविधता वाले क्षेत्र निम्नलिखित 25 राष्ट्रों में मिलते हैं ।

विश्व में निम्न 25 तप्त स्थल चिन्हित किये गये है (तालिका 11.1) । जैवविविधता अंक्षाश रेखा (equatorial line) पर केन्द्रित रहती है जहां उष्ण वर्षा वन (19) व कोरल रीफ (9) (Tropical rain forest and coral reef) पाये जाते है । तप्त स्थल विश्व की भूमि का कुल व 1.4 प्रतिशत भाग है । मानव जनसंख्या का 20प्रतिशत इन हॉट स्पोट क्षेत्रों में बसा है ।

तालिका 11.1. विश्व के तप्त स्थल

1. ट्रोपिकल एंडीस
2. मीसोअमेरिका
3. कैरिबियन
4. ब्राजील एटलान्टिक वन
5. चोका / डेरियन / पश्चिम इक्वेडोर
6. ब्राजीलियन केराड़ो
7. मध्य चिली
8. केलीफोर्निया फ्लोरिस्टिक प्रोविन्स (क्षेत्र)
9. मेड़ागास्कर
10. पूर्वी आर्क तथा तन्जानिया व केन्या
11. पश्चिम अफ्रीकन वन
12. केप फ्लोरिस्टिक प्रोविन्स
13. सक्कुलेन्ट कारू
14. मेडीटेरीनियन बेसिन
15. कॉकेसस
16. सुण्डलैण्ड
17. वैलेसिया
18. फिलीपीन्स
19. इण्डो बर्मा
20. दक्षिण मध्य चीन (पूर्वी हिमालय सम्मिलित)
21. पश्चिमी घाट / श्रीलंका
22. दक्षिणी पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया
23. न्यूकलैण्ड
24. न्यूज़ीलैण्ड
25. पोलीनेशिया/माइकोनेशिया

बोध प्रश्न - 2

विश्व के जैवविविधता के तप्त स्थल क्षेत्रों की संख्या बताईये ?

उत्तर: .....

11.6.1 भारत के तप्त स्थल (Hot spots of India)

विश्व में कुल 25 में से दो हॉट स्पॉट भारत में स्थित है । भारतीय तप्त स्थल पूर्वी हिमालय व पश्चिमी घाट क्षेत्र में है । इन संवेदनशील क्षेत्रों में पादप जात–संपदा एवं क्षेत्र विशेष बहुलता पायी जाती है । इन क्षेत्रों में पुष्पी पादपों के अतिरिक्त सरीसृप, उभयचर, कीटों एवं स्तनधारी जंतुओं की अनेक जातियां एवं क्षेत्र विशेष की जातियां पायी जाती है जो संसार के अन्य क्षेत्रों में नहीं पायी जाती है ।

(i) पूर्वी हिमालय (Eastern Himalaya) - यह उतारी पूर्वी भारत व भूटान तक फैला हुआ है । यहां शीतोष्ण वन मिलते है जो समुद्रतल से 1780–3500 मीटर ऊंचाई तक पाये जाते है । इस क्षेत्र से कुल 11540 पादप जातियां (UNEP 2003-2004) हाल ही में रिपोर्ट की गयी है । यहां अनेक गहरी घाटियां मिलती है, जिनमें लगभग 4052 क्षेत्र विशेष जातियां पायी गयी है । यहां रोडोडेन्ड्रान व बेटूला जाति के पादप अधिक संख्या में मिलते है ।

(ii) पश्चिमी घाट (Western Ghats) - यह हॉट स्पॉट दक्षिण भारत के तिकोने प्राय:द्वीप (Peninsula) के पश्चिमी समुद्रीय तट के समानान्तर स्थित है । यह 1600 किमी क्षेत्र में महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु व केरल में फैला हुआ है । यहां समुद्रतल से 500 मीटर ऊंचाई पर अर्द्ध–सदाहरित वन (semi-evergreen forests) पाये जाते है । यहां दो विविधता केन्द्र स्थित है : (i) नया अमामबालम रिजर्व (Amambalam reserve), तथा (ii) अगस्थीमलाई पर्वत (Agasthyamalai hills) जिसे शांत घाटी (Silent valley) भी कहते है । यह क्षेत्र भारत के भूभाग का केवल 5% भाग है, किन्तु यहां लगभग 4000 पादप जातियां पाई जाती है जो भारत में पाई जाने वाली जातियों की एक चौथाई है । यहां 1800 से अधिक क्षेत्र विशेष जातियां पायी जाती है ।

बोध प्रश्न - 3

तप्त स्थल से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर: .....

.....

भारत की तरह अन्य जैवविविधता वाले देश इस प्रकार है –

1. मेक्सिको
2. आस्ट्रेलिया
3. ब्राजील
4. कोलम्बिया
5. इक्वेडोर
6. मलेशिया
7. मेड़ागास्कर
8. चीन
9. इन्डोनेशिया
10. पेरू
11. जैरे
12. भारत

बोध प्रश्न - 4

जैवविविधता वाले 12 देशों के नाम लिखिए ।

उत्तर: .....

.....

11.7 जैव विविधता को संकट (Threats to biodiversity)

प्रकृति में प्रजातियों की उत्पति एवं नाश एक जैविक सत्यता है, लेकिन गत कुछ हजार वर्षो में मानव जनसंख्या एवं बढ़ती हुई मानवीय गतिविधियों के कारण अनेक जीव एवं पादप प्रजातियां तेजी से विलुप्त होने लगी है । वर्तमान समय में कई अन्य जीव जातियां अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये संघर्ष कर रही है । जैव विविधता के विनाश के मानवीय कारण निम्न है –

(i) आवासों का विनाश -- कोई भी जीव अपने पारिस्थितिकी तंत्र जो कि उसका आवास है, के बाहर जीवन यापन नहीं कर. सकता है । लेकिन आज जीव जातियों को सबसे अधिक खतरा उनके आवास नष्ट हो जाने का है । जीवों के प्राकृतिक आवासों का विनाश कई कारणों से होता है । जनसंख्या में वृद्धि, कृषि और उद्योगों आदि की स्थापना, लकड़ी की प्राप्ति एवं कागज निर्माण हेतु वनों का विनाश, खनन के दौरान निकले अपशिष्ट का ढ़ेर, बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न सम्बन्धी आवश्यकताओं की

पूर्ति और नम भूमि पर अतिक्रमण से आवासों का विनाश हो रहा है । इसी प्रकार शहरीकरण, सड़कों, रेलमार्गो, बांधों और अन्य विकास परियोजनाओं का निर्माण, आदि कारणों से भी जैव आवासों का खात्मा हो रहा है । प्रदूषण से उत्पन्न अम्ल वर्षा और प्रकाश, रासायनिक धुम्र कोहरा आदि भी जीवों के प्राकृतिक आवासों को नष्ट कर देते हैं । समुद्रों में तेल टैंकरों से होने वाले तेल के रिसाव से समुद्री जीवों के आवास नष्ट हुए है । कम संख्या में मिलने वाले जीव अपनी वंश वृद्धि करने में पर्याप्त सक्षम नहीं है, जिससे उनके विलुप्त होने की संभावना बढ़ गयी है । इस तरह आवासों के लगातार विनाश होने से कई जातियां तो विलुप्त हो चुकी है और कुछ विलुप्ति के कगार पर है ।

(ii) अवैध शिकार -- मानव सदियों से अपने भोज्य पदार्थ के रूप में जानवरों का शिकार करता रहा है । जंगल छोड़कर समाज में सुव्यवस्थित तरीके से सामाजिक जीवन जीने पर भी मनुष्य मनोरंजन, मांस, खाल, हाथीदांत, इत्यादि के लिये शिकार करता रहा है । मनुष्य के शक्तिशाली होते ही वन्य जीवों पर खतरा मंडराने लगा है । आज कुछ जानवर जैसे –हाथी, जिराफ इत्यादि मात्र इसलिये संकटग्रस्त है क्योंकि इनको रहने व खाने के लिये पादप तारा उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है । जंगल इतने कम रह गये हैं जो इनके जीवन के लिये सहायक नहीं है । कई वन्य जीव भी इसीलिये विलुप्त होने के कगार पर हैं ।

(iii) मानव तथा वन्य जीवों में प्रतिस्पर्धा -- बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मानव व वन्य जीवों में आवास तथा भोजन के लिये अन्तर्विरोध होने लगा है । मनुष्य अपने आवास, कारखानों एवं कृषि क्षेत्रों के लिये वनों का विनाश करता है । इस कारण वन्य जीवों को अपने प्राकृतिक आवासों से बाहर निकलना पड़ता है, जहां मानव द्वारा उन्हें मार दिया जाता हे । एक अनुमान के अनुसार यदि जीवों के किसी प्राकृतिक आवास को 70 प्रतिशत कम कर दिया जाये तो वहां निवास करने वाली 50 प्रतिशत जातियां संकटापन्न और कालान्तर में विलोपन की स्थिति में पहुंच जायेगी । मनुष्य यदि केवल एक ही प्रजाति के जंतुओं का विनाश करे तो भी समस्त प्रजातियों पर इसका प्रभाव पड़ता है । यदि मनुष्यों द्वारा सभी जंगली सुअरों का शिकार कर लिया जाये तो वन में शेर के लिये शिकार नहीं बचेगा । इस कारण वह अपने प्राकृतिक आवास को छोड़कर गांवों की ओर रूख करेगा एवं मनुष्यों को अपना शिकार बनाने का प्रयास करेगा, इस प्रकार. मनुष्यों में वन्य जीवों में प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जायेगी।

पिछले पचास वर्षो से सड़कों के किनारे व शहरों के मध्य सौन्दर्यकरण हेतु विदेशी पादपों को उगाया जा रहा है । एक ही जाति के वनवृक्षों को उगाने से मृदा में जहरीले तत्व एकत्रित हो रहें हैं जो अन्य पेड़ पौधों के लिये प्रतिस्पर्धा पैदा करते हैं तथा उन्हें विषैले पदार्थो के कारण पनपने नहीं देते । युकेलिप्टस ऑस्ट्रेलिया का पादप है, लेण्टाना छोटे–छोटे नारंगी लालपीले फूलों वाला अमेरिका से आया है, पानी में बड़े–बड़े पत्ते व नीले पुष्पों वाली तैरती हुई जलकुंभी भी विदेशी है । खुजली व अस्थमा पैदा करने वाली कांग्रेस घास पार्थीनियम भी बहुत नुकसान पहुंचाती है । विलायती कीकर भी आसपास के पेड़–पौधों को नुकसान पहुंचाता है । इस तरह बाहरी देशों से आयी वनस्पति हमारे देश की वन्य संपदा व जीव विविधता को नुरुसान पहुंचा रही है । अतः इसके लिये हमें इन बाहरी देशों से आयी जातियों को नष्ट करना होगा अगर अपनी जैव संपदा को बचाना है ।

प्रकृति के तन्त्र में उपस्थित समुदाय की प्रत्येक जाति का अपना–अपना महत्व व भूमिका होती है । जिसे निभाकर तन्त्र गतिशील रहता है । अतः मानव को सभी जातियों को स्वतन्त्रता पूर्वक

जीने देने के लिये वातावरण व माहौल पुन: बनाना ही होगा जिसके लिये आज उपलब्ध जैव विविधता का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है ।

11.8 राजस्थान की जैवविविधता(Desert biodiversity of Rajasthan)

भारतीय मरूस्थल को मरू–प्रदेश भी कहते है, जिसका अर्थ है मृत्यु की भूमि । इसका मुख्य कारण है– अपरदन व जैवविविधता का ह्रास । भारतीय मरूस्थल 32 मिलियन sq km तक फैला हुआ है जो कि भारत के कुल क्षेत्रफल का 12 प्रतिशत है । राजस्थान प्रदेश में पाये जाने वाली जैव विविधता निम्न प्रकार है । राजस्थान में विभिन्न भौगोलिक स्थितियां है, पश्चिम में मरूस्थल, दक्षिण–पश्चिम में पहाड़ी क्षेत्र तथा पूर्व व दक्षिण–पूर्व में मैदान है । जैव विविधता के आधार पर राजस्थान प्रदेश को निम्न तीन क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है –

(i) दक्षिण–पूर्वी मैदानी क्षेत्र – यह क्षेत्र अरावली श्रृंखला के पूर्व व दक्षिण–पूर्व भाग में मैदानी भाग है, यहां का क्षेत्र काफी उपजाऊ है व इस क्षेत्र में बाणगंगा तथा गंभीरी नदी है । बनास व चंबल नदी भी इसी क्षेत्र में हैं । यहां इस क्षेत्र में अधिकांशत सागवान, बांस, सफेदा, तेंदु महुआ आदि वृक्ष मिलते हैं । यहां की जीव संपदा में लकड़बग्घा, सांभर, तेंदुआ, जंगली सुअर चौसिंगा तथा उड़नगिलहरियां है ।

(ii) पहाड़ी क्षेत्र – प्रदेश के उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम तक अरावली पर्वत श्रृंखला है जो विंध्याचल से मिलकर सवाईमाधोपुर में दोनों की सन्धि बनाती है । पहाड़ी क्षेत्र के बाघ, जरख सियार, सांभर, भालू चीतल, नीलगाय, जंगली सुअर प्रमुख है ।

(iii) मरूस्थलीय क्षेत्र – यह क्षेत्र बहुत कम वर्षा वाला क्षेत्र है जहां वर्षा नगण्य होती है । इस क्षेत्र में लवणीय जल पाया जाता है । यहां पर अत्यन्त विशिष्ट प्रजातियों की वनस्पति पायी जाती है । जिनके पत्ते मोटे होते हैं या तनों में विभिन्न रूपान्तरण पाये जाते हैं । यहां सेवण घास, खेजड़ी, फोग कैर, आक, बेर, थुहर, रोहिड़ा, खींप, सिणिया आदि वनस्पतियां मिलती है । जन्तु विविधता में चिंकारा, कृष्णमृग, गोडावण तीतर, चील, आदि होते हैं ।

11.8.1 जातीय विविधता(Species diversity)

टेफरोसिया (Tephrosia) वंश की कुल 12 प्रजातियां मरूस्थल के विभिन्न पारिस्थितिकीय भागों में पाई जाती है । इनमें से अधिकांश प्रजातियां टेफरोसिया परप्यूरिया (सरपुंखा) से निकटता प्रदर्शित करती है । कुछ क्षेत्र विशेषी जातियां, जैसे – टेफरोसिया यूनीलोरा व टेफरोसिया फालसिफोरमिस जैसलमेर में पाई गई है ।

11.8.2 आनुवांशिक विविधता(Genetic diversity)

भारतीय मरूस्थल में अनेक समष्टि पाई जाती है व अनेक वंश जैसे लेसुरियस (सेवण घास) ट्रिबुलिस (गोखरू / कांटी), कोनवॉलवुलस (शंखपुथी), टेफ्रोसिया, आदि । इनमें पाई जाने वाली आनुवांशिक विविधता का उपयोग कर इनकी उत्तम लक्षणों वाली उपयोगी जातियों का संकलन किया जा सकता है ।

उदाहरण के लिए सिट्रुलस कोलोसिंथिस (तुम्बा) जो कि एक मुख्य बालू बंधक पादप है, सम्पूर्ण मरूस्थल में पाया जाता है । किन्तु पिछले 20 वर्षो से इसके बीज तेल के लिए एकत्रित किए जा रहे है, इसलिए वर्तमान में यह एक संकटग्रस्त पादप बन गया है । इसके अतिरिक्त सि. कोलोसिंथिस व सि. लेनेटस (मतीरा) का प्राकृतिक संकर भी भारतीय मरूस्थल में पाया जाता हैं । यह संभावना है कि सूखा एवं रोग प्रतिरोधी जीन्स सि. कोलोसिंथिस से तरबूज में स्थानान्तरित हो सकते है । जिससे तरबूज़ की उत्तम किस्म विकसित हो सकेगी ।

11.8.3 पारिस्थितिकी तंत्र विविधता(Ecosystem diversity)

मरूस्थल एक अलग प्रकार का पारिस्थितिकी तंत्र है जहां पर विभिन्न प्रकार के भूप्रारूप पाए जाते है । ये भूप्रारूप जैवविविधता का मुख्य स्त्रोत है, क्योंकि इनका बाह्य व आन्तरिक क्रियाओं का एक लम्बा इतिहास है ।

भारतीय मरूस्थल में अनेक प्रतीतियां पाई जाती है, जैसे – गुगल, अश्वगंधा, रिंगनी, जंगली प्याज, आदि जो कि महत्वपूर्ण औषधीय पादप है । जंगली प्याज के बल्ब आकार में छोटे होते है । किन्तु उनमें कुल ग्लाइकोसाइड की मात्रा आर्द्र क्षेत्रों के पादपों से अधिक होती है । नागौरी अश्वगंधा की जडों में अन्य क्षेत्रों से अधिक एल्केलॉइड पाये जाते है । गुगल अन्य महत्वपूर्ण संकटग्रस्त औषधीय पादप है, जो कि ओलियो– गम–रेजिन का मुख्य स्त्रोत है, जिसका आयुर्वेदिक औषधीयों में उपयोग किया जाता है । अत: हमें इस अमूल्य जैवविविधता का संरक्षण करना चाहिए ।

बोध प्रश्न - 5

राजस्थान में पाये जाने वाले औषधीय पादपों के उदाहरण लिखिए ।

उत्तर: .....

.....

11.9 जैव विविधता का संरक्षण(Conservation of biodiversity)

जैव विविधता के संरक्षण से तात्पर्य है वन्य जीव एवं वनस्पति का बचाने के तथा उन्हें उनके प्राकृतिक आवासों में संरक्षित करने के प्रयास । जिससे कि विभिन्न प्रजाति नष्ट अथवा विलुप्त नहीं हो जाये । मानव अपने उपयोग के लिये प्रकृति को अविवेकपूर्ण तरीकों से उपयोग कर रहा है । अपनी बुद्धिमत्ता से मानव भू–मण्डल पर अपनी इच्छानुसार वन्य जीवों तथा वनस्पति का उपयोग कर रहा है । जिससे पारिस्थितिकी तन्त्र में असंतुलन उत्पन्न हो रहा है, इसी कारण बहुत से वन्य जीव एवं वनस्पति विलुप्त हो रही है तथा बहुत सी विलुप्ति के कगार पर है । इन्टरनेशनल युनियन फॉर कन्जर्वेशन ऑफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज के द्वारा प्रकाशित रेड डाटा बुक के अनुसार लगभग पांच हजार प्रकार की वनस्पति पिछले तीस वर्षो में विलुप्त हो चुकी है । 139 पक्षी प्रजातियां विलुपा हो चुकी है तथा लगभग 600 से अधिक प्राणी प्रजातियां विलुप्ति के कगार पर है । इससे हमारे पारिस्थितिकी तन्त्र पर सीधा प्रभाव पड़ा है तथा खाद्य श्रृंखला में परिवर्तन होने से तन्त्र विकृत हो जाता है ।

11.10 सारांश (Summary)

विश्व में पाई जाने वाली विभिन्न जीव और उनकी विविध प्रजातियों को जैवविविधता कहते है । कोशिकाओं में उपस्थित जीनों के अध्ययन को आनुवांशिक विविधता कहते है । एक ही प्रजाति

के जीवों मे पाई जाने वाली विविधता जातीय विविधता कहलाती है । विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तन्त्रों के आधार पर जीवों में पाई जाने वाली विविधता को पारिस्थितिक तन्त्र विविधता कहते है । पारिस्थितिक तन्त्र में जीवों के मध्य व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने के लिए जैवविविधता अत्यन्त आवश्यक है । ऐसे स्थान जहाँ पर असाधारण रूप से समृद्ध जातियां विशेषकर स्थानीय दुर्लभ प्रजातियां पाई जाती है, तप्त स्थल कहलाते है । विश्व में 25 तप्त स्थल चिन्हित किए गए है जिनमें से दो भारत के अन्तर्गत आते है । राजस्थान में मरूस्थल व अपरदन के कारण जैवविविधता का ह्रास हो रहा हैं ।

11.11 संदर्भ ग्रन्थ (Literature cited)

1. बाकरे, बाकरे एवं वाधवा 2006 : पर्यावरणीय अध्ययन, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ ।
2. आमेटा एवं भारद्वाज 2005 : पर्यावरण अध्ययन : एक परिचय, हिमांशु पब्लिकेशंस, उदयपुर।
3. Sharma, P.D.2006: Ecology and Environment, Rastogi Publications, Meerut.
4. राठौड़, चास्टा एवं पोटलिया 2005 : पर्यावरण अध्ययन के मूल तत्व, यश पब्लिशिंग हाऊस, बीकानेर ।
5. झा, लतिका 2004 : पर्यावरण अध्ययन, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर ।
6. त्यागी, सक्सेना एवं जैन 2005 : पर्यावरण अध्ययन, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर ।

11.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. जैवविविधता से तात्पर्य विश्व में पाए जाने वाले विभिन्न जीव एवं उनकी विविध प्रजातियां है । पृथ्वी पर जीवो की विविधता अपार है ।
2. 25
3. ऐसे क्षेत्र, जहां असाधारण रूप से जातियों की उपस्थिति के कारण आवास समृद्ध होते हो, विशेष रूप से ऐसी स्थानीय दुर्लभ (rare) जातियों का समूह पाया जाता हो जो विश्व में अन्य किसी क्षेत्र में नहीं मिलते, तप्त स्थल कहलाते है ।
4. मेक्सिको, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, कोलम्बिया, इक्वेडोर, मलेशिया, मेड़ागास्कर, चीन, इन्डोनेशिया, पेरू, जेरे, एवं भारत ।
5. राजस्थान में गुगल, अश्वगंधा, रिंगनी, जंगली प्याज, तुम्बा, शंखपुष्पी, कांटी, इत्यादि औषधीय पादप पाये जाते हैं ।

11.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जीवों की प्रकृति के आधार पर जैव विविधता के अध्ययन को विस्तारपूर्वक समझाईये ।
2. जातीय विविधता को पारिभाषित कीजिए ।
3. जैवविविधता के महत्व को स्पष्ट कीजिए ।
4. राजस्थान मरूस्थल की जैवविविधता का वर्णन कीजिए ।
5. तप्त स्थलों के बारे में संक्षेप में लिखिये ।

इकाई – 12

वन्यजीव एवं संरक्षण

Wildlife and Conservation

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 वन्य जीवों को खतरा
12.3 अवैद्य शिकार
12.4 मानव एवं वन्य जीवों में प्रतिस्पर्धा
12.5 जैव विविधता का संरक्षण
12.6 राजस्थान के राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्य
12.7 शब्दावली
12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.9 इकाई सारांश एवं अभ्यास कार्य
12.10 संदर्भ ग्रन्थ ।

12. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के निम्न उद्देश्य हैं :

1. वन्य जीवों की उपयोगिता के बारे में जानकारी देना
2. मानव के क्रियाकलापों द्वारा जैव विविधता को नष्ट होने से बचाना
3. जैव विविधता विधेयक संबंधी जानकारी लोगों तक पहुंचाना

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी क्षेत्र में उपस्थित समग्र जीन, प्रजातियों एवं पारिस्थिकीय विविधता को जैव विविधता कहा जाता है । अत: जैव विविधता, संजीव संघटकों में परिवर्तनशीलता एवं पारिस्थितिक जटिलता है, जिसमें प्रजातियों एवं पारिस्थितिकी प्रणाली के अंतर्गत और उनके बीच विविधता शामिल हो । यह स्थान परिवर्तन के साथ बदलती रहती है – अर्थात प्रत्येक स्थान की अपनी विशेष जैव विविधता होती है । विश्व में लोगों की बढ़ती आकांक्षा तथा लालसा ने प्रकृति की इस अनमोल धरोहर के लिए संकट उत्पन्न कर दिया है । सबसे चिंतनीय विषय यह है कि मनुष्य पृथ्वी पर उपस्थित जैव विविधता के सम्पूर्ण आकार–प्रकार के विषय में पूर्ण रूप से जान पाने से पहले ही इसे विलुप्त करने की तह पर अग्रसर हो चलता है । जैव विविधता के ह्रास से ना केवल समस्त पारिस्थितिकी तन्त्रों में असंतुलन होगा बल्कि मानव जगत के लिये यह दुष्कर साबित होगा ।

12.2 वन्य जीवों को खतरा (Threats to Wildlife)

सामान्य अर्थ में वन्य जीव तन्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है । जो प्राकृतिक आवास में निवास करते हैं । भारत जैव विविधता से सम्पन्न राष्ट्र है । यहां जलवायु एवं प्राकृतिक विविधता के कारण लगभग 48000 पादप एवं लगभग 80000 से अधिक जीव जन्तुओं की जातियां पाई जाती हैं ।

12.2.1 वन्य जीवों के विलुप्ति के कारक

इसके विलुप्ति के दो कारक हैं :

प्राकृतिक कारक — मानवजनित कारक

12.2.1 (अ) प्राकृतिक कारण (Natural causes)

भूकम्प, सूखा, ज्वालामुखी के फटने से अथवा धरती पर उल्का पिण्डों के गिरने से क्षेत्र विशेष में उपलब्ध जातियां नष्ट होकर विलुप्त हुई । पृथ्वी पर आनुवंशिकी रूप से भिन्न–भिन्न पादपों की कमी से उपलब्ध पादपों में अंतःप्रजनन की प्रक्रिया के कारण जनन क्षमता में कमी आ जाती है, इसे अंतःप्रजनन अवनमन कहते हैं । क्रमागत रूप से अंत: प्रजात वंशक्रमों में जनन क्षमता के ह्रास के कारण जातियां विलुप्त हो जाती हैं ।

12.2.1 (ब) मानवजनित कारण (Anthropological causes)

1. आवास का ह्रास
2. प्रदूषण
3. वनोन्मूलन
4. जनसंख्या विस्फोट
5. औद्योगिकीकरण
6. अन्य कारक जैसे युद्ध, बीमारियां, विदेशज प्रजातियों का आक्रमण इत्यादि ।

(1) आवास का ह्रास (Loss of Habitat)

मनुष्य के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वनों का विनाश करने से वन्य जीवों के आवास स्थल निरंतर घटते गये । मानव ने उद्योगों, बांध निर्माण, सड़कों एवं रेलमार्गो, आवासीय परिसरों इत्यादि बनानें के लिए जंगलों का सफाया करके प्राकृतिक आवासों को सर्वाधिक नुकसान पहुंचाया है।

इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्र में अत्याधिक रसायन, संश्लेषित उर्वरक, पीड़कनाशकों के उपयोग से भी वन्य जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है ।

(2) प्रदूषण (Pollution)

बड़े–बड़े उद्योगों, कल कारखानों तथा वाहनों से निकलने वाली विषैली गैसों से वायुमण्डल प्रदूषित हो चुका है । औद्योगिक अपशिष्टों, वाहित मल एवं कचरे ने तालाबों, झीलों, नदियों एवं समुद्रों को प्रदूषित कर दिया हे । अत: जल, मृदा एवं वायु के प्रदूषित हो जाने से जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों

का विनाश तीव्रगति से बढ़ा है । जंगलों में खनन कार्य, अम्लीय वर्षा एवं हरितगृह प्रभाव से पृथ्वी पर जैव विविधता पर संकट गहराया है ।

(3) वनोन्मूलन (Deforestation)

वन हमारे पर्यावरण के फेफड़े हैं, क्योंकि वातावरण की शुद्धता के लिए यह प्रमुख भूमिका निभाते हैं । अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव वनों पर शुरूआत से ही निर्भर रहा है । भवन निर्माण, ईधन, फर्नीचर, कागज उद्योगों आदि के लिए मानव ने अन्धाधुन्ध गति से वनों का दोहन किया है । राष्ट्रीय वन नीति, 1952 के अनुसार भारत में संघृत विकास(Sustainable Development) के लिए न्यूनतम 33 प्रतिशत वनावरण होना चाहिए । किन्तु वर्तमान में यह मात्र 20 प्रतिशत के लगभग ही शेष बचे हैं । अत: वन्यजीव संरक्षण के लिए वनारोपण पर समुचित ध्यान देना वर्तमान समय की महती आवश्यकता है ।

(4) जनसंख्या विस्फोट (Population Blast)

भारत जैसे विकासशील देशों तथा अल्पविकसित राष्ट्रों की प्रमुख समस्या जनसंख्या विस्फोट है । यह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से जैव विविधता में कमी के लिये जिम्मेदार है । आधुनिक चिकित्सा सेवाओं के कारण मृत्युदर में कमी तथा उच्च जन्मदर के कारण जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है । वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है । इस प्रकार मानव अपनी आवासीय परिसरों के लिए वन्य जीवों के प्राकृतिक आवासों को नष्ट करता जा रहा है जो कि जैव विविधता के लिए दुष्कर साबित हो रहा है ।

(5) औद्योगिकीकरण (Industrialization)

बड़े–बड़े कल कारखानों एवं उद्योगों से प्रति वर्ष लाखों टन औद्योगिक कचरा, विषैले पदार्थ एवं अपशिष्ट हमारे वातावरण में त्यागे जा रहे हैं । खनन उद्योगों, चर्म उद्योगों, सीमेंट उद्योगों, पैट्रोलियम रिफाइनरियों, आणविक बिजलीघरों इत्यादि से अत्याधिक जहरीले अपशिष्ट हमारे जल. मृदा एवं वायु को निरंतर दूषित कर रहे हैं । वायु में उत्सर्जित इन गैसों के कारण ओजोन क्षरण, अम्लीय वर्षा, हरितगृह प्रभाव, जलवायु परिवर्तन इत्यादि गम्भीर समस्याएं उत्पन हो रही हैं, जिसके कारण समस्त पारिस्थितिकी तन्त्र प्रभावित हो रहे हैं । इनका दुष्परिणाम यह है कि कई क्षेत्र विशेषी प्रजातियां भी लुप्तप्राय हो रही हैं ।

(6) अन्य कारण (Other Causes)

उपरोक्त कारणों के अलावा अन्य कारण जैसे विभिन्न राष्ट्रों के मध्य युद्ध एवं सैन्य अभियानों, विदेशक प्रजातियों के आक्रमण, विभिन्न प्रकार की बीमारियों आदि के कारण भी जैव विविधता प्रभावित हुई है । खाड़ी युद्ध के दौरान तेल के कुओं में आग लगने के कारक मध्य एशिया में भी कई पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हुए थे । हाल ही में 'बर्ड फ्लू बीमारी के कारण कुक्कुट प्रजातियों एवं अन्य पक्षी प्रजातियां प्रभावित हुई थी । इसके अलावा हमारे देश में विदेशज प्रजातियां जैसे यूकेलिप्टस, आर्जिमोन मैक्सीकाना जलकुंभी विदेशी बबूल इत्यादि पादपों के कारण यहां की मूल वनस्पति भी अत्याधिक प्रभावित हुई हैं।

12.3 अवैध शिकार (Poaching)

वन्यजीवों के संकटग्रस्त एवं विलुप्त होने का एक अन्य मुख्य कारण वन्य जीवों का अवैध शिकार है । मानव सदियों से अपने भोज्य पदार्थ के रूप में जानवरों का शिकार करता रहा है । भोजन

के अतिरिक्त मानव जानवरों से सौंदर्य प्रसाधन प्राप्त करने, चमड़े की वस्तुएं बनाने, फर, ऊन आदि के लिए, माल ढोने खाल प्राप्त करने, सजावटी सामान एवं मनोरंजन इत्यादि के लिए वन्यजीवों का शिकार करता है । वर्षा पूर्व जहां हिमालयी क्षेत्र, थार रेगिस्तान, उत्तर भारत का मैदान दक्षिण पठारी प्रदेश वन्य जीवों की विपुल सम्पदा से भरे पड़े थे, वहीं वर्तमान स्थिति यह है कि वन्य–जीव केवल राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभ्यारण्यों में ही सिमट कर रहे गये हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में अत्याधिक कीमत मिलने के कारण भी वन्य जीवों का अनाधिकृत शिकार किया जाता है । हाथी का शिकार हाथीदांत के लिए, शेर, बाघ आदि का शिकार उनकी खाल, हड्डी, नाखूनों के लिए, मगरमच्छ, कछुआ, कोबरा आदि का शिकार उनकी खाल के लिये कस्तूरी मृग का शिकार कस्तूरी प्राप्त करने के लिए किया जाता है । इनके उत्पादों से कई तरह की दवाईयां, इत्र इत्यादि बनाये जाते हैं हाल ही के वर्षों में बाघ की खालों की बरामदगी, फरवरी 2001 में उत्तरांचल के जिम कार्बेट पार्क में आधे दर्जन हाथियों का शिकार आदि घटनाएं जैव विविधता के गंभीर संकट में होने की पुष्टी करते हैं ।

बोध प्रश्न

1. राष्ट्रीय वन नीति, 1952 के अनुसार भारत में संघृत विकास (Sustainable Development) के लिए न्यूनतम कितने प्रतिशत वन होने चाहिए ?
2. किन्ही चार मानव जनित कारणों के नाम बताओ जो वन्य जीवन के विनाश के भागीदार हैं ।
3. वन्य जीव विनाश को दो प्राकृतिक कारण लिखो ।
4. जैव विविधता से आप क्या समझते है ?

12.4 मानव एवं वन्यजीव विवाद (Human and Wildlife Conflicts)

मनुष्य की गलत धारणाओं के कारण वन्य प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा बढ़ा है । इसका प्रत्यक्ष प्रभाव समस्त मानव जगत पर पड़ता है । प्राचीन काल में वन्य जीव एवं मानव के बीच मित्रता का संबंध था तथा ऋषि मुनियों के आश्रम में वन्यजीव मुक्त रूप से विचरण करते थे । हमारी धार्मिक मान्यताओं में भी विभिन्न पेड़–पौधे एवं जीव जन्तु पूज्यनीय थे । किन्तु मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ वन्यजीव एवं मानव के बीच सद्भावना घटने लगी एवं धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों में कमी आने लगी जिससे वन्य जीवों के अस्तित्व पर संकट उत्पन्न होने लगा । वन्य जीवन को नष्ट करने से मानव एवं वन्यजीवन प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है । मानव जहां वन्य जीवन के लिए हानिकारक हुआ है । वहीं वन्य जीव भी कहीं–कहीं मानव के लिए खतरा साबित हो रहे हैं । मानव व वन्य जीवों में विवाद निम्न प्रतिस्पर्धाओं के कारण बढ़े हैं :

आदिवासी समुदाय के साथ वन्य जीवन प्रतिस्पर्धा	शहरी समुदाय के साथ वन्यजीवन प्रतिस्पर्धा

12.4.1 (A) आदिवासी समुदाय के साथ वन्य जीवन प्रतिस्पर्धा

आदिवासी समुदाय अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वन एवं उनके उत्पादों पर सदियों से निर्भर रहते रहे हैं । वे इन वन्य सम्पदाओं के दोहन के साथ–साथ इनका संरक्षण भी करते थे । पिछले कुछ वर्षो में वन्यजीव संरक्षण के लिए सरकार द्वारा राष्ट्रीय उद्यान व अभ्यारण्यों के लिए सरकार ने वनवासियों को उस क्षेत्र से निष्कासित करना शुरू कर दिया जिससे आदिवासियों के सरकार विद्रोही विद्रोह हुए । उदाहरण के लिए टिहरी बांध से विस्थापित आदिवासियों तथा केरल के आदिवासियों की समस्याएं भी इसी विवाद की कड़ी है ।

12.4.1 (B) शहरी समुदाय साथ जीवन प्रतिस्पर्धा

वन्यजीव आवास तथा भोजन के लिए एवं मानव समुदाय आवास, कृषि, उद्योगों के लिए एक दूसरे के प्रतिस्पर्धा में हैं । कई बार वन्यजीव अपने भोजन की तलाश में भटकते हुए मानव बस्तियों में चले आते हैं एवं काल ग्रास बन जाते हैं । मनुष्य अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए दिन प्रतिदिन वन्यजीवों के प्राकृतिक आवासों पर कुठाराघात करता रहा है । बढ़ती हुई जनसंख्या की जठराग्नि को शांत करने के लिए कृषि क्षेत्र के विस्तार के कारण वन एवं वन्यजीवन पर दुष्कर परिणाम पड़ते हैं।

अत: इन विवादों से बचने एवं जैव विविधता का संरक्षण करने के लिए भारत सरकार ने पहली वन्यजीवन कार्ययोजना 1983 को संशोधित करके अब नई वन्यजीवन कार्ययोजना (2002–2016) स्वीकृत की है । भारतीय वन्य जीवन बोर्ड, जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं, वन्य जीव संरक्षण की अनेक योजनाओं के क्रियान्वयन की निगरानी एवं निर्देशन करने वाला शीर्ष सलाहकार निकाय है । वर्तमान में संरक्षित क्षेत्र के अंतर्गत 92 राष्ट्रीय उद्यान और 500 अभ्यारण्य आते हैं जो देश के सकल भौगोलिक क्षेत्र के 15.67 मिलियन हैक्टयेर भाग पर फैले हैं तथा देश के समस्त भौगोलिक क्षेत्र को या प्रतिशत पर फैले हैं ।

बोध प्रश्न

5. आदिवासी समुदाय के साथ वन्य जीव विवाद के दो उदाहरण लिखो ।
6. भारत सरकार ने पहली वन्यजीवन कार्ययोजना किस वर्ष बनाई थी ?
7. भारतीय वन्य जीवन बोर्ड का अध्यक्ष कौन होता है ?
8. भारत में वर्तमान में कुल कितने राष्ट्रीय उद्यान और अभ्यारण्य है?
9. भारत के समस्त भौगोलिक क्षेत्र का कितने प्रतिशत भाग राष्ट्रीय उद्यान और अभ्यारण्य से घिरा हुआ हैं?

जैव विविधता अधिनियम, 2002

प्रमुख प्रावधान

1. जैव विविधता का संरक्षण तथा उसका पोषणीय उपयोग करना ।
2. महत्वपूर्ण जैव विविधता वाले क्षेत्रों को “जैव विविधता धरोहर स्थल' घोषित कर उनका संरक्षण करना ।
3. स्थानीय समुदायों के जैव विविधता से संबंधित ज्ञान का सम्मान करना एवं उसे संरक्षण प्रदान करना ।

4. संकटग्रस्त प्रजातियों के लिए संरक्षण एवं पुनर्वास का प्रावधान ।
5. स्थानीय लोगों जैसे जैविक संसाधनों के संरक्षकों तथा जैविक संसाधनों के प्रयोग से संबंधित सूचना एवं ज्ञान धारकों के साथ लाभ की भागीदारी सुनिश्चित करना ।
6. जैव विविधता अधिनियम (2002) के क्रियान्वयन की वृहद योजना में समितियों के गठन के माध्यम से राज्य सरकारों के संस्थानों का शामिल होना ।

कार्टाजीना संधि

जैव सुरक्षा पर "कार्टाजीना संधि" जीव विज्ञान विविधता पर हुए सम्मेलन के तत्वावधान में सजीव परिष्कृत संघटकों के इस्तेमाल, संचालन एवं सुरक्षित स्थानान्तरण की दिशा में पहला अंतर्राष्ट्रीय विनियामक समझौता है ।

नयी वन्यजीव कार्य योजना (2002–2016)

यह योजना देश में वन्य प्राणियों एवं वनस्पतियों के संरक्षण के लिए रणनीति पर ध्यान देती है । यह संरक्षित क्षेत्र नेटवर्क को बढ़ावा देती है तथा इसको सशक्त करती है । संरक्षित क्षेत्रों के प्रभावकारी प्रबंधन, लुप्तप्राय प्रजातियों के संरक्षण, अतिक्रमण पर नियंत्रण, वन्यजीवों एवं वनस्पतियों के अनाधिकृत व्यापार पर नियंत्रण करती है । यह योजना वन्यजीव संरक्षण में लोगों की भागीदारी को सुनिश्चित करती है एवं वन्यजीव क्षेत्रों के लिए आवश्यक वित्तीय प्रबंधन तथा अन्य क्षेत्रीय कार्यक्रमों के साथ राष्ट्रीय वन्यजीव कार्ययोजना का एकीकरण भी करती है ।

बोध प्रश्न

1. जैव विविधता धरोहर स्थल से आप क्या समझते है?
2. नई वन्यजीव कार्ययोजना कब से कब तक बनाई गई है?
3. जैव विविधता अधिनियम कब बना था?

12.5 जैव विविधता संरक्षण (Biodiversity Conservation)

जैव विविधता के लगातार ह्रास को रोकने के लिए मानव जाति के हित को ध्यान में रखते हुए ऐसा प्रबंधन जो जैव विविधता प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित कर सके एवं भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को आवश्यकतानुसार उचित संसाधनों को उपलब्ध करवा सकें, जैव विविधता संरक्षण कहलाता है ।

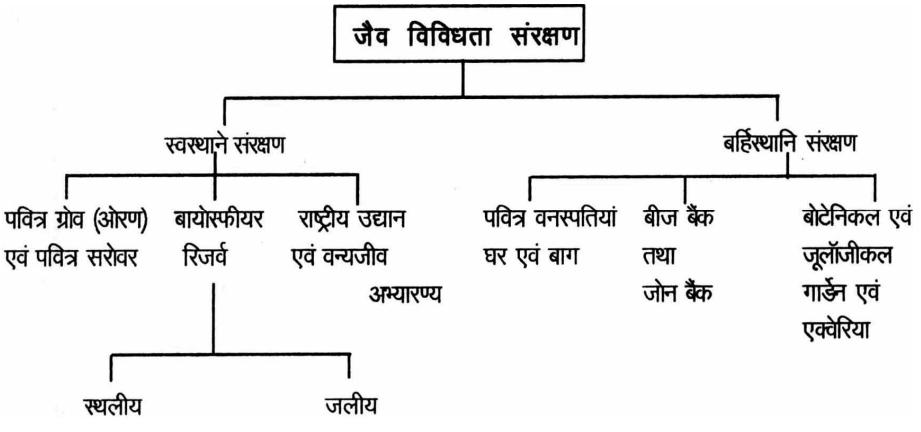

12.5.1 स्वस्थाने संरक्षण (Insitu Conservation)

यह संरक्षण की एक ऐसी विधि है जिसमें पादप व जन्तुओं का संरक्षण उनके प्राकृतिक आवास में ही किया जाता है । इसके लिये इन आवासों को सुरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिया जाता है । सरकार द्वारा घोषित किये गये सुरक्षित क्षेत्र जैसे प्राकृतिक रिजर्व, राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण्य आदि स्वस्थाने संरक्षण के उदाहरण हैं ।

12.5.2 बहिर्स्थाने संरक्षण (Exsitu Conservation)

संरक्षण की इस विधि में पादपों अथवा वन्य जीवों को उनके प्राकृतिक आवास से हटाकर कृत्रिम आवास में संरक्षण प्रदान किया जाता है । जीव जन्तु संग्रहालय, पक्षी संग्रहालय, चिड़ियाघर, वनस्पति उद्यान एवं आनुवंशिक संसाधन केन्द्र आदि इसके उत्तम उदाहरण हैं ।

वर्तमान में राजस्थान में पांच जन्तुआलय हैं जो कि जयपुर, कोटा, बीकानेर, जोधपुर व उदयपुर जिलों में स्थित हैं । यहां जीव जन्तुओं की अनेक जातियों को संरक्षित किया जा रहा है ।

इसके अतिरिक्त अत्यधिक आर्थिक उपयोगिता वाले तथा विलुप्त हो रहे पादपों व जन्तुओं के जनन द्रव्य अर्थात् बीज, फल, पराग, बीजाणु, अण्डे आदि के संग्रहण के लिये जनन द्रव्य बैंकों की स्थापना की जाती है ।

12.6 राजस्थान के राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्य

12.6.1 राष्ट्रीय उद्यान (National Parks)

राष्ट्रीय महत्व की प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक वस्तुओं, प्राकृतिक दृश्यों तथा वन्य जीवों के संरक्षण के उद्देश्य से स्थापित उनके प्राकृतिक आवासों को राष्ट्रीय उद्यान कहा जाता है । राष्ट्रीय उद्यान में मुख्यतया दो क्षेत्र होते हैं ।

1. आद्यात क्षेत्र (Buffer Zone) 2. आन्तरिक क्षेत्र (Core Zone)

आद्यात क्षेत्र को बफर जोन भी कहा जाता है । इसमें जैविक हस्तक्षेप हो सकता है । परन्तु आन्तरिक क्षेत्र जिसे कोर जोन भी कहा जाता है, में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप निषिद्य होता है। राष्ट्रीय उद्यान की सीमा कानून द्वारा निर्धारित की जाती है ।

राष्ट्रीय उद्यान की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं –

1. यहां शिकार करने की पूर्ण मनाही होती है ।
2. इसकी सीमा का निर्धारण कानून द्वारा किया जाता है ।
3. इनकी देख–रेख भारतीय वन्य जीव संस्थान द्वारा की जाती है ।
4. इसका निर्माण वन्य जीवों के आवास एवं संरक्षण के लिये किया जाता है ।
5. यहां वन्य जीवों का संरक्षण स्वस्थाने अर्थात् उनके प्राकृतिक आवास में ही किया जाता हैं

राजस्थान में दो राष्ट्रीय उद्यान स्थित हैं –

1. रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान, सवाई माधोपुर
2. केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान, भरतपुर

इन राष्ट्रीय उद्यानों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :–

(1) रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान

यह राजस्थान का प्रथम राष्ट्रीय उद्यान है । यह सवाई माधोपुर जिले में स्थित है । इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 392 वर्ग किलोमीटर है । इसके दो भाग आद्यात क्षेत्र व आन्तरिक क्षेत्र क्रमश: 108 वर्ग किलोमीटर व 284 वर्ग किलोमीटर में फैले हुए है । इसे 1955 में वन्य जीव अभ्यारण्य घोषित किया गया एवं 1974 में यहां बाघ परियोजना प्रारम्भ की गई तथा 1980 में इसे राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा दिया गया । वर्तमान में इसे राजीव गांधी

राष्ट्रीय उद्यान के नाम से जाना जाता है । यहां अनेक वन्य जीवों को संरक्षण प्रदान किया गया है । यह राष्ट्रीय उद्यान भारतीय बाघ का घर माना जाता है । इसके अतिरिक्त यहां बघेरे, भालू चीतल, सांभर, नील गाय आदि को भी आसानी से देखा जा सकता है । यहां पक्षियों के अनेक प्रजातियां भी दृष्टिगोचर होती हैं । धूप में स्नान करते मगरमच्छ यहां का दूसरा आकर्षण है ।

(2) केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान

यह राजस्थान का दूसरा राष्ट्रीय उद्यान जिसे पक्षियों का स्वर्ग भी कहा जाता है । यह राजस्थान के भरतपुर जिले में स्थित है । इस राष्ट्रीय उद्यान के कुल क्षेत्रफल 28.73 वर्ग किलोमीटर है । इसमें 113 जातियों के विदेशी प्रवासी पक्षी तथा 392 जातियों के भारतीय पक्षियों को एक साथ देखा जा सकता है । दुर्लभ सफेद सारस शीतकाल में यहां प्रजनन के लिये आते हैं । शीतकाल में अजगरों को धूप सेकते हुये यहां देखा जा सकता है ।

12.6.2 अभ्यारण्य (Wildlife Sancturies)

वन्य जीवों के संरक्षण हेतु वे सुरक्षित प्राकृतिक क्षेत्र जिनमें वन्य जीवों को पकड़ने, मारने, शिकार करने या अन्य विनाशकारी गतिविधियां निषिघ हो अभ्यारण्य कहलाते हैं । इनका निर्माण किसी जाति विशेष को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है । इनकी देख–रेख भारतीय वन्य जीव संस्थान द्वारा की जाती है । वर्तमान में राजस्थान में 23 वन्य जीव अभ्यारण्य हैं । जिनका संक्षिप्त विवरण अग्र प्रकार है

(1) सरिस्का अभ्यारण्य

यह अभ्यारण्य राजस्थान के अलवर जिले में स्थित है । इस वन क्षेत्र के कुछ भाग को वर्ष 1955 में संरक्षित –क्षेत्र घोषित किया गया था, इसके बाद सन् 1958 में इसका क्षेत्रफल बढ़ाते हुए इसे अभ्यारण्य घोषित किया गया । इसका क्षेत्रफल लगभग 866 वर्ग किलोमीटर है । इस अभ्यारण्य का 492 वर्ग किलोमीटर वन्य क्षेत्र बाघ परियोजना के अर्न्तगत आरक्षित है । यहां बाघ, बघेरे के अलावा जरख, चीतल, सांभर, नील गाय, चिंकारा, जंगली सूअर आदि बहुतायत से पाये जाते हैं ।

(2) राष्ट्रीय मरू उद्यान

यह अभ्यारण्य बाड़मेर व जैसलमेर जिलों में फैला हुआ है इसका क्षेत्रफल लगभग 3162 वर्ग किलोमीटर है । यह राज्य पक्षी गोडावण का विचरण क्षेत्र है । यह मरूस्थलीय वनस्पति एवं जीव जन्तु प्रजातियों के लिये आदर्श अभ्यारण्य है । यहां वन्य जीवों में चिंकारा, भेड़िया, लोमड़ी, मरूस्थलीय बिल्लियां, पाटागोह तीतर, स्पैंक गोरैया आदि बहुतायत से पाये जाते हैं ।

(3) ताल छापर अभ्यारण्य

यह अभ्यारण्य चुरू जिले में छापर गांव के पास 7.9 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है । यह इस अभ्यारण्य का मुख्य आकर्षण कृष्ण मृग हैं । वर्षा के पश्चात् यहां छिछले जलाशयों में अनेक प्रवासी पक्षी देखे जा सकते हैं । इसे सन् 1962 में आरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया तथा 13 जुलाई 1971 को राज्य सरकार ने इसे अभ्यारण्य घोषित किया ।

(4) दर्रा अभ्यारण्य

यह अभ्यारण्य कोटा जिले में स्थित है । इसका क्षेत्रफल 265.83 वर्ग किलोमीटर है । यहां बाग, रीछ, जरख, चीतल, चिंकारा, मगरमच्छ, नीलगाय, जंगली सूअर, खरगोश, बन्दर भेड़िया, चौसिंगा, सेही, बिज्यू आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(5) रामगढ़ विषधारी अभ्यारण्य

यह अभ्यारण्य बूंदी जिले में स्थित है । इस अभ्यारण्य की घोषणा 20 मई 1982 को हुई थी ।इसका क्षेत्रफल 307 वर्ग किलोमीटर है । यहां बाघ, बघेरे, रीछ, जरख, गीदड़, चीतल, चिंकारा, नीलगाय, जंगली सूअर, लोमड़ी, जंगली बिल्ली, खरगोश, मोर, भेड़िया, नेवला, चौसिंगा और पक्षी पाये जाते हैं ।

(6) कुम्मलगढ़ अभ्यारण्य

यह राजसमन्द जिले में स्थित है । इसकी घोषणा सन् 13 जुलाई 1971 को हुई थी । इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 578.25 वर्ग किलोमीटर है । यहां बाघ, रीछ, जरख, गीदड़, सांभर, चीतल, चिंकारा, मगरमच्छ, नीलगाय, जंगली सूअर, भेड़िया, चौसिंगा, सेही आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(7) सीतामाता अभ्यारण्य

यह चित्तौड़गढ़ जिले में स्थिति है । इसका कुल क्षेत्रफल 422.94 वर्ग किलोमीटर है । केवल यहां पर ही उड़नगिलहरी पायी जाती है । इसके अलावा बघेरा, रीछ, जरख, गीदड़, सांभर, चीतल, चिंकारा, मगरमच्छ, नीलगाय, जगंली सूअर, लोमड़ी, जंगली, बिल्ली तथा कई बन्दर प्रजातियां यहां पर पाई जाती हैं ।

(8) माउण्ट आबू अभ्यारण्य

यह सिरोही जिले में स्थिति है ।इस अभ्यारण्य की घोषणा 7 अप्रेल 1960 को हुई थी । इसका क्षेत्रफल 288.84 वर्ग किलोमीटर है । यहां बघेरा, रीछ, जरख, सांभर, नीलगाय, जगंली सूअर, भेड़िया आदि जंगली वन्य जीव पाये जाते हैं ।यह अभ्यारण्य जंगली मुर्गो के लिए प्रसिद्व हैं ।

(9) फुलवाड़ी की नाल अभ्यारण्य

यह उदयपुर जिले में स्थित है । इस अभ्यारण्य की घोषणा 6 अक्टूबर 1983 को हुई थी । यह 511.4 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है । यहां बाघ, बघेरे, चीतल, सांभर और पक्षी पाये जाते है। इसमें पक्षियों की भी 22 से अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं ।

(10) वन विहार अभ्यारण्य

यह धोलपुर जिले में स्थित है ।इस अभ्यारण्य की घोषणा 7 नवम्बर 1955 को हुई थी । यह 59.53 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है ।वन विहार, उर्मिला सागर व झोरबंधा नामक तीन पुराने बांध इसी में स्थित हैं । यहां बाघ, बघेरे, रीछ, जरख, गीदड़ एवं जंगली मुर्गियां पाई जाती हैं ।

(11) जयसमन्द अभ्यारण्य

यह उदयपुर जिले में स्थित है । इस अभ्यारण्य की घोषणा 7 नवम्बर 1955 को हुई थी ।यह 52.34 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है । यहां पर प्रवासी पक्षी आते हैं । यहां बघेरे, रीछ, जरख, गीदड़ सांभर, चीतल, चिंकारा, जंगली सुअर आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(12) राष्ट्रीय, चंबल घड़ियाल अभ्यारण्य

यह कोटा जिले में स्थित है । इस अभ्यारण्य की घोषणा 16 जुलाई 1983 को हुई थी । यह 280 वर्ग किलोमीटर जल क्षेत्र में फैला है । यहां पर लुप्त घड़ियालों की प्रजातियों को संरक्षित किया गया है ।

(13) भैंसरोडगढ़ अभ्यारण्य

यह चित्तौड़ में स्थित है ।इस अभ्यारण्य की घोषणा 5 फरवरी 1983 को हुई थी । इसका क्षेत्रफल 229.14 वर्ग किलोमीटर है । यहां पर बघेरा, जरख, सांभर, गीदड़, चीतल, चिंकारा, नीलगाय, जंगली सुअर, लोमड़ी आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(14) सज्जनगढ़ अभ्यारण्य

यह उदयपुर में स्थित है ।इस अभ्यारण्य की घोषणा 17 फरवरी 1987, को हुई थी । इसका कुल क्षेत्रफल 519 वर्ग किलोमीटर है । यहां पर सांभर, चीतल, चिंकारा, नीलगाय, जंगली सुअर, कृष्ण मृग, लंगर आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(15) जवाहर सागर अभ्यारण्य

यह कोटा जिले में स्थित है ।इस अभ्यारण्य की घोषणा 30 जुलाई 1983 को हुई थी । इसका क्षेत्रफल 100 वर्ग किलोमीटर है । यहां रीछ, गीदड़, जरख, सांभर, नीलगाय, लोमड़ी, बघेरा आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(16) शेरगढ़ अभ्यारण्य

यह बारां जिले में स्थित है । इसका क्षेत्रफल 98.79 वर्ग किलोमीटर है । यहां रीछ, बाघ, बघेरा, जरख, लोमड़ी, गीदड़, अजगर, चीतल, सांभर आदि वन्य जीव पाये जाते हैं । वर्ष 1999 की गणना के अनुसार अभ्यारण्य में बघेरे– 5, चीतल–8, जंगली सूअर –95, नीलगाय–12, चिंकारा–54, भेड़िया–12, जरख–12, आदि वन्यजीव पाये गये ।

(17) बन्ध बारेठा अभ्यारण्य

यह भरतपुर जिले में स्थित है ।इस अभ्यारण्य की घोषणा 05 अक्टूबर 1985 को हुई थी । इसका क्षेत्रफल 199.76 वर्ग किलोमीटर है ।यहां पर जंगली सूअर, सांभर, चीतल, नीलगाय आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(18) सवाई मानसिंह अभ्यारण्य

यह सवाई माधोपुर जिले में स्थित है । इस अभ्यारण्य की घोषणा 30 नवंबर 1984 को हुई थी । यहां अरावली और विन्ध्याचल पर्वत श्रृंखलाएं मिलती हैं ।इसका क्षेत्रफल 103.25 वर्ग किलोमीटर है । यहां पर बाघ, बघेरा, सांभर, चीतल, नीलगाय आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।वर्ष 1999 की गणना के अनुसार अभ्यारण्य में चीतल–85, जंगली सूअर –209, नीलगाय–546, चिंकारा–147, भालू–23 आदि वन्यजीव पाये गये ।

(19) टाटगढ़ रावली अभ्यारण्य

यह अजमेर जिले में स्थित है । इसकी स्थापना 28 सितंबर 1983 को हुई थी ।इसका क्षेत्रफल 511.42 वर्ग किलोमीटर है । यहां पर बघेरा, रीछ, गीदड़, नीलगाय, खरगोश, बन्दर आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(20) केलादेवी अभ्यारण्य

यह करौली जिले में स्थित है । इस अभ्यारण्य की घोषणा 19 जुलाई 1983 को हुई थी । इसका कुल क्षेत्रफल 676.38 वर्ग किलोमीटर है । यहां पर बघेरे, रीछ, जरख, गीदड़, सांभर, चीतल, नीलगाय आदि पाये जाते हैं । वर्ष 1999 की गणना के अनुसार अभ्यारण्य में बाघ–6 से 7, बघेरे–3, चीतल–48, जंगली सूअर –829, नीलगाय–570, चिंकारा–470, भालू–212, जरख–653, आदि वन्यजीव पाये गये ।

(21) नाहरगढ़ अभ्यारण्य

यह जयपुर जिले में स्थित है । इस अभ्यारण्य की घोषणा 22 सितंबर 1980 को हुई थी । इसका कुल क्षेत्रफल 50 वर्ग किलोमीटर है । आमेर से 3 कि.मी. दूर दिल्ली राजमार्ग के बांई तरफ नाहरगढ़ अभ्यारण्य के 7.2 वर्ग कि.मी. क्षेत्र को नाहरगढ़ जैविक उद्यान के रुप में विकसित किया जा रहा हैं । यहां नीलगाय, चीतल, गीदड, लंगर, सेही, कोटागोह आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(22) जमवा रामगढ़ अभ्यारण्य

यह जयपुर जिले में स्थित है । इसकी स्थापना 31 मई 1982 को हुई थी । ।यह कुल 360 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है । यहा बघेरा, जरख, गीदड़, सांभर, नीलगाय, जंगली बिल्ली, खरगोश, भेड़िया आदि वन्य जीव पाये जाते हैं । वर्ष 1999 की गणना के अनुसार अभ्यारण्य में बघेरे–18, सांभर–7, चीतल–7, जंगली सूअर –47, नीलगाय–563 आदि वन्यजीव पाये गये ।

(23) बस्सी अभ्यारण्य

यह चित्तौड़गढ़ जिले में स्थित है । इस अभ्यारण्य की घोषणा 29 अगस्त 1988 को हुई थी ।यह कुल 153 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है । यहां बघेरा, जरख, जंगली बिल्ली, चिंकारा, चौसिंगा, नीलगाय, मगरमच्छ और पक्षी पाये जाते हैं । सेन्डग्राउज भी यहां पर पाये जाते हैं ।

बोध प्रश्न

13. राजस्थान के किस अभ्यारण्य में उड़न गिलहरी पाई जाती है?
14. सज्जनगढ़ एवं भैंसरोडगढ़ अभ्यारण्यों में संरक्षित वन्य प्रजातियों के नाम लिखिये।
15. जमवा रामगढ़ अभ्यारण्य राजस्थान के किस जिले में स्थित है तथा इसका स्थापना वर्ष क्या है?
16. अलवर जिले के कौनसे अभ्यारण्य में बाघ परियोजना संचालित की जा रही है?
17. ताल छापर अभ्यारण्य का मुख्य आकर्षण क्या है?
18. बन्ध बरेठा तथा सवाई मानसिंह अभ्यारण्य राजस्थान के क्रमश: किन--किन जिलों में स्थित है?
19. घड़ियालों को राजस्थान के किस अभ्यारण्य में संरक्षित रखा गया है?

12.7 शब्दावली (Terminologies)

(1) जैव--विविधता:-- किसी क्षेत्र में उपस्थिति समग्र जीन, प्रजातियों एवं पारिस्थिकीय विविधता को जैव विविधता कहा जाता है ।

(2) वन्य जीव:-- सामान्य अर्थ में वन्य जीव शब्द जन्तुओं के लिए ही प्रयुक्त होता है, जो प्राकृतिक आवास में निवास करते हैं ।

(3) वन्यजीव कार्ययोजना (Wildlife Action Plan):– आदिवासियों एवं वन्यजीव विवादों से बचने एवं जैव विविधता को संरक्षित करने के लिए भारत सरकार ने पहली बार वन्यजीवन कार्ययोजना 1983 को बनाई थी जिसमें संशोधन करके अब नई वन्यजीवन कार्ययोजना (2002–2016) को स्वीकृत दी गई है ।

(4) स्वस्थाने संरक्षण:– यह संरक्षण की एक ऐसी विधि है जिसमें पादप व जन्तुओं का संरक्षण उनके प्राकृतिक आवास में ही किया जाता है ।जैसे प्राकृतिक रिजर्व, राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण्य आदि स्वस्थाने संरक्षण के उदाहरण हैं ।

(5) बहिर्स्थाने संरक्षण:-- संरक्षण की इस विधि में पादपों अथवा वन्य जीवों को उनके प्राकृतिक आवास से हटाकर कृत्रिम आवास में संरक्षण प्रदान किया जाता है । जीव जन्तु संग्रहालय पक्षी संग्रहालय, चिड़ियाघर, वनस्पति उद्यान एवं आनुवंशिक संसाधन केन्द्र आदि इसके उत्तम उदाहरण हैं ।

(6) अभ्यारण्य:-- वन्य जीवों के संरक्षण हेतु वे सुरक्षित प्राकृतिक क्षेत्र जिनमें वन्य जीवों को पकड़ने, मारने, शिकार करने या अन्य विनाशकारी गतिविधियां निषेद्ध हो अभ्यारण्य कहलाते हैं ।

(7) राष्ट्रीय उद्यान:-- राष्ट्रीय महत्व की प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक वस्तुओं, प्राकृतिक दृश्यों तथा वन्य जीवों के संरक्षण के उद्देश्य से स्थापित उनके प्राकृतिक आवासों को राष्ट्रीय उद्यान कहा जाता है।

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) राष्ट्रीय वन नीति, 1952 के अनुसार भारत में समृत विकास (Sustainable Development) के लिए न्यूनतम 33 प्रतिशत वन होने चाहिए ।

(2) चार मानव जनित कारण जो वन्य जीवन के विनाश के भागीदार हैं, निम्न हैं–

1. प्रदूषण
2. जनसंख्या विस्फोट
3. वनोन्मूलन तथा
4. अवैध शिकार ।

(3) वन्य जीव विनाश के दो प्राकृतिक कारण – ज्वालामुखी तथा सूखा ।

(4) किसी क्षेत्र में उपस्थिति समग्र जीन, प्रजातियों एवं पारिस्थिकीय विविधता को जैव विविधता कहा जाता है ।

(5) आदिवासी समुदाय के साथ वन्य जीव विवाद के दो उदाहरण निम्न हैं–

1. टिहरी बांध से विस्थापित आदिवासियों की समस्याएं ।
2. केरल के आदिवासियों की समस्याएं ।

(6) भारत सरकार ने पहली वन्यजीवन कार्ययोजना वर्ष 1983 में बनाई थी ।

(7) भारतीय वन्य जीवन बोर्ड का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है ।

(8) भारत में वर्तमान में 92 राष्ट्रीय उद्यान और 500 अभ्यारण्य हैं ।

(9) भारत के समस्त भौगोलिक क्षेत्र का 4.7 प्रतिशत भाग राष्ट्रीय उद्यान और अभ्यारण्य से घिरा हुआ हैं ।

(10) ऐसे विशेष क्षेत्र जिसमें अत्याधिक विशिष्ट जीव–जन्तु तथा पेड़–पौधे पाए जाते हैं जैव–विविधता धरोहर स्थल कहलाते हैं ।

(11) नई वन्यजीव कार्ययोजना 2002–2016 तक बनाई गई है ।

(12) जैव विविधता अधिनियम 2002 में बना था ।

(13) सीतामाता अभ्यारण्य में उड़न गिलहरी पाई जाती है ।

(14) सज्जनगढ़ अभ्यारण्य में सांभर, चीतल, चिंकारा, नीलगाय, जंगली सुअर, कृष्ण मृग, लंगूर आदि वन्य जीव पाये जाते हैं जबकि भैंसरोड़गढ़ अभ्यारण्य में बघेरा, जरख सांभर, गीदड़, चीतल, चिंकारा, नीलगाय, जंगली सुअर, लोमड़ी आदि वन्य जीव पाये जाते हैं ।

(15) जमवा रामगढ़ अभ्यारण्य राजस्थान के जयपुर जिले में स्थित हैं ।

(16) अलवर जिले के सरिस्का अभ्यारण्य में बाघ परियोजना संचालित की जा रही है ।

(17) ताल छापर अभ्यारण्य का मुख्य आकर्षण कृष्ण मृग हैं ।

(18) बन्ध बरेठा तथा सवाई मानसिंह अभ्यारण्य राजस्थान के क्रमश:: भरतपुर तथा सवाई माधोपुर जिलों मे स्थित है ।

(19) घड़ियालों को राजस्थान के कोटा जिले में स्थित राष्ट्रीय चंबल घड़ियाल अभ्यारण्य में संरक्षित रखा गया है ।

12.9 इकाई सारांश एवं अभ्यास कार्य

पृथ्वी पर अब तक ज्ञात जीवों प्रजातियों की संख्या लगभग 1.7 से 1.8 मिलियन के करीब है जो कि पृथ्वी पर उपस्थिति समस्त जीवों की संख्या का केवल 15 प्रतिशत ही है । पृथ्वी पर कुल अनुमानित प्रजातियों की संख्या लगभग 5 से 55 मिलियन है । आधुनिक मानव की अति उपभोग की विनाशकारी सोच के कारण पृथ्वी पर उपस्थित समस्त पारिस्थितिकी तंत्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दुष्प्रभावित हो रहे हैं । आज प्रतिवर्ष कई प्रजातियां विलुप्त होती जा रही हैं । अगर इसी तेजी से यह विनाश जारी रहा तो समस्त जीव प्रजातियों के साथ–साथ मानव का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जायेगा । अत: वन्य जीव संरक्षण के साथ संघृत विकास वर्तमान समय की प्रमुख आवश्यकता बन गया है ।

अभ्यास कार्य

1. राजस्थान के दो प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों के नाम लिखिये ।
2. निम्न अभ्यारण्य किन–किन जिलों में स्थित हैं तथा इनके स्थापना वर्ष भी लिखिये?
   (अ). तालछापर अभ्यारण्य (ब). सीतामाता अभ्यारण्य
   (स). नाहरगढ़ अभ्यारण्य (द). फुलवाड़ी की नाल अभ्यारण्य
   (य). वन विहार अभ्यारण्य
3. कोटा जिले में कितने वन्य जीव अभ्यारण्य हैं? नाम लिखिये ।

4. राजस्थान में कितने वन्य जीव अभ्यारण्य हैं । इनमें से प्रमुख पांच अभ्यारण्यों में संरक्षित जीव प्रजातियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो ।
5. वन्य जीवों की विलुप्ति के कारणों की व्याख्या कीजिए ।
6. जैव विविधता अधिनियम 2002 के प्रमुख प्रावधान लिखिए ।
7. अवैध शिकार किस प्रकार वन्य जीवन पर प्रभाव डालता है?
8. शहरी समुदाय किस प्रकार वन्य जीवन को प्रभावित करता है? संक्षिप्त टिप्पणी लिखो ।
9. कार्टाजीना संधि क्या है?

12.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. एस.सी. सान्त्रान : एन्वार्यनमेन्टल साईस ।
2. ई.पी. ओडम : ईकॉलोजी – ए ब्रिज बिटवीन साईस एंड सोसायटी ।
3. पी.डी शर्मा : ईकॉलोजी एंड एन्वार्यनमेंट ।
4. सिविल सर्विसेज टाईम्स, अगस्त 2005 ।
5. राजस्थान पत्रिका : हमारे अभ्यारण्य ।

इकाई – 13

प्रदूषण

POLLUTION

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 पर्यावरण प्रदूषण

13.3 वायु प्रदूषण –

13.3.1 वायु के घटक

13.3.2 प्राकृतिक वायु प्रदूषण

13.3.3 मानव जनित वायु प्रदूषण

13.3.4 वायु प्रदूषण के स्रोत

13.3.5 वायु प्रदूषण के कारण

13.3.6 वायु प्रदूषण के प्रभाव

13.3.7 वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय

बोध प्रश्न – 1

13.4 जल प्रदूषण –

13.4.1 जल प्रदूषण के कारण

13.4.2 जल प्रदूषण के स्रोत

13.4.3 जल के प्रदूषक तत्व

13.4.4 जल प्रदूषण के हानिकारक प्रभाव

13.4.5 जल प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय

बोध प्रश्न – 2

13.5 ध्वनि प्रदूषण

13.5.1 ध्वनि प्रदूषण के स्रोत

13.5.2 ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव

13.5.3 ध्वनि प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय

13.6 तापीय प्रदूषण –

13.6.1 तापीय प्रदूषण के कारण व प्रभाव

13.6.2 तापीय प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय

13.7 नाभिकीय प्रदूषण

13.7.1 नाभिकीय प्रदूषण के कारण

13.7.2 नाभिकीय प्रदूषण के प्रभाव

13.7.3 नाभिकीय प्रदूषण को रोकने के उपाय

13.7.4 प्रदूषण निवारण

बोध प्रश्न – 3

13.8 प्रदूषण केस अध्ययन – (भोपाल गैस त्रासदी)

13.9 सारांश

13.10 शब्दावली

13.11 संदर्भ ग्रंथ

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने से आप जान पायेंगे कि -

1. पर्यावरण प्रदूषण क्या है व यह कितने प्रकार का है ।
2. जल, वायु, मृदा, ध्वनि, तापीय व नाभिकीय प्रदूषण के क्या कारण है व इन प्रदूषणों के स्रोत क्या है?
3. पर्यावरण प्रदूषण के क्या हानिकारक प्रभाव हो सकते है?
4. इन पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने हेतु क्या–क्या उपाय संभव है?

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक युग में मानव जैसे–जैस प्रगति के अनेक सोपान तय कर रहा है, इसके साथ ही इस वैज्ञानिक युग के अभिशाप उसे ग्रसित करने लगे है । पर्यावरण प्रदूषण को संभवत: आज के समय का सबसे बड़ा अभिशाप कहा जा सकता है ।

बढ़ते हुए औद्योगिकरण, जनसंख्या वृद्धि व वनों के घटने के कारण पर्यावरण में अवांछनीय परिवर्तन हो रहे हैं जिसका दुष्प्रभाव सभी जीव जंतुओं पर पड़ रहा है इसे ही प्रदूषण कहते हैं इसका अध्ययन आज के सन्दर्भ में अति आवश्यक है ।

प्रदूषण (Pollution) का शाब्दिक अर्थ है 'गन्दा या अस्वच्छ करना' साधारण शब्दों में प्रदूषण पर्यावरण के जैविक तथा अजैविक तत्वों के रासायनिक, भौतिक तथा जैविक गुणों में होने वाला वह अवांछनीय परिवर्तन है जो कि मानवीय क्रिया–कलापों के कारण होता है । वस्तुत: प्रदूषण (Pollution) का मूलतात्पर्य शुद्धता के ह्रास (Detaioration of purity)ए से है । लेकिन वैज्ञानिक शब्दावली में पर्यावरण के संगठन Composition में उत्पन्न कोई बाधा जो सम्पूर्ण मानव जाति के लिये घातक हो, उसे प्रदूषण (Pollution) कहा जाता है ।

लार्ड केनेट के अनुसार "पर्यावरण में उन तत्वों या ऊर्जा की उपस्थिति को प्रदूषण कहते है, जो मनुष्य द्वारा अनचाहे उत्पादित किये गये हो ।

13.2 पर्यावरण प्रदूषण

ओडम (E.P.Odum) के अनुसार– प्रदूषण हवा, जल एवं मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैवकीय गुणों में एक ऐसा अवांछनीय परिवर्तन है कि जिसमें मानव जीवन, औद्योगिक प्रक्रियाएं, जीवन

दशाएं तथा सांस्कृतिक तत्वों की हानि होती है । उन सभी तत्वों तथा पदार्थो को जिनकी उपस्थिति से प्रदूषण उत्पन्न होता है, प्रदूषक (Pollutant) कहते है ।

13.2.1 प्रदूषक (Pollutant)

जीव मण्डल में संचरित विविध परिस्थितिक तंत्रों की प्राकृतिक संतुलन की अवस्था में असंतुलन उत्पन्न करने वाले कारकों या तत्वों को प्रदूषक कहते है । ये मानवीय क्रिया कलापों के उप उत्पाद होते हैं । उत्पत्ति एवं स्त्रोत के आधार पर प्रदूषक दो प्रकार के होते है –

(1) प्राकृतिक प्रदूषक (Natural Pollutant)

(2) मानव निर्मित (Man-made Pollutant)

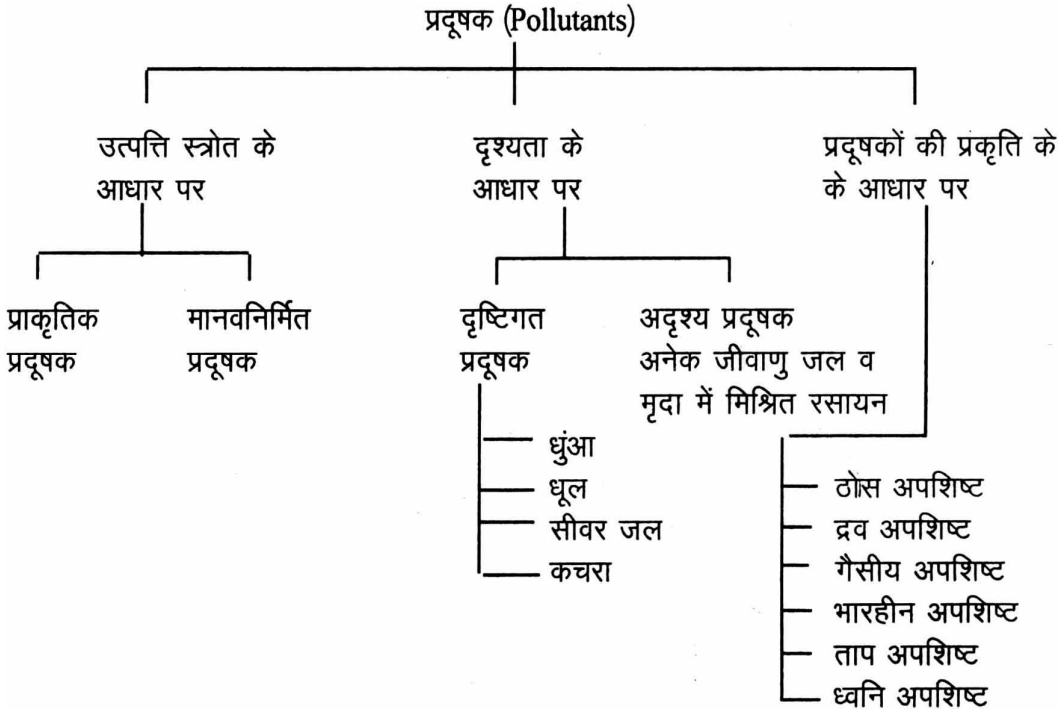

(1) ठोस अपशिष्ट (Solid Wastes) – ये औद्योगिक अपशिष्ट होते है, जिन्हें सामान्य भाषा-में कूड़ा कर्कट (Garbage) कहते है । ये कचरा रसोई, मासघरों डिब्बा, बोतल, उद्योग आदि से निःसृत होता है । उद्योगों व घरों से प्राप्त राख, इमारतें तोड़ने से उपलब्ध मलबा, प्लास्टिक, मृत जन्तुओं के कंकाल, खनिजखानों से निकले अपशिष्ट आदि इनमें शामिल है ।

(2) द्रव अपशिष्ट (Liquid Wastes) – इनमें घरों से निकले जल, मलमूत्र व इसके साथ बहकर आये मृदा कणों औद्योगिक अपशिष्ट को सम्मिलित किया जाता है ।

(3) गैसीय अपशिष्ट (Gaseous Wastes) – इनमें CO, SO_2, NO2 तथा धूल, कोहरे (Smogases) में मिश्रित हाइड्रोकार्बन गैसे सम्मिलित है ।

(4) भारहीन अपशिष्ट (Weightless Wastes) – इनमें अदृश्य ऊजा अपशिष्ट (Non-visible energy waste) को सम्मिलित किया जाता है ।

(5) ताप अपशिष्ट (Heat Waste) – विभिन्न औद्योगिक संस्थानों से निःसृत अत्याधिक गर्म जल, द्रव अपशिष्ट व तप्त गैसे सम्मिलित है ।

(6) ध्वनि अपशिष्ट (Noise Waste) – अवांछनीय ध्वनि इस वर्ग का प्रमुख अपशिष्ट है जो अदृश्य भी होती है ।

परिस्थितिकीय दृष्टिकोण से ओडम (E.P.Odum) ने प्रदूषकों को निम्न दो वर्गो में विभक्त किया है:–

(1) अविघटनीय प्रदूषक (Non-degradable Pollutant)

(2) जैव विघटनीय प्रदूषक (Biodegradable Pollutant)

(1) अविघटनीय प्रदूषक (Non-degradable Pollutant) – ऐसे औद्योगिक पदार्थ जो प्राकृतिक (भौतिक), रासायनिक व जैव रासायनिक क्रियाओं द्वारा विघटित नहीं होते । परिणामस्वरूप इनका पुन: चक्रीकरण नहीं होता तथा यह खाद श्रृंखला में प्रविष्ट होकर हानिकारक प्रभाव प्रकट करते है । इनमें से ये प्रमुख हैं –फिनोलिक यौगिक, डी.डी.टी, बी.एच.सी, एन्ड्रिन तथा टोक्साफिन प्रमुख है ।

(2) जैव विघटनीय प्रदूषक (Biodegradable Pollutant) – ये प्रदूषक अधिकांशत: जीव जन्तुओं और वनस्पतियों की जैविक क्रियाओं से उत्पन्न होते है । इनमें घरेलू अपशिष्ट जैसे मलमूत्र, अन्त, शाक व फलों के अंश आदि सम्मिलित है । इनका अनुपात विघटन दर से अधिक होने पर ये प्रदूषण का कार्य करने लग जाते है ।

13.2.2 प्रदूषण के स्त्रोत (Sources of Pollution)

प्रदूषण करने वाले प्रदूषकों के स्त्रोत उत्पति के आधार पर दो प्रकार होते है :–

(1) प्राकृतिक स्त्रोत (Natural Sources)

(2) मानवीय स्त्रोत (Human Sources)

(1) प्राकृतिक स्त्रोत (Natural Sources) – इस वर्ग में प्राकृतिक क्रियाओं के दौरान निःसृत प्रदूषक तत्वों को सम्मिलित किया जाता है । इनमें ज्वालामुखी, राख एवं धूल, भूकम्पीय घटनाओं के दौरान आने वाले धरातलीय परिवर्तन से उत्पन्न तत्व, बाढ़, सूखा, मृदा अपरदन, चक्रवातीय तूलन आदि से उत्पन्न तत्व प्रमुख है ।

(2) मानवीय स्त्रोत (Human Sources) – प्रदूषण के मानव जनित स्त्रोतों में कई स्त्रोतों को सम्मिलित किया गया है जो इस प्रकार है -

(i) औद्योगिक बहि: स्त्राव (Indurtial Effluents)

(ii) घरेलू बहि: स्त्राव (Domestic Effluents)

(iii) वाहित मल (Sewage)

(iv) कृषि बहि: स्त्रोत (Agricultural Effluents)

(अ) तेलीय स्त्रोत (Oil Pollutant)

(v) तापीय स्त्रोत (Thermal Sources)

(vi) रेडियोधर्मी अपशिष्ट (Radioactive Waste)

(vii) दहन क्रिया (Combustion Process)

(viii) नगरपालिका अपशिष्ट (Muncipal Waste)

(ix) खनन अपशिष्ट (Mining Waste)

(x) परिवहन के साधन (Means of Transportation)

(xi) मनोरंजन के साधन (Means of Entertainment)

(xii) सामाजिक क्रिया–कलाप (Social activities)

13.2.3 प्रदूषक के प्रकार (Types of Pollutants)

प्रकृति में विभिन्न रूगों में प्रदूषण पाया जाता है जिनका वर्गीकरण प्रदूषक तत्वों, प्रदूषण के स्त्रोतों तथा विसरण प्रक्रिया के आधार पर किया जा सकता है । इस आधार पर निम्न प्रकार के प्रदूषक पाये जाते है ।

प्रदूषको के स्वरूप के आधार पर दो प्रकार का पर्यावरण प्रदूषण होता है :–

(1) भौतिक या प्राकृतिक प्रदूषण तथा (2) सामाजिक या सांस्कृतिक प्रदूषण

भौतिक प्रदूषण पर्यावरण के भौतिक घटकों जल, वायु, इस आदि में पाया जाता है जिस आधार पर इन्हें जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण व मृदा प्रदूषण कहा जाता हैं । इसी प्रकार संस्कृति में प्रदूषण को भी निम्न में विभाजित किया जाता है ।

(1) आर्थिक प्रदूषण (गरीबी व बेरोजगारी)

(2) राजनीतिक प्रदूषण (युद्ध आदि)

(3) धार्मिक प्रदूषण (धार्मिक आधार पर हिंसा)

(4) सामाजिक प्रदूषण (अपराध, लूट, डकैती)

औद्योगिक क्षेत्रों का प्रदूषण, कृषि प्रदूषण, धार्मिक पर्यटक स्थलों का प्रदूषण आदि रूपों में विभक्त किया जा सकता है ।

(1) तापीय प्रदूषण (2) रेडियोएक्टिव प्रदूषण

13.2.4 प्रभाव (Effect)

विकिरण का वातावरण व जीवों के शरीर पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । विकिरण गुणसूत्रों व जीनों में पहुंचकर घातक उत्परिवर्तन पैदा कर सकते है । विकिरणो से ल्यूकेमिया, अस्थि कैंसर, बंध्यता आदि कायिक प्रभाव हो सकते है । 1000 से अधिक रोन्टेजन के विकिरण से आत्र मृत्यु व 3000 से अधिक रोटेजन से अधिक विकिरण से केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र की मृत्यु हो जाती है । डी. एन.ए. को प्रभावित कर वंशानुगत रोग हो सकते हैं । उदाहरण– जापान के हिरोशिमा व नागासाकी की घटना तथा रूस में 1986 सोवियत संघ के यूक्रेन प्रान्त में चेरेनोबिल परमाणु बिजलीघर में परमाणु दुर्घटना हुई ।

13.3 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

13.3.1 वायु के घटक

वायु जीवन का आधार है क्योंकि वायु में उपस्थित आक्सीजन पर ही जीवन निर्भर हैं । वायु अनेक गैसों का आनुपातिक सम्मिश्रण है । नाइट्रोजन, आक्सीजन, आर्गन, कार्बनडाइ आक्साइड आदि

विभिन्न गैसों का अनुपात निश्चित- होता है । इन विभिन्न गैसों के अनुपात में किसी भी प्रकार के परिवर्तन से वायु प्रदूषण होता है ।

"विश्व स्वास्थ्य संगठन" (W.H.O) के अनुसार वायु के उपरोक्त घटकों में परिवर्तन तथा इसमें दूषित पदार्थो की मात्रा हानिकारक स्तर तक पहुंच जाये तो वायु प्रदूषित हो जाती है, इस परिवर्तन को वायु प्रदूषण कहते है । उत्पात के आधार पर वायु प्रदूषण को दो प्रकारों में विभक्त कर सकते है-

1. प्राकृतिक / प्रकृति जनित वायु प्रदूषण
2. मानव जनित / कृत्रिम वायु प्रदूषण

13.3.2 वायु प्रदूषण के स्त्रोत

वायु को विभिन्न प्रकार के तत्व प्रदूषित करते है जिन्हें निम्न रूपों में वर्गीकृत करते है ।

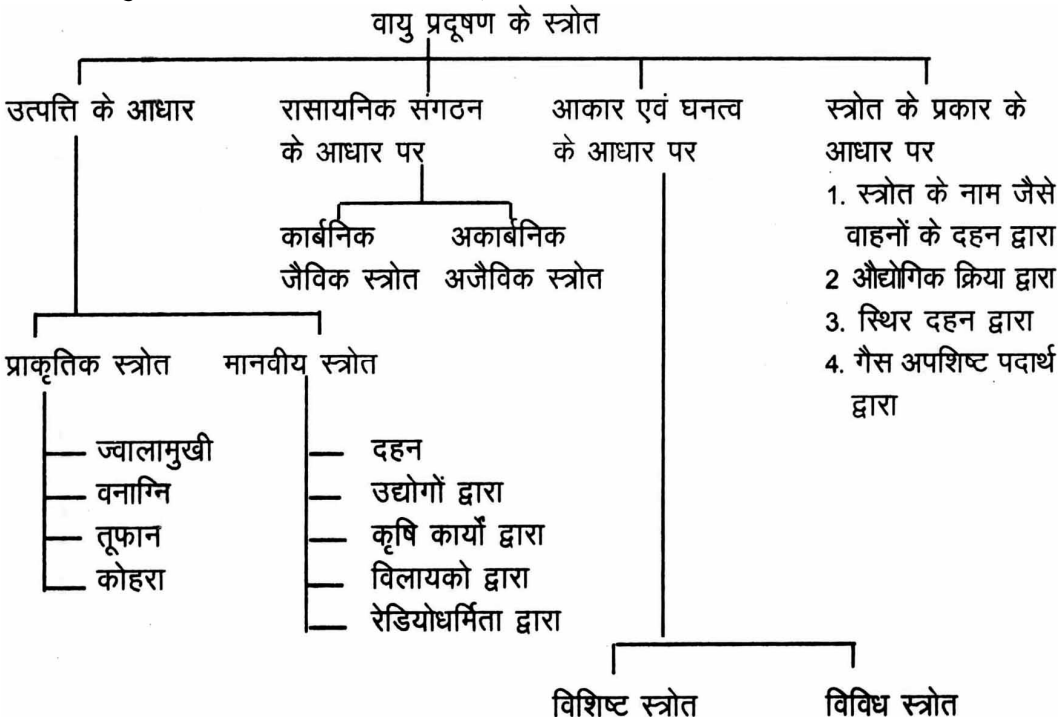

अन्य स्त्रोत (Other Sources) :– कच्ची एवं टूटी–फूटी सड़कों पर वाहनों द्वारा धूल उड़कर वायुमण्डल में पहुंच जाती है । इसके अतिरिक्त सार्वजनिक स्थानों, सिनेमाघरों तथा नाट्यघरों इत्यादि में बैठे लोगों द्वारा किया जाना वाला धूम्रपान भी वायु प्रदूषण का कारण बन जाता है । अनेक जैविक क्रियाओं (Biological Process) जैसे– मवेशियों, भेड़, बकरियों तथा अन्य जानवरों के शरीर से बनने वाले खमीर (Fermentation) के दौरान, मिथेन (CH_4) का सान्द्रण होता है जो वायु प्रदूषण को बढ़ाती है ।

13.3.3 वायु प्रदूषण के कारण (Causes of Air Pollution) :–

ज्वालामुखी से निकली राख, वनों में लगी आग से उत्पन्न धुआ, आधी तूफान से उड़ती धूल, कोहरा, धुंध तथा विभिन्न प्रकार की गैसे पर्यावरण को प्रदूषित करती है । वायु प्रदूषण का मुख्य कारण

मानवीय क्रिया कलाप है । विकास की आर्थिक दौड़ में शामिल होकर मनुष्य पर्यावरणीय सीमा को लांघते हुए वायु प्रदूषण को बढ़ावा दे रही है ।

वायु प्रदूषण कई कारणों से होता है जिनका वर्णन इस प्रकार है :–

1. घरेलू कार्यो के लिए प्रयुक्त होने वाली ऊर्जा, कोयला, लकड़ी, गोबर के कण्डे, मिट्टी का तेल, कुकिंग गैस आदि के दहन से कार्बन मोनो आक्साइड, सल्फर डाइ आक्साइड आदि गैसे उत्पन्न हो जाती है और वायु प्रदूषण करती है ।
2. वायु प्रदूषण के लिये वाहन अधिक उत्तरदायी है । मोटरकारों, मोटर साइकिलों, स्कूटरों, ट्रको, बसों, रेलगाड़ियों आदि सभी के लिए डीजल, पेट्रोल इत्यादी ईधन प्रयोग में लाये जाते है इनमें भारी मात्रा में दम घोटने वाला धुआ निकलता है और वायु को प्रदूषित. करता है ।
3. कूड़े-कचरे के सड़ने तथा शौचालयों की सफाई न करने पर वायु प्रदूषण होता है ।
4. परमाणु बमों के निर्माण में जिन तत्वों का प्रयोग होता है वे बम विस्फोट के साथ वायु मण्डल में दूर–दूर फैल जाते है तथा बाद में धीरे–धीरे पृथ्वी पर अवपात के रूप में गिरते है । इस प्रक्रिया में समय लगता है । अत: इनका प्रभाव भी लम्बे समय तक रहता है ।
5. कोयले से चलने वाले बिजलीघरों में जो कोयला जलता है उसकी राख अपशिष्ट के रूप में बिजलीघरो से बाहर फैंक दी जाती है यह राख हवा के द्वारा उड़कर वायु को प्रदूषित करती है ।
6. कृषि कार्यो (Agriculture Operations) के दौरान अनेक कीटनाशकों का प्रयोग होता है । कीटनाशकों के छिड़काव (Spray) से अनेक हानिकारक क्पृटिनाशक वायुमण्डल में मिल जाते हैं । कई देशों में इनका छिड़काव हैलीकाप्टर तथा छोटे विमानों द्वारा भी किया जाता है । सूक्ष्म कणों तथा वाष्प रूप में वायु में व्याप्त कीटनाशी रसायनों से आखों तथा श्वसन अंगों को सर्वाधिक हानि होती है । अत: छिड़काव में सावधानी रखनी चाहिये । कृषि सम्बन्धी अन्य कार्यो जैसे खेत का कूड़ा–करकट जलाने, अनाज की उडावनी आदि से भी वायु प्रदूषण फैलता है ।
7. औद्योगिक कल कारखानों से धुआं, गैस एवं कुछ कणमय पदार्थ निकलते है जो वायु को प्रदूषित करते है । वायु प्रदूषण प्रमुख रूप से कपड़ा बनाने वाले कारखानों, रासायनिक उद्योगों, तेल शोधक कारखानों, धातुकर्म सम्बन्धी तथा गत्तों का निर्माण करने वाले कारखानों से बहुत अधिक CO_2, CO एवं H_2S गैस तथा सीसा, जिंक, पारा आदि वायुमण्डल में पहुंचता है जिससे वायु प्रदूषण होता है ।
8. फर्नीचर की पॉलिश व स्प्रे पेन्ट आदि में हाइड्रोजन होते है । जब फर्नीचर की पॉलिश की जाती है तो हाइड्रोजन पदार्थ के सूक्ष्म कण वायु में मिल जाते है तथा वायु को प्रदूषित करते है ।
9. मृत जीव–जन्तुओं को यदि सही समय पर सही रूप से नष्ट न किया जाये तो इनके द्वारा कार्बन मोनो ऑक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड व क्लोराइड मुख्य रूप से उत्सर्जित होते है, जिनके प्रभाव से हरे–भरे पेड़–पौधे नष्ट हो जाते है ।
10. लौह, अयस्क और कोयलों की खानों से उड़ती हुई धूल में कई विषैले खनिरज होते है जिनसे अनेक प्रकार के रोग फैलते है ।
11. रेडियोधर्मिता द्वारा (By Radioactivity) परमाणु तत्वों को विभिन्न प्रयोजनों में उपयोग करने के दौरान रेडियोधर्मिता से वायु प्रदूषण फैलता है । परमाणु बमों के निर्माण में विघटनाभिक

समस्थानिक (Radioactive isotopes) तत्वों का उपयोग होता है । परमाणु बम विस्फोट के साथ ही विघटनाभिक समस्थानिक पदार्थ वायुमण्डल में दूर–दूर तक फैलकर अपना दुष्प्रभाव छोडते है । इसका ज्वलंत उदाहरण 1945 में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा जापान के हिरोशिमा (6 अगस्त 1945) तथा नागासाकी (9 अगस्त 1945) शहरों पर परमाणु बम का विस्फोट है जिसके ज्वलन्त प्रभाव अब तक दृष्टिगत हो रहे है ।

13.3.4 वायु प्रदूषण का प्रभाव (Effect of Air Pollution)

पर्यावरण में वायु प्रदूषकों से वायु मण्डल की स्वच्छ व शुद्ध वायु के गुणों में काफी परिवर्तन हो जाते है इससे प्रकृति एवं जीव जगत के लिये कई प्रकार के खतरे एवं समस्याएं उत्पन्न हो जाती है । वातावरण में कोहरा एवं आद्रता की उपस्थिति वायु प्रदूषण का कारण बनती है । द्वितीयक वायु प्रदूषक जैसे PAN आदि मनुष्यों के साथ–साथ जीव समस्त जगत के लिये काफी हानिकारक होते है।

वायु प्रदूषण के कारण कई ऐतिहासिक एवं पर्यटन दृष्टि से महत्वपूर्व स्मारक एवं इमारतें नष्ट होती जा रही है, जिसकी वजह से राष्ट्र की आर्थिक स्थिति पर भी विपरीत असर पड़ता है । वायु प्रदूषण मनुष्यों के साथ–साथ पेड़ पौधों जीव–जन्तुओं पर भी घातक प्रभाव डालते है जिनका वर्णन इस प्रकार है –

1. **मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effects on human health) --** वायु प्रदूषण का मानव के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । मानव के श्वसन तंत्र (Respiratory System) को प्रभावित कर कई प्रकार के रोग उत्पन्न करता है जैसे दमा, निमोनिया, तपेदिक, सिरदर्द, उल्टी, जुकाम, खासी, आंखों में एलर्जी, फेफड़ों का कैंसर आदि इन रोगों के मुख्य कारण निम्न गैसों का वायु में अधिक मात्रा में उपस्थिति है :– कार्बन मोनोक्साइड (CO) सीसा (SM Pb), सल्फर डाइ आक्साइड (SO_2), नाइट्रोजन के आक्साइ (NO_x) हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2,S), अमोनिया (NH_3)

2. **वनस्पति पर प्रभाव (Effect on Vegetation) :--** वायु प्रदूषण के कारण होने वाली अम्लीय वर्षा, धूल, कोहरा, ओजोन, कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाइ आक्साइड, क्लोराइड आदि का वनस्पति पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं । प्रदूषित वायु के कारण सूर्य के प्रकाश की मात्रा में कमी आती है जिससे पौधों की प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है । वायु प्रदूषित क्षेत्रों में वर्षा के जल में विभिन्न प्रकार की गैसें तथा विषैले पदार्थ घुलकर पृथ्वी पर आ जाते है जिनके पौधे की की जड़ों में पहुंचने से हरे भरे पौधे नष्ट हो जाते है । वायु प्रदूषण से सब्जी व फलों के उत्पादन के साथ साथ कृषि फसलों का उत्पादन भी प्रभावित होता है ।

3. **जीव--जन्तुओं पर प्रभाव (Effect on animals) :--** वायु प्रदूषण जन्तुओं के श्वसन तंत्र तथा तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है । मोटर वाहनों के धुएं से तथा घास पर विभिन्न प्रकार के क्लोराइड यौगिकों के अवपात से जिसे चारे के रूप में पशु खाते हैं इन फ्लोराइड यौगिकों के उनके शरीर में पहुंचने से उनके दांतों व हड्डियों में फ्लोरोसिस हो जाता है । इससे उनका वजन घटता है तथा पैर में लंगड़ापन आ जाता है ।

4. **वायुमण्डल व जलवायु पर प्रभाव (Effect atmosphere and Climate) :-** वैज्ञानिकों के अनुसार बाढ़ तथा सूखे का कारण वायु प्रदूषण ही है । वायुमण्डल में कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा का 2 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ने से पृथ्वी के तापमान में 10°c की वृद्धि के कारण अन्टार्कटिक ध्रुवों

के विशाल हिमखण्ड पिघल जायेगें और समुद्र की सतह सात सौ मीटर ऊंची हो जायेगी । फलस्वरूप सारी पृथ्वी जल मग्न हो जायेगी । वायु प्रदूषण से ओजोन परत या ह्रास हो रहा है । ओजोन परत के पतली होने के कारण प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति त्वचा कैंसर, मोतियाबिन्द इत्यादि बीमारियों से पीड़ित हो रहे है तथा फसलों की उत्पादकता कम हो रही है । घातक पैराबैंगनी किरणें मनुष्य में आनुवांशिक परिवर्तन एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता को घटाती है ।

5. **ऐतिहासिक इमारतों पर प्रभाव (Effect on historical buildings) :–** वायु प्रदूषण से ऐतिहासिक इमारतें विशेषकर जो संगमरमर की बनी हुई है या जिनमें कांसे का उपयोग किया हुआ है, बुरी तरह प्रभावित हो रही है । मथुरा रिफाइनरी की एसिड लपटों के कारण ताजमहल तथा मथुरा के मन्दिर एवं दिल्ली रेल्वे स्टेशन के इंजनों के धुंए तथा बिजलीघर की कौयंले की राख से लाल किले का पत्थर भी प्रभावित हो रहा है ।

13.3.5 वायु प्रदूषण को रोकने के उपाय (Measure to control Air Pollution)

वायु प्रदूषक मुख्यत: गैसीय अथवा कणीय पदार्थ होते है इन्हें अवशोषण, अधिशोषण एवं ज्वलन आदि से नियंत्रित कर सकते है । निलम्बित कणिकामय पदार्थो (SPM) को नियंत्रित करने के लिये कई विधियां प्रयुक्त की जाती है जैसे –

1. यांत्रिक विधियों द्वारा
2. फेब्रिक फाइवर द्वारा
3. गीले स्क्रबर द्वारा
4. स्थिर विद्युत अवक्षेपित द्वारा
5. घरों व सडको के किनारे वृक्षारोपण (Green Belt) द्वारा
6. प्रदूषको को काफी ऊंचाई पर मुक्त करना ।

वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिये प्रभावी उपाय इस प्रकार से है –

1. मोटर वाहनों के प्रदूषण की नियमित जांच होनी चाहिये एवं पुराने वाहनों को प्रतिबंधित कर देना चाहिए ।
2. सर्वाधिक प्रदूषण हनों द्वारा होता है अत: वाहनों से उत्पन्न धुंए पर छलनी तथा पश्च ज्वलक (After burner) लगाया जाना चाहिये तथा वाहनों में उपयोग में लिया जाने वाला डीजल संयोजी पदार्थो के मिश्रण युक्त होना चाहिये ।
3. घरों में कुकिंग गैस सौर ऊर्जा से चलित चूल्हा के उपयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिये । क्योंकि कोयले लकड़ी एवं कण्डों जलाने से धुआं उत्पन्न होता है तथा स्मोक फ्री चूल्हों का प्रयोग करना चाहिए ।
4. कल कारखानों से धुआं निकलने के लिये चिमनियों ऊंची होनी चाहिये तथा बैग फिल्टर उपकरण का इस्तेमाल करना चाहिये ।
5. उद्योगों की स्थापना घनी आबादी क्षेत्रों से दूर की जानी चाहिये । नवीन उद्योग स्थापित करने से पूर्व प्रदूषणकारी क्रिया विधियों के प्रबन्ध को ध्यान में रखकर निर्धारित मापदण्डों के अन्तर्गत ही स्थापित किया जाना चाहिए ।
6. उद्योगों से निःसृत हानिकारक वायु प्रदूषण को शोधन करना चाहिये इसके लिऐ नवीन प्रौद्योगिकी की सहायता लेनी चाहिये ।
7. प्राणघातक प्रदूषण करने वाली सामग्रियों तथा तत्वों के उत्पादन एवं उपभोग पर तुरन्त रोक लगानी चाहिये ।

8. परिवहन व्यवस्था में सुधार लाते हुए कोयले से चलने वाली रेलों की जगह विद्युत चालित इंजनों वाली रेलगाड़ियों का. प्रयोग किया जाना चाहिये ।
9. प्राणघातक प्रदूषण करने वाली सामग्रियों तथा तत्वों के उत्पादन एवं उपयोग पर तुरन्त रोक लगानी चाहिये जैसे ओजोन परत को हानि पहुंचाने वाली गैस क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC) आदि के उपयोग एवं उत्पादन में भारी कटौती की जानी चाहिये ।
10. वनोन्मूलन को नियंत्रित करके वनरोपण के कार्य को तीव्र करना चाहिये । अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों के अनुसार यदि किसी क्षेत्र के 33 प्रतिशत या इससे अधिक भाग पर अनावरण है तो प्रदूषण की तीव्रता परिलक्षित नहीं होती ।
11. वनाग्नि तथा अन्य प्रकार के अग्नि काण्डों पर तुरन्त नियंत्रण की व्यवस्था होनी चाहिये । संवेदी (Remote Sensing) तकनीक की सहायता से निगरानी रखकर प्रबन्ध किया जा सकता है ।
12. मोटर वाहनों पर क्षमता से अधिक वजन नही लादा जाना चाहिये तथा इनके धुएं से निकलने वाली CO को नियंत्रित करना चाहिए ।
13. शिक्षा व सूचना के माध्यम से आम जनता को वायु प्रदूषण के घातक दुष्प्रभावों की जानकारी देकर जन चेतना जागृत करनी चाहिए ।
14. औद्योगिक प्रदेशों के चारों ओर हरित पट्टी (Green Belt) का विकास किया जाना चाहिये ।

वायु प्रदूषण की समस्या अब स्थानीय न होकर विश्व स्तरीय हो गई है, अत: इसके नियंत्रण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्लेटफार्म पर सभी को समान प्रयास करने होंगें इस हेतु विश्व स्तर पर विगत तीन दशकों से अच्छे प्रयास हो रहे हैं । भारत में राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिक अनुसंधान संस्थान (National Environment Engineering Research Institute - NEERI) नागपुर, परमाणु ऊर्जा आयोग (Atomic Energy Commission) तथा अनेक स्वयं सेवी एवं गैर सरकारी संगठन (NGO's)ए वायु प्रदूषण पर नियंत्रण से सम्बन्धी शोधकार्य में सलग्न है । इसी सभी प्रयासों में गयु प्रदूषण' के प्रति जनचेतना जाग्रत होगी जिससे प्रदूषण की समस्या का समाधान हो सकेगा।

बोध प्रश्न - 1 (बहुचयनात्मक प्रश्न)

1. वायु में नाइट्रोजन का प्रतिशत होता है ?
   (अ) 78.084% (ब) 0.934% (स) 20.946% (द) 6.011%( )
2. अकार्बनिक गैसीय वायु प्रदूषक हैं ?
   (अ) मीथेन (ब) ईथेन (स) प्रोपेन (द) ओपोन ( )
3. PAN का अर्थ हैं ?
   (अ) परऑक्सी एसिटाइल नाइट्रेट (ब) परऑक्सी एल्डीहाइड नाइट्रेट
   (स) परआक्सी अमोनिया नाइट्रेट (द) कोई नहीं ( )
4. वायु प्रदूषण पैदा करने वाले स्रोत हैं?
   (अ) धुंआ (ब) गैस(स) धूल (द) उपर्युक्त तीनों ( )
5. यदि पृथ्वी की सभी वनस्पतियां समाप्त हो जाये तो वायुमण्डल में किस गैस की कमी जायेगी ?

(अ) नाइट्रोजन (ब) CO_2 (स) जलवाष्प (द) आक्सीजन ( )

13.4 जल प्रदूषण की परिभाषा (Defination of Water Pollution)

जल प्रदूषण मानवीय कारणों से भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में होने वाला परिवर्तन हैं, जिसके फलस्वरूप जल जनस्वास्थ्य, मनुष्य तथा पशुओं के पीने के लिए और उद्योग, कृषि व अन्य उपयोगों के लिये अयोग्य, हानिकारक तथा रोग जनक बन जाता है । जल-प्रदूषण को परिभाषित करते हुए सी.एस आइथविक (1976) ने लिखा है कि मानवीय क्रिया कलापों तथा प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा जल के रासायनिक भौतिक तथा जैविक गुणों में परिवर्तन को जल प्रदूषण कहते है । अत: पृथ्वी तल पर वासित जीव–जन्तुओं के लिये आवश्यक संतुलित जल में अवांछनीय तत्वों के हस्तक्षेप से गंदगी आ जाती है, जिससे वह जल प्रदूषित हो जाता है एवं जीव जन्तुओं के लिये उपयोग योग्य नहीं रहता है । इसका प्रभाव वर्तमान समय में भूसतही जल स्त्रोतों व समुद्रों में भी दृष्टिगत हो रहा है ।

13.4.1 जल प्रदूषण के कारण एवं प्रकार

जल प्रदूषण की प्रकृति एवं प्रकार कई कारकों से सम्बन्धित हैं । जल में प्रदूषण जिन कारकों से उत्पन्न हुआ है उनके आधार पर जल प्रदूषण चार प्रकार का होता है :–

(1) सीवेज प्रदूषण (2) घरेलू अपशिष्ट जल प्रदूषण

(3) औद्योगिक अपशिष्ट जल प्रदूषण (4) ठोस अपशिष्ट जल प्रदूषण आदि ।

प्रकृति के आधार पर भी जल प्रदूषण चार प्रकार का होता है :–

(1) भौतिक प्रदूषण :–इसमें जल भी गंध तापमान रंग, घनत्व, स्वाद, उष्मीय गुणों में परिवर्तन होता है ।

(2) रासायनिक प्रदूषण :– जल में विविध उद्योगों तथा अन्य स्त्रोतों से मिलने वाले रासायनिक कारकों व पदार्थो के कारण होता है ।

(3) क्रियात्मक प्रदूषण :– जल के गुणों में होने वाले उन परिवर्तनों के उपरान्त होता है, जो मानवीय क्रिया विधि पर हानिकारक रूप से प्रभाव डालते है ।

(4) जैव प्रदूषण :– कुछ हानिकारक जलीय जीवों के कारण उत्पन्न होता है जो विभिन्न स्त्रोतों से जल में प्रवेश करते है, तत्पश्चात् जीवाणुओं में बैक्टीरिया, कॉलीफार्म, शैवाल तथा वाइरस आदि प्रमुख है । सामान्य रूप से जल की गुणवता सम्बन्धी निर्धारण ऑक्सीजन तथा रासायनिक ऑक्सीजन की जैविक मांग, घुलित ऑक्सीजन तथा के Ph के आधार पर किया जाता है । जल प्रदूषण का वर्गीकरण सामान्य रूप से जल स्त्रोतों के आधार पर किया जाता है जिनका विवरण इस प्रकार है :-

13.4.2 जल प्रदूषण के स्त्रोत

प्रकृति में स्वतंत्र रूप से पा ये जाने वाले अमूल्य तत्व जल की अपनी गुणवत्ता होती हैं अनेक अवांछित तत्व इस गुणवत्ता में ह्रास करते है जिन्हें जल प्रदूषक कहा जाता है । कुछ प्राकृतिक कारकों द्वारा भी जल प्रदूषण उत्पन्न होता है जिसका वर्णन इस प्रकार है–

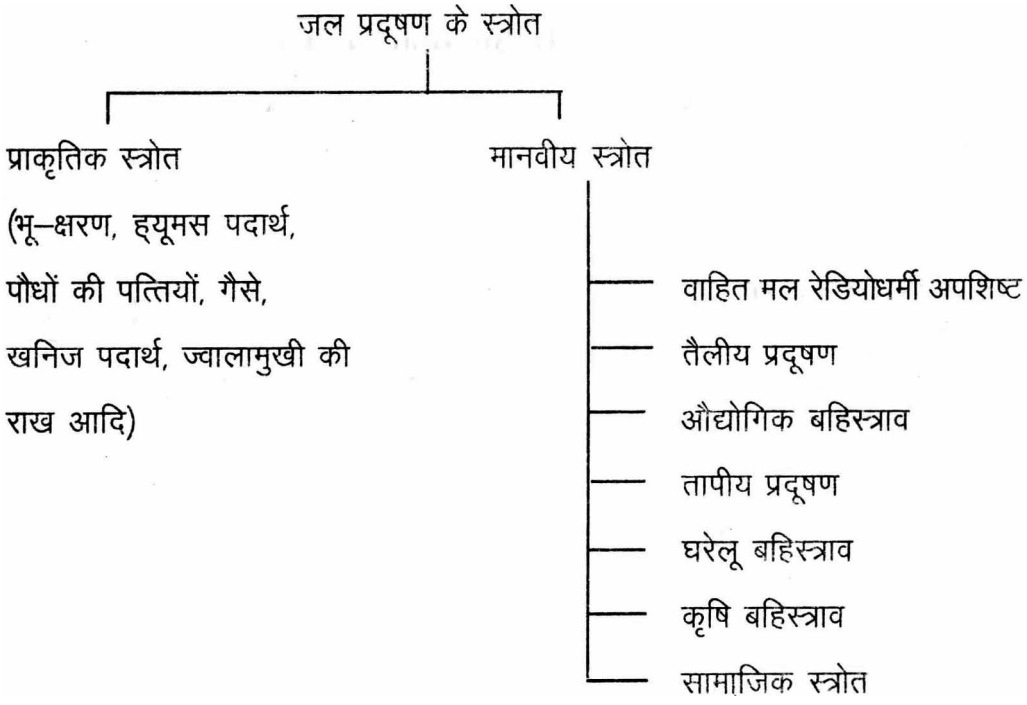

13.4.3 जल के प्रमुख प्रदूषण तत्व (Important Water Pollutant)

जल को प्रदूषित करने वाले प्रदूषक तत्वों का वर्णन इस प्रकार है ।

(1) पारा -- पारा औद्योगिक एवं कृषिगत बहि स्त्रावों से मुख्यतया जल में प्रवेश करता है । एक प्रोटोप्लारिमक प्रकृति का विषैला तत्व है । इसका सीधा प्रभाव मानव शरीर में गुर्दा, लीवर, प्लीहा, हड्डियों में संचित होकर हानि पहुंचाता है । इसमें अम्लीय पारा अधिक जहरीला होता है इसके कारण मसूड़ों एवं मुंह पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है ।

(2) सीसा -- पानी में सीसे मात्रा ओद्योगिक अपशिष्टों से बढ़ती है जो एक जहरीला पदार्थ होने के कारण विभिन्न बीमारियों के माध्यम से जनस्वास्थ्य को प्रभावित करता है ।

(3) जस्ता -- औद्योगिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप जल में मिश्रित जस्ते के यौगिक हानिकारक प्रभाव छोड़ते है, जिनमें जिंक आक्साइड व जिंक क्लोराइड प्रमुख है । जल में जिंक क्लोराइड की मात्रा अधिक होने पर ये फेफड़ों को खराब कर देते है ।

(4) फ्लोराइड -- जल में फ्लोराइड की मात्रा 1 पी.पी.एम. से अधिक नही होनी चाहिये इससे अधिक मात्रा में फ्लोराइड युक्त जल का सेवा करने पर मानव शरीर में दांतों की बीमारी, शारीरिक अंगों में विकृति, हड्डियों को टेडा मेडा होना, खून में कमी तथा वजन घटने जैसे हानिकारक प्रभाव दृष्टिगत होते है । भारत में सबसे ज्यादा लोराइड की मात्रा पश्चिमी राजस्थान के भू–जल में पाई जाती है, जिससे शारीरिक विकृतियां आ गई है ।

(5) सोडियम -- एक यौगिक के रूप में मिलता है जिसका कारण उसकी सक्रियता है । अत: इसका दुरूप्रभाव केवल धन आयन के कारण संभव हैं

(6) फिनोल -- यह अत्यन्त जहरीला कार्बनिक पदार्थ है जिसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव त्वचा पर पड़ता है । ये मानव शरीर में गुर्दे, यकृत, प्लीहा, फेफड़ों को भी प्रभावित करता है ।

(7) नाइट्राइट -- नाइट्राइट की अधिक मात्रा युक्त जल का उपयोग करने से शिशुओं (Blue Baby) में बीमारी होती है जिससे उन्हें उल्टियां होती है व त्वचा का रंग गहरा हो जाता है । यह खतरनाक है ।

(8) आरमेनिज्म (पैथेसेनिक जीवाणु) – ये जल में प्रवेश कर मानव शरीर पर घातक प्रभाव छोड़ते है । इनसे हैजा, मोतीझरा, निमोनिया तथा इन्फलूएंजा आदि रोग फैलते है जो कभी–कभी विस्तृत स्तर पर महामारी का रूप धारण कर लेते है ।

13.4.4 जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव

जल के प्राकृतिक स्वरूप में विभिन्न अवांछित तत्वों के सीमा से अधिक मात्रा में मिश्रित होने पर अवनति (Deterioration) आ जाती है जिसके उपयोग से विभिन्न जल जनित बीमारियां उत्पन्न होती है । जल प्रदूषण के प्रभावों का वर्णन बिन्दुवार इस प्रकार है–

(1) मनुष्य पर प्रभाव (2) जन्तुओं पर प्रभाव (3) पादपों पर प्रभाव

(4) कृषि पर प्रभाव (5) परिस्थितिकीय विनाश

(1) मनुष्य पर प्रभाव -- जल वह प्राकृतिक उपहार है जिसका विकल्प पृथ्वी पर विद्यमान नहीं है । इसलिए जल को जीवन माना गया है । सर्वे के अनुसार प्रतिदिन 140 लीटर जल की प्रति व्यक्ति आवश्यकता होती है । मनुष्य को पीने, खाना बनाने, सफाई करने, सिंचाई आदि के लिए शुद्ध जल की आवश्यकता होती हैं प्रदूषित जल से जनित रोगों को विवरण इस प्रकार है :–

(i) **जल से जनित रोग** -- मानव व पशु मल–मूत्र से प्रदूषित जल पीने या अन्य उपयोग में लेने से हैजा, टायफाइड आदि रोग हो जाते है ।

(ii) **पानी के सम्पर्क से** -- प्रदूषित जल से स्नान करने से आंखों पर प्रभाव पड़ता है तथा त्वचा रोग व अतिसार हो पाता है ।

(iii) **पानी पर आधारित रोग** -- प्रदूषित पानी में कई प्रकार के सूक्ष्म जीव विद्यमान होते है, जिसका सेवन करने से संक्रामक रोग फैलते है । कुछ रोग जनक सूक्ष्म जीव एवं उनसे फैलाने वाली बीमारियों इस प्रकार है –

(अ) वाइरस -- वाइरस से संक्रामक हैपेटाइटिस, पीलिया एवं पोलिया रोग उत्पन्न होते है । 1978 में प्रदूषित जल के कारण 2000 लोगों को पीलिया हुआ था ।

(ब) जीवाणु -- जीवाणुओं से टायफाइड, पैरटाइफाइड, हैजा, पेचिश, गेस्ट्रोएंट्राइटिस, इकेन्टाल अतिसार आदि रोग उत्पन्न होते है ।

(स) प्रोटोजोआ -- पेट व आतों से सम्बन्धी विभिन्न रोग प्रदूषित जल में उपस्थित प्रोटोजोआ से होते है । इनमें प्रम्बोइसिस, अतिसार, अमीबिक यकृत एप्सिस आदि रोग प्रमुख है ।

(द) कृमिजन्य -- मनुष्य की आतों के परजीवी पेयजल द्वारा शरीर में प्रवेश करके अनेक कृमियों को जन्म देते हे इनमें राउन्दवार्म, चिपवर्म, थ्रेडवर्म, टेपवर्म एवं एस्केरिस मुख्य है जो मानव को कई रोगों से ग्रसित करता है ।

(iv) **पानी से सम्बन्धित --** विभिन्न स्त्रोतों से प्रदूषित जल जब किसी किसी स्थान पर एकत्रित हो जाता है तो उसमें अनेक प्रकार मच्छर, मक्खियां, कीड़े आदि उत्पन्न हो जाते है, जिनसे मलेरिया, फाइलेरिया, डेंगू पीला बुखार व इंसिफेलाकूटिस जैसे अनेक संक्रामक रोग फैलते है ।

(v) **जल में मिश्रित रासायनिक पदार्थो से जनित रोग --** अनेक रासायनिक पदार्थ उपद्रव्यों के रूप में जल में उपस्थित रहते है, इनमें लोराइड्स नाइट्रेट व पारा आदि मुख्य है । पलोराइड्स का प्रभाव दांतों व हड्डियों पर पड़ता हैं । नाइट्रेट हीमोग्लोबिन के साथ क्षन्नता को कम करता है, विश्व स्वास्थ्य संगठन (W H.O.) के 1987 के प्रतिवेदन के अनुसार

(अ) विश्व में प्रदूषित जल प्रयोग से प्रतिवर्ष 25,000 मनुष्यों की मृत्यु होती है ।

(ब) प्रतिवर्ष 50 करोड़ मनुष्य जल जनित बीमारियों से ग्रसित हो जाते है ।

(स) विश्व की 30 प्रतिशत जनसंख्या पेचिस से ग्रसित है ।

(द) जनजनित कृमियों (Worms) के रोगों से 40 प्रतिशत व्यक्ति ग्रसित हैं

इस प्रकार जल जनित बीमारियों का मुख्य जनक मानव ही इनसे सर्वाधिक ग्रसित है ।

(2) जीव जन्तुओं पर प्रभाव (Effects on animals) -- प्रदूषित जल में शैवालों की अधिकता होने से जल में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है । इस कारण जलीय मछलियां व अन्य जीव जन्तु धीरे–धीरे मरने लगते है । जल प्रदूषण के कारण पिछले पचास वर्षो में समुद्री जीवों में 40 प्रतिशत की कमी आयी है । खाड़ी युद्ध के समय ईराक द्वारा कुवैत के तेल के कुंओं में आग लगा दी थी जिससे फारस की खाड़ी में जैव विविधता का काफी मात्रा में ह्रास हुआ । मई 1999 में जोधपुर में प्रदूषित जल पीने से 500 गायों की मृत्यु हुई । घरेलू बहि: स्वाद में बहकर आये अपमार्जक पदार्थ सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर देते है ।

(3) पादपों पर प्रभाव -- कृषि बहि:स्त्राव से उत्पन्न नाइट्रेट्स व फास्फेट के जल में मिश्रित होने से हानिकारक शैवालों में वृद्धि हो जाती है । वाहित मल जल को प्रदूषित करके विभिन्न प्रकार के जीवाणु शैवाल एवं कवकों में तीव्रता से वृद्धि करता है । इनमें मुख्यतया बैक्टीरिया, स्फरोटिल लेप्टोमिट्स आदि पाये जाते है । प्रदूषित जल में काई की अधिकता होने से सूर्य के प्रकाश की पारदर्शिता न होने से जलीय पौधे प्रकाश–संश्लेषण अच्छी तरह नहीं कर पाते जिससे वृद्धि रूक जाती है । इस प्रकार जलीय प्रदूषण पेड़–पौधे व मनुष्यों को प्रभावित करता है । नगरीय बहिस्त्राव के निकट सीवरेज फार्म स्थापित करके उगाई गई सब्जीयों के उपभोग से मनुष्य का खाद्य चक्र (Food Chain) प्रभावित होता है ।

(4) कृषि पर प्रभाव -- प्रदूषित जल से सिंचाई करने पर फसले नष्ट हो जाती है तथा मिट्टियां भी प्रदूषित हो जाती है । उनकी उर्वकता में कमी आती है । इस जल से उपजने वाली फसलें मानव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक नहीं होती ।

(5) पारिस्थितिकीय विनाश -- जल पारिस्थितिकीय तंत्र का आधार है इसमें पाये जाने वाले जीवों में संतुलन से भोजन श्रृंखला बनती है । जल के प्रदूषित होने से खाद्य श्रृंखला असंतुलित हो जाती है एवं जैव विविधता को खतरा उत्पन्न हो जाता है जैसा कि "पैट्रिक महोदय" ने कहा कि ' 'जलीय प्रदूषण जीवन की विविधता को घटाता है, जिससे सरिता में उपस्थित जीवन स्तर नष्ट हो जाता है ।

(6) पानी के प्रदूषण का गंभीर प्रभाव समुद्री जीवों पर भी पड़ता है । लवकों को उपयुक्त भौगोलिक दशाएं नहीं मिलने से मछलियों की कई प्रजातियां विलुप्ति के कगार पर हैं । इस प्रकार पृथ्वी पर जलीय प्रदूषण से परिस्थिति की तंत्र के प्रत्येक तत्व प्रमावित हो रहे है जिनका प्रभाव सूक्ष्म स्तर पर न होकर विश्वव्यापी होगा ।

(7) अन्य प्रभाव (Other Effects)

(i) प्रदूषित जल में पाये जाने वाले यौगिकों का जब विघटन होता है, तो ज्वलनशील गैसे बनती है । इन गैसों के कारण ही कई बार भूमिगत पाइप फट जाते है ।

13.4.5 जल प्रदूषण पर नियंत्रण के उपाय(Measurs to Control & Water Pollution)

जल प्रदूषण पर नियंत्रण वर्तमान सयम की मांग है । इस विभिन्न निवारक उपायों द्वारा नियंत्रित करने के लिए जन सामान्य, सामाजिक संगठनों, राष्ट्रीय सरकारी व गैरसरकारी संगठनों का सहयोग आवश्यक है ।

जल प्रदूषण नियंत्रण के उपायों का विवरण इस प्रकार है :–

1. नदियों, तालाबों, नहरों आदि के आस–पास मल–मूत्र त्यागने, गन्दगी फैलावें । साबुन लगाकर नहाने या कपड़े धोने पर पूर्णतया प्रतिकध लगाया जाना चाहिये जिससे किसी भी प्रकार के अपमार्जक जल में न पहुंच सके ।
2. उद्योगों व नगरीय अपशिष्टों को जल स्त्रोतों में विसर्जित नहीं करना चाहिये ।
3. पेयजल में स्त्रोतों में मिलने वाले प्रदूषक तत्वों पर रोक लगाए । इसके लिए पेयजल स्त्रोतों के चारो ओर दीवार आदि बनाये ।
4. घरेलू अपशिष्टों एवं वाहित मल की सीधा पेयजल स्त्रोतों में प्रवाहित करने से पूर्व उनका उपचार करे । इस उपचारित जल का उपयोग घरेलू सब्जी व बागानों आदि में करे व सीवरेज फार्म पर सब्जियां उगाये ।
5. जल स्त्रोतों के आस–पास पशुओं को नहीं नहलाना चाहिये ।
6. उपचारित गंदे जल का उपयोग सिंचाई में किया जाना चाहिये क्योंकि यह शुद्ध जल की अपेक्षा उर्वर होता है ।
7. पृथ्वी पर अनेक जीव ऐसे है जो जल को शुद्ध करते है उनका संरक्षण किया जाना चाहिये ।
8. शवों व अधजले शवों को नदी में बहाने के बजाय शवदाह गृहों में जलाना चाहिये ।
9. कृषि में रसायनों व कीटनाशकों का संतुलित मात्रा में उपयोग किया जाना चाहिये ।
10. जल में उत्पन्न होने वाली अनावश्यक खरपतवार पर नियंत्रण लगाना चाहिये क्योंकि यह प्रकाश संश्लेषण पर प्रभाव डालती है एवं जल को प्रदूषित करती है ।
11. नगरीय क्षेत्रों में शौचालयों की व्यवस्था की जाये जिससे खुले में शौच न की जाये ।
12. पेयजल स्त्रोतों में समय समय पर क्लोरीन, पौटेशियम परमेग्नेट आदि जीवाणुरोधी दवाई डालते रहे, ताकि जल को प्रदूषक जीवाणुओं से मुक्त किया जा सकें ।
13. औद्योगिक इकाईयों में प्रदूषण नियंत्रण उपकरणों का प्रयोग किया जाना चाहिये ।
14. औद्योगिक कारखानों को नदियों तथा तालाबों के किनारे स्थापित नहीं किया जाना चाहिये ।
15. परमाणु परीक्षणों व नाभिकीय विखण्डनों को जल स्त्रोतों से दूर करना चाहिये ।

16. रेडिया दूरदर्शन समाचार पत्रों आदि द्वारा जन साधारण को जल प्रदूषण के कारणों, दुष्प्रभावों एवं रोकथाम की विधियों की जानकारी दी जानी चाहिये एवं प्रदूषण के बारे में जन चेतना जागृत की जानी चाहिये ।
17. जल प्रदूषण (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974 को प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिये तथा प्रत्येक राज्य में प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का गठन अनिवार्य कर देना चाहिये ।

प्रयास :--

इस दिशा में उचित कदम उठाते हुए भारत सरकार ने 1974 में जल प्रदूषण नियंत्रण एवं निवारण अधिनियम 1947 पारित करके एक केन्द्रीय जल प्रदूषण नियंत्रण मण्डल (Central Water Pollution Control Board) गठित किया जिसमें निम्न तथ्यों को प्राथमिकता दी गई है ।

1. औद्योगिक बहि: स्त्रावों के विसर्जन पर निगरानी रखी जाये ।
2. जल स्त्रोतों में हो रहे प्रदूषण का सर्वेक्षण किया जाना चाहिये ।
3. प्रदूषित जल के उपचार के लिये सस्ती विधियों का विकास
4. पर्यावरण प्रदूषण के संबंध में अनुसंधान
5. प्रदूषण के बारे में जन चेतना जागृत करने की धारा ।

बोध प्रश्न - 2 (वस्तुनिष्ट प्रश्न)

1. प्रदूषित जल पीने से होने वाले रोग हैं:--
   (अ) अतिसार (ब) हैजा (स) त्वचा रोग (द) उपर्युक्त सभी ( )
2. नल के साधारण पानी में कौनसा रसायन होता है ?
   (अ) बेरियम (ब) क्लोरीन
   (स) लोरीन (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )
3. तेल शाधक कारखानों से प्रदूषण के रूप में निम्न में से कौनसी गैस निकलती है?
   (अ) कार्बन डाई आक्साइड (ब) सल्फर डाइ आक्साइड
   (स) मीथेन (द) नाइट्रस आक्साइड ( )
4. भारत की चौदह मुख्य अन्तर्राज्यीय नदियों की प्रदूषण संबंधी समस्याओं के अहम प्रयोजनाओं का कार्य करने वाली केन्द्रीय संस्था हैं --
   (अ) केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण (ब) ज्यूलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया
   (स) युनाइटेड नेशनल एनवायरमेन्ट (द) सेन्ट्रल पॉल्यूशन कंट्रोल बोर्ड( )
5. पाली जिले में किस उद्योग के कारण सर्वाधिक जल प्रदूषण होता हैं--
   (अ) चमड़ा (ब) पेट्रोकेमिकल
   (स) कपड़ा रंगाई व छपाई (द) वस्त्र निर्माण ( )

13.5 ध्वनि प्रदूषण

13.5.1 प्रस्तावना

प्रकृति में किसी भी वस्तु से जनित सामान्य आवाज को ध्वनि (Sound) कहते हैं । जब ध्वनि की तीव्रता इतनी अधिक हो जाती है कि वह कर्णप्रिय नहीं लगती है, तो उसे शोर (Noise) कहते हैं । शोर जिसे अंग्रेजी में Noise कहते हैं लेटिन भाषा में "Nausea" शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है अवांछित (Unwanted) या अप्रिय (Unpleasent) ध्वनि (Sound) जो परेशानी का कारण बनती है "गलत स्थान पर, गलत समय में, गलत ध्वनि' को भी शोर के रूप में परिभाषित किया जाता है । पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी जीव-जन्तुओ की सुनने की निश्चित सीमा होती है । इससे अधिक होने पर उस पर हानिकारक प्रभाव छोडने -लग जाती है । इस प्रकार आवाज (Sound) को ध्वनि प्रदूषण का प्रमुख प्रदूषक (Pollutant) माना जाता है । आवाज की उत्पत्ति विभिन्न प्राकृतिक तथा मानव जनित स्त्रोतों से होती है ।

ध्वनि यद्यपि वातावरण का अभिन्न अंग है, लेकिन वर्तमान यांत्रिक युग में लगातार बढ़ रहे औद्योगिक संयत्रों, परिवहन के साधनों तथा अन्य मानव जनित ध्वनि प्रसारक कार्या के कारण ध्वनि का प्रकोप बढ़ गया है, जिससे ध्वनि प्रदूषण का कारण बन गयी है । अत: ध्वनि प्रदूषण का अध्ययन अति आवश्यक है ।

परिभाषा

सामान्य भाषा में एक अवांछनीय (Unwanted) ध्वनि को शोर कहते हैं । इसके कारण मनुष्यों में अशांति तथा बैचेनी उत्पन्न होती है तथा उनकी कार्यक्षमता (Working Capacity) में व्यव्धान हाने से ह्रास होता है । शोर मनुष्य की श्रवण क्षमता तथा मस्तिष्क में अव्यवस्था उत्पन्न करके मानव शरीर में अशांति एवं थकावट उत्पन्न करता है । अत: जब कोई ध्वनि शोर का रूप धारण कर लेती है तो वह प्रदूषण की श्रेणी में आ जाती है । इस प्रकार ध्वनि प्रदूषण उस दशा को कहते हैं जब ध्वनि की मात्रा इतनी अधिक हो जाये कि मनुष्य की मानसिक क्रियाओं में विघ्न उत्पन्न करने लग जाये । मैक्सबैल (Maxwell K.E. 1973) ने शोर प्रदूषण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "शोर वह ध्वनि है जो अवांछनीय है यह वायु मण्डलीय प्रदूषण का एक प्रमुख प्रकार है ।" इस प्रकार ध्वनि को शोर प्रदूषण के रूप में चिन्हित होने तक की सीमा विभिन्न आधारों के अनुसार विभिन्न रूप में निर्धारित की जाती है ।

शोर का मापन या प्रबलता

ध्वनि का अध्ययन जिस विज्ञान में करते हैं उसे श्रवण विज्ञान (Acoustics) कहते हैं । ध्वनि की मापक इकाई को डेसीबल (Decibel) कहते हैं । इस मापक इकाई को प्रसिद्ध विज्ञानी ग्राहम बैल (Graham Bell) ने प्रस्तुत किया था । डेसीबल ध्वनि की तीव्रता (Intensity) की मापन इकाई है इसे संक्षिप्त रूप में dB के रूप में प्रस्तुत करते हैं ।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तय मानकों के अनुसार ध्वनि प्रदूषण की मात्रा दिन के समय 55 तथा रात्रि के समय 45 डेसीबल (dB) तक होनी चाहिये । औद्योगिक क्षेत्रों में इसकी सीमा दिन

में 75 एवं रात्री में 70 डेसीवल तय की गई है । अस्पतालों, शैक्षिक संस्थाओं तथा न्यायालयों के आस पास सौ मीटर की दूरी तक के क्षेत्र को शांति क्षेत्र घोषित किया गया है ।

13.5.2 शोर प्रदूषण के स्त्रोत (Sources of Noise Pollution)

शोर प्रदूषण के स्त्रोतों को तीन श्रेणियों में बांटा गया है :–

1. प्राकृतिक स्त्रोत (Natural Source):– शोर प्रदूषण में प्राकृतिक स्त्रोतों अहम भूमिका होती है । लेकिन इनकी निरन्तरता कृत्रिम स्त्रोतों की अपेक्षा अधिक व्यापक नहीं होती है इन स्त्रोतों में बादलों का गरजना तथा गड़गड़ाहट, बिजली का कड़कना, तूफानी हवाओं के विभिन्न रूप जैसे - हरिकेन, झंझावत, तडित झंझा (Thunder storm), टारनेडो आदि उच्च तीव्रता वाली जल वर्षा, आलोवृष्टि (Hail Storm) जल प्रपात, सागरीय सर्फ तरंगें, ज्वालामुखी विस्फोट भूकम्प आदि प्रमुख हैं ।

2. जीवीय स्त्रोत (Biotic Sources):– प्रकृति में विचरण करने वाले जीव जन्तु अपनी विभिन्न क्रियाओं द्वारा ध्वनि प्रदूषण को जन्म देते हैं इनमें सर्कस के कटघरे में शेर की दहाड़ तथा हाथियों की चिंघाड़, कुत्तों का भौंकना, सियारों का शोर आदि प्रमुख हैं मनुष्य भी हंसते, रोते, चिल्लाते व झगड़ते समय विभिन्न प्रकार के शोर उत्पन्न करता है ।

3. कृत्रिम स्त्रोत (Atrificial Sources):– कृत्रिम या मानवीय स्त्रोतों में मानव द्वारा की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है । मानव जनित औद्योगिक करण एवं नगरीकरण से अनेक ध्वनि प्रदूषक कारकों का जन्म हुआ है। हमनें अपनी सुख सुविधा एवं आर्थिक विकास के लिये अपनाये गए कृत्रिम साधनों से वातावरण में काफी शोर उत्पन्न किया है । शोर प्रदूषण के कृत्रिम या मानवीय स्त्रोतों का वर्णन इस प्रकार है –

(i) **उद्योग धन्धे तथा मशीनें (Industries and Machines) :-** तेजी से वृद्धि कर रहा औद्योगिकरण शोर प्रदूषण का प्रमुख कारण है । कल कारखानों की संख्या में वृद्धि बडी बडी मशीनों तथा यंत्रों से शोर उत्पन्न होता है । इसका परिणाम उनके कर्मचारियों तथा समीपवर्ती क्षेत्रों के लोगों पर पड़ता है औद्योगिक प्रक्रिया के अतिरिक्त भवन निर्माण, सड़क निर्माण तथा सम्बन्धित गतिविधियों के द्वारा भी शोर उत्पन्न होता है ।

(ii) **परिवहन के साधन (Means of Transportation) :–** नगरीयकरण के दौर में यातायात घनत्व भी बढ़ता जा रहा है । भारत की सड़कों पर 4.5 करोड़ कारें दौड़ रही है एवं वाहनों की संख्या के अनुपात में सड़कों की लम्बाई सीमित है । परिवहन के ध्वनि प्रदूषणकारी साधनों को निम्नांकित वर्गो में विभाजित किया जा सकता है –

(a) स्थलीय परिवहन (Land Transporation) :– स्थलीय परिवहन में यातायात के विभिन्न साधन जैसे मोटर कार, मोटर साइकिल, स्कूटर, बसें तथा रेलें इत्यादि शोर के मुख्य कारण हैं । रेल गाडियों से एवं भार ढोने वाले ट्रकों से सर्वाधिक शोर उत्पन्न होता है । सामान्य ट्रक द्वारा 100 dB से अधिक शोर उत्पन्न होता है ।

(b) वायु परिवहन (Air Transportation) :– वर्तमान युग में आकर्षक एवं आरामदायक यात्रा सुविधा के कारण वायु यातायात लोकप्रिय है । हवाई जहाज का जेट ईजंन उड़ने के साथ तथा उतरते समय पीड़ादायक, असहनीय शोर उत्पन्न करता है जो 150 dB

तक होता है । हवाई अड्डे के निकट के बस्ती वालों को इस असहनीय शोर प्रदूषण का सामना करना पड़ता है । सुपर सोनिक वायुयान तीव्र शोर उत्पन्न करते हैं । जो अत्यन्त हानिकारक हैं ।

(iii) मनोरंजन के साधन (Means of Entertainment) :– वर्तमान में मनोरंजन के साधनों में इलेक्ट्रोनिक माध्यम से तेज संगीत (Music) का प्रचलन हो गया है । ये सभी स्थलों यहां तक कि यातायात के साधनों में भी प्रचलित हो गया है । वर्तमान में उच्च आवृति वाले पॉप संगीत भी लोगों को अधिक पसन्द हैं । जो हानिकारक हैं तथा टी.वी., रेडियो तथा अन्य ध्वनि प्रसारक यंत्रों से उत्पन्न शोर अन्ततः बहरेपन को जन्म देता है ।

(iv) सामाजिक क्रिया कलाप (Social Activities) :– मानव अपने जीवन में विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक उत्सव जैसे शादी विवाह एवं धार्मिक व सांस्कृतिक अवसरों पर शोर उत्पन्न करता है । मंदिरों में पूजा अर्चना, भजन कीर्तन के समय भी लाउड स्पीकरों को उच्चतम स्वर में सुना जाता है जो हानिकारक है ।

(v) अन्य स्त्रोत (Other Sources) – इसके अतिरिक्त सब्जियों व फलों के बाजारों, बच्चों के खेलने, चुनाव प्रचार के दौरान, विभिन्न विज्ञापनों द्वारा, राष्ट्रीय पर्वो व स्वतंत्रता व गणतंत्र दिवस पर एवं बाजारों में शोर उत्पन्न होता है । इनके अतिरिक्त खनन कार्यो, बुल्डोजरों, डाइनामाइट से चट्टानों को तोडने, ड्रिलिंग करने आदि से उत्पन्न शोर भी प्रदूषण का मुख्य कारण हैं ।

13.5.3 शोर प्रदूषण के दुष्प्रभाव (Harmful effect of Noise Pollution)

(i) **सामान्य प्रभाव (Normal Effects) :--** शोर प्रदूषण के सामान्य प्रभावों में चिड़चिड़ापन, अनिद्रा तथा इससे सम्बन्धी अन्य प्रभाव तथा बोलने में आने वाले व्यवधान (Speach Interference) तथा सम्बन्धित सम्याओं को सम्मिलित किया जाता है । परीक्षणों के अनुसार 80 डेसीबल शोर के बीच कुछ समय रहने से सिर दर्द व तनाव रहता है तनावग्रस्त रहने से उच्च रक्त चाप (High Blood Pressure) तथा हृदय रोग की उत्पत्ति होती है ।

(ii) **श्रवण स्तर पर प्रभाव (Auditory Effect) :--** उच्च शोर से श्रवण शक्ति में कमी आती है तथा बहरापन भी आ जाता है । ध्वनि प्रदूषण के कारण गर्भवती महिलाओं के गर्भस्थ शिशु जन्म से ही बहरा हो सकता है । 90 डेसीबल से अधिक होने पर श्रवण क्षीणता (Hearing Impairment) की बीमारी हो सकती है ।

(iii) **मनोवैज्ञानिक प्रभाव (Psychological Effects) :--** शोर मनुष्य के आचरण एवं मानसिक दशाओं पर बहुत जटिल तथा बहुमुखी प्रभाव डालता है । दैनिक जीवन में अवांछित शोर(Unwanted Noise) सामाजिक तनाव, खीझ, चिड़चिड़ापन, मानसिक अस्थिरता, कुंठा, थकान तथा पागलपन इत्यादि दोषों का कारण माना जाता है । ध्वनि प्रदूषण से रक्त वाहिनियों फैल जाती हैं । इससे तीव्र सिर दर्द रहने लगता है । शोर के वातावरण में जन्म लेने वाले शिशुओं के स्नायु तंत्रों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है ।

(iv) **शारीरिक प्रभाव (Psychological Effects) :--** शोर प्रदूषण का प्रभाव मानव की शारीरिक क्षमता पर भी पड़ता है । इससे प्रभावित लोगों में घबराहट, हृदय रोग, रक्त चाप, चिडचिडापन एवं अन्य घातक बीमारियां हो जाती हैं । 80 डेसीबल के शोर के मध्य रहने से सिर दर्द होने लगता है । 150 डेसीबल का शोर त्वचा को नष्ट कर देता है । 180 से 200 डेसीबल शोर में व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है ।

13.5.4 शोर प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Noise Pollution)

हमारे जीवन में शोर प्रदूषण इस सीमा तक व्याप्त हो गया है कि उसे पूर्ण रूप से दूर कर पाना कठिन कार्य होगा, किन्तु प्रभावी नियंत्रण लगाकर इसकी तीव्रता को कम किया जा सकता है । इसके लिए साधारण उपाय, कुछ तकनीकी परिवर्तन तथा कुछ सामान्य व्यवहारों में परिवर्तन किया जाना आवश्यक है । कुछ उपाय शोर प्रदूषण को नियंत्रित करने में सहायक हो सकते हैं जो इस प्रकार हैं :–

1. शोर के उद्‌गम स्थान पर ही इसे नियंत्रित किया जाये । इसके लिए साधारण उपाय के साथ कानूनी सहायता भी ली जा सकती है । ब्राजील में 80 डेसीबल से अधिक शोर करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही किये जाने का प्रावधान है । इसी प्रकार इंग्लैण्ड में 80 डेसीबल से अधिक शोर करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही की जाती है ।
2. अधिक शोर प्रदूषण करने वाले औद्‌योगिक प्रतिष्ठानों को आबादी क्षेत्रों से दूर स्थापित किया जाये।
3. औद्‌योगिक क्षेत्रों में उच्च तकनीकी विकास द्‌वारा विकसित न्यून शोर प्रदूषण वाली मशीनों तथा उपकरणों का प्रयोग करें तथा उद्‌योगों के चारों ओर शौर शोषक दीवारों तथा मशीनों के चारों ओर मफलरों का कवच लगाकर शोर को नियंत्रित करें । अधिक शोकर करने वाली पुरानी मशीनों का समय–समय पर अधिक रख–रखाव करें तथा आवश्यक होने पर नवीन मशीनों स्थापित कर लेवें।
4. नगरीय क्षेत्रों में विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त शोर का स्तर निर्धारित किया जावे तथा इससे अधिक शोर का स्तर दिल्ली में 64 डीबी से 93 डीबी, चैन्नई में 89 डीबी, कोलकाता में 87 डीबी तथा रांची में 8. डीबी बताया गया है ।
5. मोटर वाहनों में प्रयोग में लाये जा रहे बहुननि वाले हॉर्न बजाने पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिये ।
6. भारी माल ढोने वाहनों को शहरों के बाहर मुद्रित सड़कों (Toll road) पर चलाना चाहिए तथा आवासीय एवं भीड़युक्त क्षेत्रों में इनका प्रवेश निषिद्ध कर देना चाहिए ।
7. रेल का हॉर्न एवं इंजन की आवाज भी नियंत्रित होनी चाहिए । बेलास्ट विहीन (Ballost less) रेल पथों का निर्माण करना आवश्यक है ।
8. हवाई जहाजों द्‌वारा उत्पन्न उच्च ध्वनि भी असहनीय होती है । अत: इस दिशा में उच्च तकनीकीक विकास द्‌वारा शोर नियंत्रण के प्रयास करने चाहिए ।
9. अधिक मात्रा में शोर उत्पन्न करने वाले उद्‌योगों में काम करने वाले व्यक्तियों को कर्णप्लग (Ear plugs) तथा कर्ण बन्दको (Ear muffs) का प्रयोग करना चाहिए ।
10. जेट यानों के शोर को कम करने के लिए टर्बोजेट ईधनों के निर्गम पर शोर अवशोषक का प्रयोग किया जाता है ।

11. विभिन्न अवस्थितियों जैसे– आवास गृहों, कार्यालयों, पुस्तकालयों, चिकित्सालयों आदि में उचित निर्माण सामग्री तथा उपयुक्त बनावट द्वारा शोर नियंत्रण किया जा सकता है ।
12. विभिन्न देशों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये जाने चाहिए । सरकार को जल तथा वायु प्रदूषण के समान शोर प्रदूषण के लिए भी उपयुक्त विधान बनाने तथा जनचेतना जगाने के प्रयास करने चाहिए । इस दिशा में भारतीय मोटर वाहन अधिनियम, 1988 महत्वपूर्ण है । यह 1 जुलाई 1989 को प्रभावी हुआ ।

उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त मंत्र तथा संगीत भी इसके दुष्परिणाम को कम करते है । ज्यूरिख के डॉ. हंस जेनी ने ध्वनि तंरगें किस प्रकार पदार्थ को परिवर्तित करती है, का अध्ययन किया है । इसे 'सिमेटिक्स कहते है । उन्होंने इस बात को खोज की है, कि 'ओम जैसे मंत्रों का बार–बार जप करने से किस प्रकार व्यक्ति का तनाव शिथिल होता है तथा वह विश्रान्ति एवं आनन्द की अनुभूति कराता है ।

13.6 तापीय प्रदूषण

उद्योगों एवं बड़े–बड़े कारखानों से निकलने वाली गैसों तथा तरल पदार्थो क कारण से ऊष्मा में वृद्धि हो जाती है । जिसका जीवों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है । अत: इसे तापीय या ऊष्मीय (Thermal Pollution) प्रदूषण कहते है ।

13.6.1 ताप प्रदूषण के कारण तथा प्रभाव (Causes and effects of thermal pollution)

पृथ्वी पर जीवन संभव हो जाने में ताप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । ताप के कम या अधिक होने पर जीवन पर प्रतिकूल असर पड़ने लगता है । नाभिकीय रिएक्टर्स एवं परमाणु संयंत्रों में से गर्म जल को नदी या झीलों में बहा दिया जाता है । जिससे जल का ताप बढ़ जाता है । जलीय जीव–जन्तुओं जब इस गर्म जल को सहन नहीं कर पाते तो मरने लगते है । ताप या ऊष्मा जल के लगभग सभी गुणों को प्रभावित करता है । गर्म जल में रासायनिक पदार्थ ज्यादा घुलनशील होते है जिसका जलीय जीवों पर बुरा असर पड़ता है । तापीय प्रदूषण से पारिस्थितिकी में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है । भाभा आणविक शोध केन्द्र, मुम्बई (Bhabha Atomic Research Centre, Mumbai) के अनुसार जल का ताप 370C के बढ़ते ही मछलियों की मृत्यु होने लगती है ।

इसके अतिरिक्त ताप बढ़ने से लकड़ी की चीजें टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती है । पेन्ट और वार्निश उखड़ जाते है । कागज पीला पड़ने लगता है । अत: तापीय प्रदूषण जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करता है । बढ़ते तारा पर प्रभावित एक अन्तर्राष्ट्रीय रिपोर्ट "हू इज टेकिंग द हीट" (Who is taking the heart) में कहा गया है कि अमरीका, रूस, ब्राजील एवं चीन के बाद ताप वृद्धि कारकों में भारत विश्व में पांचवे स्थान पर है ।

13.6.2 तापीय प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय (Measures to control thermal pollution)

तापीय प्रदूषण को निम्न उपायों के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है –

1. परमाणु संयंत्रों में प्रयुक्त जल को ठण्डा करने के पश्चात् ही नदी, नालों या झीलो में विसर्जित करना चाहिये ।
2. ताप बिजली घरों में निकलने वाली गेसो एवं गर्म जल की उचित व्यवस्था की जानी चाहिये ।

3. औद्योगिक एवं विद्युत संयंत्रों में तापीय प्रदूषण के नियंत्रण के लिये शीतलन टावर (Cooling Tower) तथा स्प्रे पोण्ड (Spray pond) निर्माण किया जाना चाहिये ।
4. वनों को कटाने से बचाया जाना चाहिये तथा जगह–जगह वृक्ष लगाये जाने चाहिये ।
5. वैज्ञानिकों द्वारा इस क्षेत्र में शोध कार्यो द्वारा यह सतत प्रयास किये जाने चाहिये कि तापीय प्रदूषण को नियंत्रित करने के और क्या उपाय किये जा सकते है ।

13.7 नाभिकीय प्रदूषण

पर्यावरण प्रदूषणों में नाभिकीय प्रदूषण सबसे अधिक हानिकारक होता है । यह पर्यावरण में रेडियों समस्थानिकों की अवांछनीय वृद्धि के फलस्वरूप उत्पन्न होता है, अतः इसे रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radio-active pollution) भी कहते है । अर्थात् "नाभिकीय पदार्थो की क्रियाशीलता द्वारा हुये प्रदूषण को रेडियो धर्मी प्रदूषण कहते है ।" इस प्रदूषण का प्रभाव सर्वप्रथम जापान में अनुभव किया गया जब 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध के समय हिरोशिमा एवं नागासाकी पर परमाणु बम गिराये गये।

13.7.1 नाभिकीय प्रदूषण के कारण (Causes of Nuclear pollution)

नाभिकीय प्रदूषण के कारण निम्न हैं :–

(i) परमाणु बमों के विस्फोट व परीक्षणों द्वारा वायुमण्डल में नाभिकीय प्रदूषण होता है ।

(ii) परमाणु बिजली घरों के अपशिष्ट एवं परमाणु संयंत्रों में नाभिकीय रिसाव से यह प्रदूषण फैलता है ।

(iii) चिकित्सालय क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली एक्स–रे मशीन तथा रेडियाग्राफी (Radiography) द्वारा नाभिकीय प्रदूषण होता है ।

(iv) परमाणु अस्त्र बनाने वाली फैक्टरियां, खनन एवं खनिजों के संशोधन से भी नाभिकीय प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है ।

(v) प्राकृतिक विकिरणों (Radiations) जैसे– न्यूट्रोन (Neutron), (X-rays), कॉस्मिक किरणें (Cosmic rays) आदि से भी यह प्रदूषण होता है ।

13.7.2 नाभिकीय प्रदूषण के प्रभाव (Effects of nuclear pollution)

नाभिकीय प्रदूषण द्वारा मानव एवं अन्य जीवों पर पड़ने वाले प्रभाव निम्न है :–

(i) नाभिकीय पदार्थो के परमाणु नाभिकों से निकले वाली अल्फा, बीटा व गामा किरणें जीवों के गुणसूत्र व में परिवर्तन कर देती है जिससे बच्चे अपंग पैदा होते है ।

(ii) इसके द्वारा सिर के बालों का गिरना, शरीर में रक्त की कमी, कैंसर, त्वचा सम्बन्धित अनेक घातक बिमारियां हो जाती है ।

(iii) नाभिकीय एवं परमाणु विस्फोट के द्वारा वायु तथा जल प्रदूषण होता है ।

(iv) सभी जैविक प्रजातियां की जनन क्षमता कम हो जाती है ।

(v) परमाणु विकिरणों के द्वारा गर्भस्थ शीशुओं की मृत्यु हो जाती है ।

13.7.3 नाभिकीय प्रदूषण को रोकने के उपाय (Measures to Control nuclear pollution)

नाभिकीय प्रदूषण अत्यन्त घातक होता है । मानव जाति एवं जीव–जन्तुओं को इसके विनाश से बचाने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते है –

(i) अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनाकर परमाणु बमों के परीक्षण पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिये ।

(ii) परमाणु तथा अन्य नाभिकीय बमों के निर्माण पर रोक लगाई जानी चाहिये ताकि नाभिकीय युद्ध से बचा जा सके ।

(iii) परमाणु संयंत्रों एवं बिजलीघरों से निकले अपशिष्ट को सुरक्षित स्थान पर एकत्रित किया जाना चाहिये ताकि पादपों एवं जन्तुओं को नुकसान नहीं हो ।

(iv) नाभिकीय प्रदूषण के नियंत्रण हेतु वैज्ञानिकों द्वारा उचित उपाय खोजने चाहिये ।

(v) ऐसे रसायन संश्लेषित किये जाने चाहिये जिनके उपयोग से विकिरणों का प्रभाव कम होता है ।

13.7.4 पर्यावरण प्रदूषण निवारण (Prevantion of Environment Pollution)

पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण निवारण और नियंत्रण हेतु कुछ उपाय, जिनका विवरण इस प्रकार है :–

1. पेड़–पौधे लगवाकर तथा उनकी नियमित देखभाल कर ।
2. पौलीथीन की थैलियों का प्रयोग बन्द करें ।
3. प्लास्टिक की चीजों का कम से कम इस्तेमाल करें ।
4. अति आवश्यक होने पर ही स्वचालित यातायात के वाहन चलायें तथा नियमित प्रदूषण की जांच करायें ।
5. पेड़ों को कटाने से रोका जाये ।
6. दुधारू पशुओं के इन्जेक्शन लगाकर दूध निकालने वालों को रोका जाये ।
7. अस्पताल से निकलने वाले कचरे को बन्द वाहनों में ले जाकर उचित व निर्धारित स्थानों पर डाला जाये ।
8. कारखानों से फैलने वाले प्रदूषण के लिये उनके मालिकों एवं प्रबन्धक के विरूद्ध पर्यावरण संरक्षण व प्रदूषण निवारण कानूनों की अनदेखी करने पर समायानुसार प्रदूषण बोर्डो को शिकायत करें ।
9. अपने लोक कर्तव्य के प्रति लापरवाही व उपेक्षा बरतने वाले सरकारी कर्मचारियों के ऊपर प्रभावी निगरानी रखी जाये ।
10. इन कार्यो के लिए महिलाओं का विशेष सहयोग लिया जाना चाहिए ताकि वे अपने स्तर पर अपनी दिनचर्या के दो–तीन घण्टे प्रतिदिन अथवा प्रति सप्ताह प्रदूषण निवारण के लिए कार्य कर सकें।

प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विश्व पर्यावरण दिवस, 5 जून 1999 को स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा आयोजित सार्वजनिक समारोह में बोलते हुए कहा कि ' 'पर्यावरण सम्बन्धी कानूनो को लाग करने के लिए सरकारी अथवा न्यायपालिका की प्रतीक्षा न करें अपितु प्रत्येक व्यक्ति, सामाजिक संस्थायें एवं उद्योगपति व प्रबन्धक स्वेच्छा से इनका पालन करें । पर्यावरण के नाम पर वास्तविक परियोजनाओं का विरोध न करें । "

पर्यावरण संरक्षण की दिशा में चिपको आन्दोलन के श्री सुन्दरलाल बहुगुणा का योगदान महत्वपूर्ण रहा । इसी प्रकार केन्द्रीय मंत्री व पर्यावरण की दिशा में कार्य करने वाली श्रीमती मेनका गांधी के कार्यकलापों पर सभी देशवासियों को गर्व है । अनेक गैर–सरकारी संगठनों को पर्यावरण की दिशा में कार्य करने के लिए राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर प्रतिवर्ष पुरस्कृत भी किया जा रहा है । यही कारण है कि भारत में पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण की दिशा में जो गैर सरकारी स्तर पर स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है । वह पूरे समुदाय के लिए अनुकरणीय है ।

बोध प्रश्न 3 (बहुचयनात्मक प्रश्न)

1. शोर की तीव्रता मापने का मानक हैं--
   (अ) डेसीबल (ब) न्यूटन (स) रैम (द) डायप्टर ( )
2. अधिकतर राष्ट्रों ने शोर की अधिकता कितने डेसीबल निर्धारित की हैं-
   (अ) 0-30 (ब) 30-60 (स) 75-85 (द) 60-75 ( )
3. वायुमण्डल में उपस्थित धुएँ के काजल से कौन सा रोग हो जाता हैं -
   (अ) क्षय (ब) जुकाम (स) दमा (द) फुफसीय कैंसर ( )
4. निम्नलिखित में से कौनसा रोग विकिरण द्वारा होता है -
   (अ) अस्थि कैंसर (ब) क्षय (टी.बी) (स) हैजा (द) पेचिश ( )
5. वर्तमान युग में विकिरण संकट का मुख्य कारण क्या है ?
   (अ) अधिक वर्षा का होना (ब) परमाणु बम विस्फोट
   (स) सूर्य की किरणों (द) लगातार छाये बादल ( )
6. नाभिकीय विकिरणों के सम्पर्क में आने से आंखों में कौनसा रोग हो जाता है ?
   (अ) ट्रेकोम (ब) मोतियाबिन्द
   (स) रेटीनाइटिस (द) उपर्युक्त में कोई नहीं ( )
7. कौनसे रेडियो एक्टिव तत्व की मात्रा सभी प्राणियों में मौजूद है -
   (अ) पैटेशियम (ब) यूरेनियम (स) थोरियम (द) रेडियम ( )

13.9 सारांश (Summary)

(1) राष्ट्रीय पर्यावरण शोध समिति (National Environment Research Council) के अनुसार मनुष्य के क्रिया–कलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थो एवं ऊर्जा के वियोजन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं । इसके कारकों को प्रदूषक कहते है तथा ये दो प्रकार के होते है:– (1) प्राकृतिक (2) मानव निर्मित

(1) प्राकृतिक स्त्रोत : इनमें मुख्य रूप से ज्वालामुखी की राख एवं धूल, भूकम्प, बाढ, सूखा, मृदा अपरदन, चक्रवातीय तूफान से उत्पन्न तत्व मुख्य हैं ।

(2) मानवीय स्त्रोतों में औद्योगिक बहि:स्त्राव, वाहित मल, तैलीय स्त्रोत, रेडियोधर्मी अपशिष्ट, खनन अपशिष्ट, परिवहन के साधन, मनोरंजन के साधन, सामाजिक क्रिया कलाप, दहन क्रिया आदि मुख्य प्रदूषक है ।

(2) प्रदूषण में मुख्य हवा, पानी, ध्वनि, तापीय एवं नाभिकीय प्रदूषण मुख्य हैं ।

(3) वायु प्रदूषण का वनस्पति, मनुष्यों व जीव–जन्तुओं पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है तथा प्रदूषण से उत्पन्न कार्बन मोनोक्साइड, सीसा (लैड Pb), सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड आदि गैसों द्वारा अनेक रोग उत्पन्न होते है तथा फसलों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है ।

(4) वायु प्रदूषण का नियंत्रण शिक्षण व संचार साधनों, जन चेतना, मोटर वाहन अधिनियम, औद्योगिक क्षेत्रों में हरित पट्टी (Green belt) के विकास द्वारा किया जा सकता है ।

(5) जल प्रदूषण की प्रकृति एवं प्रकार कई कारकों से सम्बन्धित है । जल में प्रदूषण जिन कारणों से उत्पन्न हुआ है उनके आधार पर जल प्रदूषण चार प्रकार का होता है । (i) सीवेज प्रदूषण (ii) घरेलू अपशिष्ट प्रदूषण (iii) औद्योगिक अपशिष्ट जल प्रदूषण (iv) ठोस अपशिष्ट जल प्रदूषण

(6) जल के प्रमुख प्रदूषक तत्व, पारा, सीसा, जस्ता, फ्लोराइड, सोडियम, फिनोल, नाइट्राइड, आरमेनिज्म इत्यादि है जिनसे हैजा, मोतिझरा, निमोनिया, इजा आदि रोग फैलते है । इसका पशुओं व फसलों की उपज पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है ।

(7) जल प्रदूषण का प्रभावी नियंत्रण कृषि में कीटनाशकों का संतुलित प्रयोग सीवेज का उपयुक्त तंत्र विकसित कर, औद्योगिक अपशिष्ट का सही निस्तारण तथा औद्योगिक इकाइयों में वायु प्रदूषण नियंत्रण यंत्र लगवा कर एवं परमाणु परीक्षणों को जल स्त्रोतों से दूर स्थापित करके किया जा सकता है ।

(8) ध्वनि प्रदूषण अनेक मानव विकृतियों को जन्म देता है । शोर प्रदूषण के कई स्त्रोत है (a) प्राकृतिक स्त्रोत, जीविय स्त्रोत तथा कृत्रिम स्त्रोत जिनमें उद्योग धन्धे व मशीने मुख्य है । इसका नियंत्रण उद्गम स्थल पर, यातायात को व्यवस्थित कर तथा मोटर वाहन अधिनियम को सख्ती से लागू करके किया जा सकता है ।

(9) तापीय व नाभिकीय प्रदूषण बहुत ही हानिकारक होते हैं इससे जीवों के गुणसूत्रों पर प्रभाव पड़ता जिसके कारण बच्चे अपंग हो जाते है । इसका नियंत्रण अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनाकर परमाणु बमों के परिक्षण एवं निर्माण पर प्रतिबन्ध द्वारा किया जा सकता है ।

13.10 शब्दावली

1. विशिष्ट स्त्रोत	-	Specific Sources
2. विधिक स्त्रोत	-	Multiple Sources
3. जैविक क्रियाएं	-	Biological Processes
4. अविघटनीय प्रदूषक	-	Non degradable Polluants
5. जैव विघटनीय प्रदूषक	-	Biodegradable Polluants
6. चक्रीकरण	-	Recycling
7. खमीर	-	Fermantation
8. छिड़काव	-	Spray
9. कीटनाशी	-	Insecticides
10. धूम्ररहित	-	Smoke free
11. वर्नोन्मूलन	-	Deforestation

12. अपशिष्ट	-	Waste
13. निस्तारण	-	Disposal
14. कूडा कर्कट	-	Garbage
15. निक्षालन	-	Leaching
16. अन्त: स्पन्दित	-	Percolate
17. व्यक्ति परकता	-	Subjectivity
18. तीव्रता	-	Intensity
19. ओलावृष्टि	-	Hail Staorm
20. श्रवण क्षीणता	-	Heaving Impariment
21. अवांछित शोर	-	Unwanted noise

13.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. Odum O.P.	-	Bridge between Science and Society
2. Odem E.P.	-	Fundamentals of Ecology
3. Sharma P.D.	-	Ecology and Environment
4. गुर्जर आर. कुमार	–	पर्यावरण अध्ययन एवं जाट बी.सी.
5. रघुवंशी अरूण व रघुवंशी चन्द्रलेखा	–	पर्यावरण प्रदूषण
6. वर्मा, गुप्ता, चौधरी	–	पर्यावरण अध्ययन
7. बाकरे, बाकरे, वाधवा	–	पर्यावरणीय अध्ययन
8. यादव एम. एवं यादव ए.	–	पर्यावरण अध्ययन

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1 बहुचयात्मक प्रश्न

प्र.	1 (अ)	2. (अ)	3. (स)	4. (द)	5. (द)

बोध प्रश्न 2 के उत्तर

प्रश्न	1 (द)	2. (ब)	3. (स)	4. (द)	5. (स)

बोध प्रश्न 3 के उत्तर

प्रश्न	1. (अ)	2. (द)	3. (द)	4. (स)	5. (ब)
प्रश्न	6. (ब)		7. (द)		

13.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र0 1 पर्यावरण प्रदूषण क्या है । इसके विभिन्न स्त्रोतों के नाम बताइये ।

प्र0 2 प्रदूषण की प्रकृति के आधार पर प्रदूषण कितने प्रकार के होते हैं ।

प्र0 3 निम्न पर टिप्पणी लिखिये :–

(1) वायु प्रदूषण के स्त्रोत	(2) वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय
(3) प्रदूषक तत्व	(4) वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

प्र0 4 जल प्रदूषण को परिभाषित करते हुए इसके प्रकार बताइये ।

प्र0 5 ध्वनि प्रदूषण की परिभाषा एवं स्त्रोत के बारे में बताइये तथा शोर प्रदूषण पर नियंत्रण के उपाय बताइये ।

इकाई – 14

ठोस कचरा तथा प्राकृतिक आपदाओं का प्रबन्धन

Solid Waste and Management Natural Disaster

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य (Objective)

14.2 प्रस्तावना (Introduction)

14.3 शहरी एवं औद्योगिक अपशिष्टों का प्रभाव (Effect of Urban and Industrial waste)

14.3.1 शहरी अपशिष्ट (Urban Waste)

14.3.1.1 शहरी अपशिष्ट के प्रकार (Types of Urban waste)

14.3.2 औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial Waste)

14.3.2.1 औद्योगिक अपशिष्ट के प्रकार (Types of Industrial waste)

14.3.3 ठोस कचरे का प्रबन्धन (Management of solid waste)

14.4 प्राकृतिक आपदाओं का प्रबन्धन (Management of Natural Disaster)

14.4.1 बाढ़ (Flood)

14.4.1.1 बाढ़ के कारण (Causes of Flood)

14.4.1.2 बाढ़ के प्रकार (Types of Flood)

14.4.1.3 बाढ़ प्रभावित क्षेत्र (Flood affected area)

14.4.1.4 बाढ़ प्रबन्धन (Flood Management)

14.4.2 भूकम्प (Earthquake)

14.4.2.1 भूकम्प के कारण (Causes of Earthquake)

14.4.2.2 भूकम्प के प्रकार (Classification of Earthquake)

14.4.2.3 भूकम्प के संवेदनशील क्षेत्र (Earthquake sencitive areas)

14.4.2.4 भूकम्पों का प्रभाव (Effects of Earthquake)

14.4.2.5 भूकम्प का प्रबन्धन (Management of Earthquake)

14.4.3 चक्रवात (Cyclone)

14.4.3.1 चक्रवातों के प्रकार (Types of Cyclone)

14.4.3.2 चक्रवातों का प्रबन्धन (Management of Earthquake)

14.4.4 भू–स्खलन (Land Slides)

14.4.4.1 भू–स्खलन के कारण (Causes of Land Slides)

14.4.4.2 भू–स्खलन के प्रकार (Types of Land Slides)

14.4.4.3 भू–स्खलन का प्रबन्धन (Management of Land Slides)

14.4.5 सुनामी (Tsunami)

14.4.5.1 सुनामी के भौतिक लक्षण (Physical charactor of Tsunami)
14.4.5.2 सुनामी के कारण (Causes of Tsunami)
14.4.5.3 सुनामी का प्रबन्धन (Management of Tsunami)
14.5 इकाई का सारांश (Summery)
14.6 बोध प्रश्नों का उत्तर
14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

14.1 उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई के निम्न उद्देश्य हैं:

1. ठोस कचरे के प्रबन्धन की जानकारी देना
2. प्राकृतिक आपदाओं के बारे में लोगों को जानकारी देना,
3. प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले नुकसान को कम करना,
4. प्राकृतिक आपदाओं का प्रबन्धन

14.2 प्रस्तावना (Introduction)

वर्तमान में पूरे विश्व का ध्यान प्रदूषण को कम करने में लगा हुआ है । औद्योगीकरण से मानव विकास के साथ–साथ प्रदूषण संबंधी समस्याएं भी बढ़ी हैं । औद्योगिकरण व नगरीयकरण से अपशिष्ट की मात्रा बढ़ी है । उद्योगों से उत्सर्जित ठोस कचरे का प्रबन्धन भी वर्तमान में एक विकट समस्या के रूप में उभर कर आई है । पर्यावरण के असंतुलित होने से प्राकृतिक आपदाओं में भी बढ़ोतरी हुई है । प्राकृतिक आपदाओं के कारण विश्व में प्रति वर्ष हजारों की संख्या में लोगों की मौत होती है । प्राकृतिक आपदाओं पर मानव का कोई भी नियंत्रण नहीं है पर इनके प्रबन्धन का विकास कर इनसे होने वाली क्षति को कम किया जा सकता है । भारत के गुजरात राज्य में 26 जनवरी 2001 में आये भूकम्प में लोगों की मौत का एक कारण आपदा प्रबन्धन की कमी भी थी । अत: आपदा प्रबन्धन आज के समय की महती आवश्यकता है ।

14.3 शहरी एवं औद्योगिक अपशिष्टों का प्रभाव (Effect of Urban and Industrial waste)

मानव जनसंख्या में वृद्धि के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों का शहरों में प्रवजन से नगरीय प्रबन्धन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है । इसके अलावा औद्योगिकरण एवं लोगों के बढ़ते जीवन स्तर के कारण अपशिष्टों की मात्रा में वृद्धि हुई है । सामान्यत: विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट मानव जनित कारकों से उत्पन्न होते हैं । स्त्रोतों के आधार पर अपशिष्ट को निम्न वर्गो में विभाजित कर सकते हैं :–

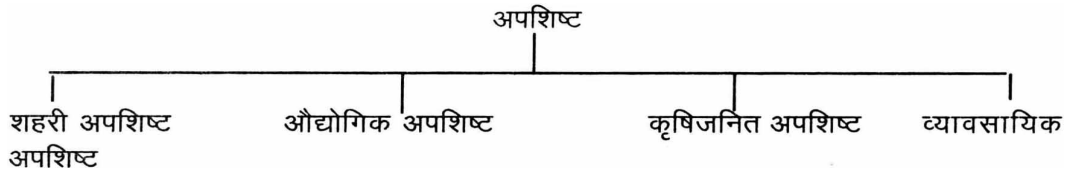

14.3.1 शहरी अपशिष्ट (Urban Waste)

मानव की बदलती जीवन शैली के कारण शहरों में अपशिष्ट की मात्रा में भी बढ़ोतरी हुई है । शहरी अपशिष्ट में घरेलू कचरे के साथ–साथ व्यावसायिक अपशिष्ट भी आ जाता है । लगभग 90 प्रतिशत घरेलू कचरा सीधे ही पर्यावरण में विसर्जित कर दिया जाता है । यही अपशिष्ट मृदा जल व वायु प्रदूषण का कारण बनता है ।

14.3.1.1 शहरी अपशिष्ट के प्रकार (Types of Urban waste)

अपशिष्ट के गुण के आधार पर अपशिष्ट को हम दो वर्गो में बांट सकते हैं :

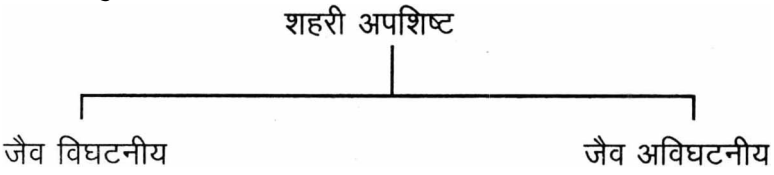

अ) जैव विघटनीय (Biodegradable waste)

इस वर्ग के अन्र्तगत ऐसे अपशिष्ट आते हैं जिन्हें सूक्ष्म जीवों द्वारा आसानी से गलाया–सड़ाया जा सके । खाद्य अपशिष्ट, मानव विष्टा कागज व राख इसी प्रकार के शहरी अपशिष्ट हैं । इस प्रकार के अपशिष्टों का प्रबन्धन आसान होता है ।

ब) जैव अविघटनीय (Non Biodegradable waste)

इस वर्ग के अन्र्तगत आने वाले अपशिष्टों को जीव द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता है । यह अपशिष्ट मानव के लिये बहुत ही हानिकारक होते हैं । क्योंकि एक बार पर्यावरण में आने के बाद में इन्हें आसानी से नष्ट नहीं किया जा सकता, है । पॉलीथीन इसी वर्ग के मुख्य प्रदूषक है ।

14.3.2 औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial Waste)

मानव विकास में सबसे बड़ा हाथ उद्योगों का है । औद्योगिकीकरण से मानव की जीवन शैली का स्तर तो उठा है परन्तु उद्योगों के साथ उद्योग संबंधी समस्याएं भी बढ़ी हैं । इनमें औद्योगिक अपशिष्टों का प्रबन्धन एक बड़ी समस्या है । प्रतिवर्ष उद्योगों से बहुत बड़ी मात्रा में ठोस कचरा उत्सर्जित किया जाता है जो कि पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है । उद्योगों के आधार पर औद्योगिक अपशिष्ट को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :–

14.3.2.1 औद्योगिक अपशिष्ट के प्रकार (Types of Industrial waste)

स्त्रोत के आधार औद्योगिक कचरे को कई वर्गो में विभाजित किया जा सकता है :–

1. निर्माण उद्योग : बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण इनके आवश्यकता पूर्ति के लिये प्रति वर्ष बड़ी संख्या में उद्योगों व आवास स्थानों का निर्माण किया जाता है । निर्माण प्रक्रिया के कारण बड़ी मात्रा में ठोस कचरा उत्पन्न होता है । यह कचरा कंक्रीट, सीमेंट, मिट्टी, प्लास्टिक व अन्य दूसरे पदार्थो का मिश्रण होता है ।
2. धातुकर्म उद्योग : खान से खनिज प्राप्त करने के पश्चात् उस खनिज से उपयोगी धातु बनाये जाते हैं । इस धातु बनाने की प्रक्रिया के दौरान स्लैग तथा स्क्रेप के रूप में धात्विक अपशिष्ट उत्सर्जित

होते हैं । औद्योगीकरण के बाद उद्योग संबंधी ठोस कचरे की मात्रा में भारी बढ़ोतरी हुई है । ये मानव के लिये बहुत ही हानिकारक होते हैं ।

3. खनन प्रक्रिया : खनिज पदार्थ मानव जीवन में मुख्य स्थान रखते हैं । खनिजों का प्रयोग विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाने के लिये किया जाता है । खनिज प्रक्रिया से ठोस कचरा ही उत्पन्न नहीं होता अपितु इस ठोस कचरे से प्राकृतिक सौन्दर्य भी प्रभावित होता है । खनन प्रक्रिया से उपजाऊ जमीन, जैव विविधता, वातावरण व जल आदि की गुणवत्ता प्रभावित होती है ।
4. कागज व लुग्दी उद्योग : कागज हमारे दैनिक जीवन में मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है । इस प्रकार के उद्योग से सेलुलोज, रेशे, कास्टिक, छाल, लकड़ी की छीलन और विभिन्न प्रकार के रासायनिक अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं । ये अपशिष्ट जल व मृदा प्रदूषण के कारण बनते हैं । कागज बनाने के लिये प्रतिवर्ष भारी संख्या में पेड़ों की कटाई होती है । इससे पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।
5. वस्त्र उद्योग : इनसे निकलने वाले अपशिष्ट सामान्यत: क्षारीय प्रकृति के होते हैं । वस्त्र उद्योग जल प्रदूषण का प्रमुख कारण है । रंजक जो कि कपड़े रंगाई के काम आता है वस्त्र उद्योग से निकलने वाला प्रमुख प्रदूषक है । राजस्थान का पाली व भीलवाड़ा जिले इस प्रकार के प्रदूषण से ग्रसित है । वस्त्र उद्योग का मुख्य प्रभाव जल व मृदा पर पड़ता है ।
6. आणविक रियेक्टर. इससे विषाक्त, रेडियो सक्रिय, संक्षारक एवं विस्फोटक अपशिष्ट उत्सर्जित किये जाते हैं । यह अपशिष्ट किसी भी रूप में समस्त जैविक समुदाय के लिये घातक होते हैं ।

14.3.3 ठोस कचरे का प्रबन्धन (Management of solid waste)

1. अपशिष्ट की मात्रा को घटाना (Reduced waste)

अपशिष्ट नियंत्रण के लिये उसकी मात्रा को कम करना होगा । इसके लिये उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट की मात्रा निर्धारित करनी होगी । अपशिष्ट की मात्रा कम होने से उसका प्रबन्धन भी आसान हो जायेगा ।

2. पुन: चक्रीकरण (Recycling)

यह विधि अपशिष्ट नियंत्रण और प्रबन्धन की सबसे अच्छी विधि है ।इस विधि के अन्तर्गत ठोस कचरे को वापस उद्योगों में कच्चे पदार्थ के रूप में काम लिया जाता है । पुन:चक्रीकरण से कच्चे पदार्थ पर पड़ने वाला दवाब भी कम होता है । अपशिष्ट को पुन: उपयोग में लेने से अपशिष्ट की मात्रा में कमी हो जाती है । इससे उसके प्रबन्धन में सहायता मिलती है ।

3. निस्तारण (Disposal)

इस विधि में अपशिष्ट को एकत्र कर विभिन्न विधियों से इसका नियंत्रण किया जाता है । यह निम्न हैं:–

अ) भस्मीकरण (Incineration)

इस विधि में ठोस कचरे को उच्च ताप पर जलाया जाता है । जलाने पर यह राख में बदल जाता है । इस राख को खेतों में खाद के रूप में काम लिया जा सकता है ।

ब) खाद के रूप में परिवर्तन (Compositing)

इस विधि के अन्र्तगत जैव विघटनीय पदार्थो को गला–सड़ा कर खाद के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है । इसे खेतों में खाद के रूप में काम लिया जाता है । इस खाद की गुणवत्ता अच्छी होती है । इसलिये खेतों के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होती है ।

स) जमीन में दबाना (Dumping)

सम्पूर्ण अपशिष्ट को पुन:चक्रीकरण संभव नहीं है । इस विधि के अन्र्तगत अपशिष्ट को जमीन में गहरा गड्ढा खोदकर दबा दिया जाता है । अपशिष्ट को इतनी गहराई पर दबाया जाता है कि इसका मृदा और जल पर कोई भी प्रभाव न पड़े ।

बोध प्रश्न

1. भस्मीकरण में ठोस कचरे को ..... ताप पर जलाया जाता है ।
2. शहरी अपशिष्ट को ..... एवं ..... में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

14.4 प्राकृतिक आपदाओं का प्रबन्धन(Management of Natural Disasters)

प्राकृतिक आपदा पर मानव नियंत्रण नहीं होता है । परन्तु प्राकृतिक आपदाओं के लिये मानव ही जिम्मेदार है । वर्तमान में प्रतिवर्ष पूरे विश्व में हजारों की संख्या में लोग बाढ़, भूकम्प, चक्रवात या सुनामी के शिकार होते हैं । प्राकृतिक असंतुलन बढने से प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि हुई है । वर्तमान समय की मांग है कि प्राकृतिक आपदाओं का अध्ययन कर इनके प्रबन्धन का विकास करें ।

14.4.1 बाढ़ (Flood)

बाढ़ एक सामान्य रूप से पाई जाने वाली मुख्य प्राकृतिक आपदा है । विश्व की नदियों का बाढ़ क्षेत्र 3.51 प्रतिशत है व यह 19.5 प्रतिशत जनसंख्या को प्रभावित करती है । भारत में प्रतिवर्ष लगभग 40 करोड़ हैक्टेयर भूमि व 39 करोड़ व्यक्ति बाढ़ से प्रभावित होते हैं । भारत में सूखे को छोड़ दें तो 90 प्रतिशत नुकसान बाढ़ से ही होता है ।

14.4.1.1 बाढ़ के कारण (Causes of Flood)

1. नदियों के उद्गम स्थल तथा पहाड़ी भागों में अनियमित वृक्षों की कटाई से वर्षा का जल तेजी से ढालों की ओर बढकर बाढ की स्थिति उत्पन्न कर देता है ।
2. नदियों के अतिरिक्त जल को ग्रहण करने वाले निचले क्षेत्रों में खेती व सिंचाई किये जाने से बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।
3. कभी–कभी मूसलाधार वर्षा से इतना जल बरस जाता है कि वह अपने क्षेत्र से बाहर फैल जाता है और बाढ़ का कारण बनता है ।
4. तटीय भागों में चक्रवात एवं भीषण तूफानों के कारण सामुद्रिक जल स्थलीय भागों में बाढ़ लाने में सहायक रहता है ।
5. नदियों के किनारे की भूमि पर मानव के असीमित आक्रमण से नदियां वर्षा का जल वहन नहीं कर पाती हैं । जिससे जल किनारों को तोड़कर बाढ़ लाने में सहायक होता है ।
6. नदियों के मार्गो में परिवर्तन होने तथा घुमाव होने से बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।

7. भूकम्प व सुनामी जैसी अन्य प्राकृतिक आपदाएं भी बाढ़ आने में सहायक होती हैं ।

14.4.1.2 बाढ़ के प्रकार (Types of Flood)

बाढ़ की स्थिति के अनुसार बाढ़ को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है

अ. आकस्मिक स्थानीय बाढ़

थोड़े समय में अत्यधिक वर्षा होने तथा मिट्टी द्वारा पानी सोखने की क्षमता कम होने पर आकस्मिक बाढ़ आती है । पेड़ों की संख्या का कम होना भी स्थानीय बाढ़ आने में सहायक होता है।

ब. नदी की बाढ़

भारी वर्षा के कारण नदी के अपने औसत स्तर से अधिक ऊपर बहने के कारण यह बाढ़ आती है । विविध कारणों से जल प्रवाह में अवरोध होना भी नदी की बाढ़ में सहायक है ।

स. तटीय बाढ़

तूफानों के कारण उत्पन्न समुद्र की लहरों की अचानक उठने से तटीय बाढ आती है । इसके कारण समुद्रीय बंध टूट जाते हैं और नदी का जल समुद्र के पानी से मिल नहीं पाता । इससे बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।

14.4.1.3 बाढ़ प्रभावित क्षेत्र (Flood affected area)

बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों को पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

अ. पूर्वी खंड

यह क्षेत्र पश्चिम में घाघरा नदी से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक फैला है । इन क्षेत्रों में यमुना, घाघरा, मंडक, सोना, कोसी, दामोदर व ब्रह्मपुत्र नदियां आती है । ये नदियां भारी मात्रा में जल और चिकनी मिट्टी बहाकर लाती हैं परिणामस्वरूप निचले क्षेत्रों को जलमग्न कर देती हैं । इस 'खंड में पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तरी बिहार, पश्चिमी बंगाल, आसाम, मणिपुर और अरूणाचल प्रदेश सम्मिलित हैं ।

ब. उत्तरी खंड

इस खंड में आने वाली नदियां छोटी हैं । इस खंड में व्यास, झेलम, सतलज, यमुना और सिंधु नदियां आती है । मूसलाधार वर्षा से इतना जल बरस जाता है कि ये अपने क्षेत्र से बाहर फैल जाता है । इस खंड के अर्न्तगत जग कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश आता है ।

स. मध्यवती खंड

इस खंड में चम्बल, बनास, नर्मदा और साबरमती नदियां आती हैं जो बाढ़ों से प्रभावित रहती हैं । इस खंड का विस्तार गुजरात, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में बिखरे रूप में मिलता है ।

द. दक्षिणी खंड

इस खंड में कृष्णा, कावेरी, गोदावरी तथा पेन्नार नदियां शामिल हैं । यहां वर्षा की मात्रा कम होने व नदियों में जल व मिट्टी की मात्रा कम होने के कारण बाढ़ सामान्यत: प्रतिवर्ष न आकर लम्बे अंतराल पर आती है । इस खंड के अर्न्तगत महाराष्ट्र, कर्नाटक, आध्र प्रदेश और तमिलनाडू राज्य सम्मिलित हैं ।

य. मध्य पूर्वी खंड

इस खंड में महानदी व कावेरी नदियाँ आती हैं । इन नदियाँ की बहाव गति धीमी होती है । लेकिन जल की मात्रा अधिक होने के कारण उड़ीसा राज्य में बाढ़ आ जाती है ।

14.4.1.4 बाढ़ प्रबन्धन (Flood Management)

बाढ़ रोकने पर केन्द्रीय सरकार का ध्यान प्रारम्भ से ही रहा है । प्रथम योजना में 13 करोड़ रूपये इस मद पर व्यय किये गये जो बढते–बढ़ते 8वीं योजना में 1096 करोड़ रूपये हो गया । बाढ का नियंत्रण हेतु निम्न उपाय किये जा सकते हैं:–

बाढ़ आने के पहले क्या करें

1. ताजा संकटकालीन सूचनाओं को रेडियो व टेलीविजन पर निरन्तर प्रसारित करें ।
2. ऐसी स्थिति में क्षेत्रीय स्टेशन, लाउडस्पीकर अथवा अन्य माध्यम से सूचना का समय रहते प्रसारण होना चाहिये ।
3. बाढ़ की संभावना होने पर तुरन्त अपने परिवार के साथ सुरक्षित स्थान पर चले जायें ।
4. पलायन करते समय अपने पालतू जानवरों को भी सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने की व्यवस्था करें।
5. बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में जल निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिये ।
6. सामान्य व्यक्ति को बाढ़ के प्रति जागरूक बनाये । ताकि वो अपना इससे बचाव कर सकें ।

बाढ़ के समय क्या करें?

1. लीक होती गैस व शॉर्ट सर्किट अन्य ऐसी विपदाएं हैं जो बाढ़ के कारण बढ़ सकती हैं । बाढ़ के तुरन्त बाद विद्युत उपकरण व स्विच चालू न करें । इससे आग लगने का खतरा बढ़ जाता है।
2. बाढ़ आने पर ऊँचे व सुरक्षित स्थान पर चले जायें ।
3. शुद्ध जल व खाद्य सामग्री की व्यवस्था करें ।
4. बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में जल निकासी की व्यवस्था करें
5. घायलों के लिये प्राथमिक चिकित्सा की व्यवस्था करें ।

बाढ़ के बाद क्या करें?

1. बाढ़ प्रभावित व्यक्तियों के रहने व खाने की उचित व्यवस्था करें
2. जिला मुख्यालय पर कलेक्टर की अध्यक्षता में राहत समिति बनाना जिसमें विभिन्न विभागों के अध्यक्षों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं की सहभागिता हो ।
3. बाढ़ प्रभावित जनता के लिये पीने की सुरक्षित व्यवस्था करें ।
4. स्वास्थ्य जांच हेतु पर्याप्त दवाओं सहित चल स्वास्थ्य टीमों की व्यवस्था करें ।
5. विद्यालय अस्पताल व अन्य सार्वजनिक भवनों की मरम्मत व पुर्ननिर्माण की व्यवस्था करें ।
6. बाढ़ प्रभावित व्यक्तियों को मुआवजे की व्यवस्था करें ।

बोध प्रश्न

1. आकस्मिक बाढ़ का मुख्य कारण बताईये ।
2. विश्व की कितनी प्रतिशत जनसंख्या प्रतिवर्ष बाढ़ से प्रभावित होती है ।

14.4.2 भूकम्प (Earthquake)

भूकम्प एक आकस्मिक व विनाशकारी परिघटना है इसके कारण जहां सैकड़ों मकान धराशायी हो जाते हैं । वहीं अनगिनत व्यक्ति असमय ही काल कवलित हो जाते हैं । भूकम्प शब्द का अर्थ है 'पृथ्वी का हिलना, पृथ्वी के गर्म में होने वाली किसी हलचल के कारण जब धरातल का कोई भाग अचानक हिलने लगता है तो उसे भूकम्प कहते हैं । " सामान्यत: पृथ्वी में लगातार कम्पन होते रहते हैं किन्तु अधिकांश कम्पन बहुत हल्के होते हैं और उनका पता ही नही चलता । इन कम्पनों का जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

14.4.2.1 भूकम्प के कारण (Causes of Earthquake)

अ. अविवर्तनिक कारण

प्राकृतिक क्रियाएं भी भूकम्प के लिये जिम्मेदार होती हैं । जब ज्वालामुखी से एक उद्‌गार निकलते हैं और भूस्खलन की क्रिया होती है तो पृथ्वी की सतह पर कम्पन होते हैं । इसके अतिरिक्त बम फटने अथवा भारी वाहनों और रेलगाड़ियों की तीव्र गति से भी कम्पन पैदा होते हैं । किन्तु इस प्रकार के भूकम्प बहुत हल्के होते हैं ।

ब. विवर्तनिक कारण

पृथ्वी के गर्भ में अधिक गहराई पर तापमान और दाब बहुत अधिक होता है । यह दाब सभी स्थानों पर समान नहीं होता । कभी–कभी यह दाब इतना अधिक बढ़ जाता है जिसके कारण गहराई पर स्थित चट्टानें मुड़ने लगती हैं और अंतत: टूट जाती है । इस कारण पृथ्वी पर कम्पन होता है और भूकम्प आता है । चट्टानों के टूटे भाग ऊपर अथवा नीचे की ओर सरक जाते हैं, इसके भ्रंश कहते हैं।

14.4.2.2 भूकम्प का वर्गीकरण (Classification of Earthquake)

भूकम्प का वर्गीकरण, भूकम्प मूल की गहराई के आधार पर किया जाता है जो मुख्यत: चार प्रकार के होते हैं :–

1. सतही भूकम्प

इस तरह के भूकम्पों के भूकम्प मूल की गहराई एक किलोमीटर तक स्थित होती है ।

2. सामान्य भूकम्प

इस तरह के भूकम्प के भूकम्प मूल 50 किलोमीटर तक की गहराई पर स्थित होता है ।

3. मध्यवर्ती भूकम्प

इन भूकम्पों के भूकम्प मूल की गहराई 50 से 250 किलोमीटर तक होती है ।

4. पातालीय भूकम्प

इस तरह के भूकम्पों की गहराई धरातल के नीचे 250 से 700 किलोमीटर के बीच होती है। इस प्रकार के भूकम्प कम आते है ।

14.4.2.3 भूकम्प के संवेदनशील क्षेत्र(Earthquake sensitive areas)

साधारणतया भूकम्प कहीं भी आ सकते हैं, किन्तु कुछ क्षेत्र इसके लिये संवेदनशील होते हैं, दुर्भाग्यवश जिन क्षेत्रों में जैविक विविधता अधिक पायी जाती है, भारत में वे क्षेत्र भूकम्प के प्रति अधिक

संवेदनशील क्षेत्र हैं । ये क्षेत्र पृथ्वी के दुर्बल भाग होते हैं । जहां वलन, भ्रंश जैसी हिलने की घटनाएं अधिक होती हैं ।संरचना के अनुसार देश को निम्नलिखित तीन भूकम्प क्षेत्रों में बांटा जा सकता है:–

1. हिमालय का भूकम्प क्षेत्र

यह भूभाग अभी भी अपने निर्माण की स्थिति में है । इसलिये भूसंतुलन की दृष्टि से यह ,एक अस्थिर भाग है । जिससे क्षेत्र में प्राय: भूकम्प अनुभव किये जाते हैं ।

2. उत्तरी मैदान का भूकम्प क्षेत्र

इस मैदान की रचना असंघटित जलोढ़ मिट्टी से हुई है और इसमें हिमालय के निर्माण के समय सम्पीडन के कारण कई दरारें बन गई । भूगर्भित हलचलों से यह प्रदेश जल्दी कम्पित हो जाता है ।

3. दक्षिण के पठार का भूकम्प क्षेत्र

यह भारत का प्राचीन और कठोर स्थल खंड है जो भूसंतुलन की दृष्टि से स्थिर भाग माना जाता है । इसलिये इस क्षेत्र में बहुत ही कम भूकम्प आते हैं । जिनमें 1967 का कोयना भूकम्प एवं 1993 का लातूर भूकम्प महत्वपूर्ण है ।

14.4.2.4 भूकम्पों का प्रभाव (Effect of Earthquake)

प्राकृतिक आपदाओं में भूकम्प सबसे अधिक भीषण और विनाशकारी होते हैं । भूकम्प कुछ क्षणों में ही व्यापक जनहानि के कारण बन जाते हैं । अत: मानव भूकम्पों को सदैव अभिशाप मानता आया है । भूकम्प के प्रकोप से इमारतें ध्वस्त हो जाती हैं, भूमि धंस जाती है, दरारें पड़ जाती हैं, समुद्र में तूफान आते हैं और प्राय: जन व धन दोनों की व्यापक हानि होती है ।

इन हानियों के अतिरिक्त भूकम्प के कुछ लाभ भी होते हैं । भूकम्प तरंगों का अध्ययन पृथ्वी की आन्तरिक संरचना की जानकारी पाने में सहायक होता है । समुद्र तट के धंसने से अच्छी खाड़ी तथा बन्दरगाह भी बन जाते हैं । भूकम्प के कारण धरातल पर कई नवीन भू–आकारों जैसे द्वीप, झीलें, पठार आदि का निर्माण होता है जो कि मानव के लिये कभी–कभी बढ़े उपयोगी सिद्ध होते हैं ।

14.4.2.5 भूकम्प का प्रबन्धन (Management of Earthquake)

भूकम्प से बचाव के उपायों को प्रमुखत: तीन चरणों में बांटा जा सकता है

1. भूकम्प पूर्व क्या करें?

1. भूकम्प से मकानों में क्षति न हो अथवा कम क्षति हो इसके लिये स्थानीय प्रशासन के अर्न्तगत कार्यरत अभियन्ताओं एवं विशेषज्ञों की देख–रेख में भूकम्प प्रतिरोधी निर्माण किया जाये ।
2. घरों में पौधे भारी बरतनों में नहीं लटकाये । भूकम्प के समय इनके गिरने से भारी नुकसान हो सकता है ।
3. ज्वलनशील पदार्थ को सुरक्षित बक्से में रखे ।
4. स्कूल व महाविद्यालय स्तर पर बच्चों को भूकम्प के बारे में जानकारी दी जानी चाहिये ।
5. भूकम्प सम्भावित क्षेत्रों में सरकारी व स्वयंसेवी संस्थाओं की सहभागिता से बचाव दल बनायें। जो समय आने पर लोगों की मदद कर सके ।
6. संकटकालीन सूचनाओं को रेडियो व टेलीविजन पर निरन्तर प्रसारित करें ।
7. भूकम्प की संभावना होने पर खुले स्थान पर चले जाना चाहिये ।

2. भूकम्प के समय क्या करें?

1. भूकम्प आने पर खुला स्थान जहां भवन, पेड़, बिजली के खंभे और पावर लाईन ना हो से दूर सुरक्षित स्थान ढूंढें ।
2. आवश्यकतानुसार दवाईयां, कंबल व अन्य सहायता सामग्रियों के वितरण का प्रबन्ध किया जाये ।
3. ज्वलनशील वस्तुओं व पदार्थो का उपयोग न करें
4. यदि गैस लीक होने की संभावना हो तो बिल्डिंग को छोड़ दें जब तक यह सुनिश्चित न हो जाये कि गैस लीक नहीं होगी, आप माचिस न जलायें और न ही बिजली को चालू करने का प्रयास करें ।
5. घायलों को प्राथमिक चिकित्सा उपलब्ध करायें ।

3. भूकम्प के बाद क्या करें?

1. मृतको एवं पशुओं के अवशेषों को एकत्रित करें व उनका निस्तारण करें ।
2. अस्थायी शरण स्थल का प्रबन्ध करें । भोजन व पानी की अशिर्त का प्रबन्ध करें और पानी की आपूर्ति का पुर्नस्थापन करें ।
3. दूरसंचार व सूचना की निरन्तरता बनाये रखने हेतु लाईन का पुनरूद्धार करें ।
4. परिवहन संबंधित संचार व्यवस्था की पुर्नस्थापना करें ।
5. तुरन्त कंट्रोल रूम की स्थापना की जाये । यह व्यवस्था जिला मुख्यालय, ब्लॉक मुख्यालय और प्रभावित क्षेत्र पर की जावे ।
6. चोरी और लूट आदि की संभावनाओं को कम करने के लिये सेना व पैरा मिलिट्री फोर्सेस से सहायता ली जावे ।
7. घायलों की चिकित्सा के लिये मोबाइल युनिट का प्रबन्ध किया जावे ।

बोध प्रश्न

1. मध्यवर्ती भूकम्प के भूकम्प मूल की गहराई .... से..... किमी. तक होती है ।
2. चट्टानों के भाग को ऊपर अथवा नीचे की ओर सरक जाने को ..... कहते हैं ।

14.4.3 चक्रवात (Cyclone)

जल भंवर को त रह अस्थिर और परिवर्तनशील हवाओं के भंवर जिनके केन्द्र में निम्न वायुदाब और केन्द्र के बाहर उच्च वायुदाब होता है चक्रवात कहलाते हैं । चक्रवातीय हवायें बाहर से अन्दर केन्द्र की ओर प्रवाहित होती हैं । सामान्यत: चक्रवात अण्डाकार होता है । चक्रवात के केन्द्र पर दाब सबसे कम होता है और केन्द्र के बाहर की ओर क्रमश: वायुदाब बढता जाता है ।

फैरल के नियमानुसार हवाएं उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी दायीं ओर, और दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने कई ओर मुड़ जाती है । अर्थात् उत्तरी गोलार्द्ध में हवाएं घडी की सुई की विपरीत दिशा और दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की दिशा में मुड़ जाती हैं ।

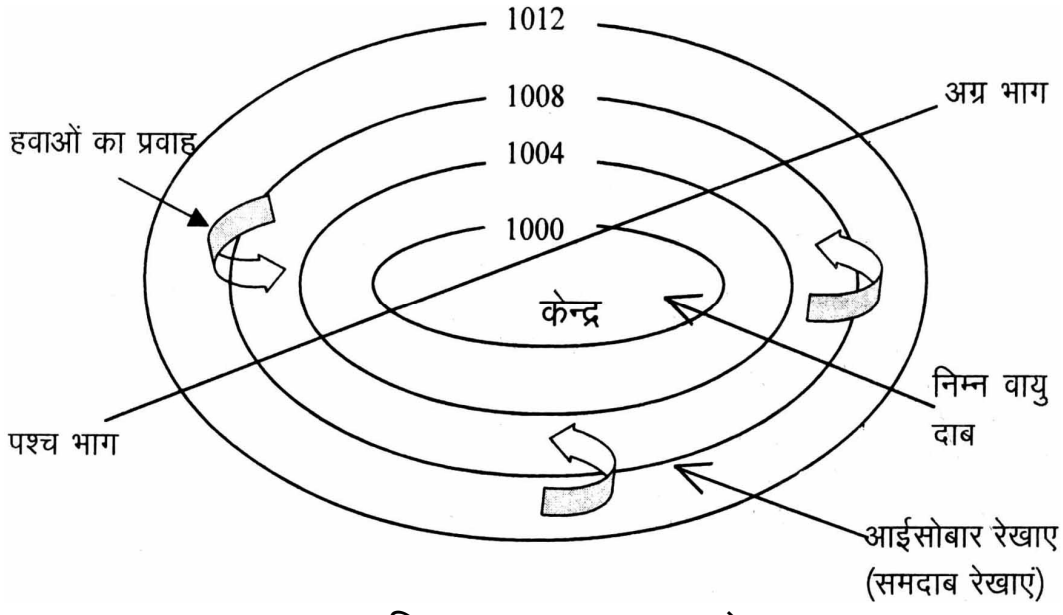

चित्र : चक्रवात का सामान्य आरेख

वे रेखाएं जो समान वायुमण्डलीय दाब वाले विभिन्न स्थानों को आपस में जोड़ती है उन्हें समदाब रेखाएं या आइसोबार रेखाएं कहते हैं ।

14.4.3.1 चक्रवातों के प्रकार (Types of Cyclone)

चक्रवात दो प्रकार के होते हैं :–

अ. उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात (Tropical Cyclone)

भूमध्य रेखा के दोनों ओर कर्क एवं मकर रेखाओं के मध्य आने वाले चक्रवातों को उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात कहते हैं । इनकी अपनी विशिष्ट गति, आकार एवं मौसम संबंधी विविध घटनाएं होती हैं ।

उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के निम्न अभिलक्षण होते हैं :

(i) इनके केन्द्र में न्यून दाब होता है । इनकी सभी दाब रेखाओं का स्वरूप गोलाकार होता है ।

(ii) इनके आकारों में काफी भिन्नता होती है । साधारणतया इनका व्यास 80 से 300 किलोमीटर तक आंका गया है ।

(iii) इन चक्रवातों की चाल में काफी अन्तर पाया जाता है । सागरों पर इनकी चाल काफी तेज होती है और स्थलों पर बहुत ही कम होती है और धरातल के मध्य पहुंचते-पहुंचते बिल्कुल विलीन हो जाते हैं । इनकी औसत गति 30 से 35 किलोमीटर प्रतिघण्टे की होती है ।

(iv) सामान्यत: यह गर्मियों के मौसम में आता है ।

इन चक्रवातों को इनके आकार, स्वभाव तथा विभिन्न विनाशकारी घटनाओं के फलस्वरूप निम्नलिखित भागों में बांटा जाता है :

1. उष्ण कटिबन्धीय विक्षोभ
2. उष्ण कटिबन्धीय अवदाब
3. उष्ण कटिबन्धीय तूफान

4. हरिकेन या टाईफून
5. टारनेडो

ब. शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात (Temperate Cyclone)

(i) मध्य अक्षांश में निर्मित वायु विक्षोभ के केन्द्र में कम दाब तथा बाहर की ओर अधिक दाब होता है और प्राय: ये गोलाकार या अण्डाकार आकार के होते हैं ।

(ii) इनका निर्माण दो विपरीत स्वभाव वाली ठण्डी तथा उष्णार्द्र हवाओं के मिलने के कारण होता है।

(iii) पवन की गति सामान्यत: इनमें 20 किलोमीटर प्रति घण्टा से कम होती है ।

(iv) शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात का आकार 20 से 30 किलोमीटर तक होता है ।

शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :–

1. तापीय चक्रवात
2. गतिक चक्रवात
3. प्रवासी चक्रवात

14.4.3.2 चक्रवात का प्रबन्धन (Management of Cyclone)

चक्रवात प्रबन्धन को मुख्यत: तीन चरणों में बांटा जा सकता है :–

चक्रवात से पूर्व के कार्य

1. चक्रवात के संभावित क्षेत्रों में सड़क पक्की बनानी चाहिये । इससे चक्रवात के समय सभी सुविधाएं आसानी से प्रभावित क्षेत्र तक पहुंच जाती हैं ।
2. चक्रवात नियंत्रण केन्द्र की स्थापना करनी चाहिए ।
3. तटीय प्रदेशों में बड़े पेड़ो को अवरोध के रूप लगाना चाहिये । इससे जल के वेग को कम कर हानि में कमी की जा सकती है ।
4. चक्रवात संभावित क्षेत्रों में घर बनाने में अभियांत्रिकी विभाग की सहायता लेनी चाहिये ।
5. स्कूल व महाविद्यालय स्तर पर चक्रवात संबंधी शिक्षा देनी चाहिये ।

चक्रवात के समय क्या करें ?

1. चक्रवात संभावित क्षेत्रों से निकलकर सुरक्षित स्थान पर चले जाना चाहिए ।
2. घायलों को तुरन्त प्राथमिक चिकित्सा उपलब्ध कराना चाहिये ।
3. पालतू जानवरों को खोल दें जिससे वे सुरक्षित स्थान पर जा सके ।
4. चक्रवात संबंधी सूचना का रेडियो और टेलीविजन पर निरन्तर प्रसारण किया जाना चाहिये ।
5. चक्रवात प्रभावित व्यक्तियों के लिये खाने–पीने और रहने के लिये अस्थायी घर की व्यवस्था करनी चाहिये ।
6. चक्रवात से प्रभावित क्षेत्रों में जल निकासी की व्यवस्था करें ।

चक्रवात के बाद क्या करे?

1. चक्रवात के बाद पुनर्निमाण का कार्य करें ।
2. चक्रवात से प्रभावित व्यक्तियों को मुआवजा प्रदान करना चाहिये ।
3. दूर संचार व यातायात व्यवस्था को दुरूस्त करना चाहिये ।

4. चक्रवात के बाद महामारी फैलने की आशंका रहती है । इसलिये जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिये ।
5. चक्रवात प्रभावित क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करायें ।

बोध प्रश्न

1. उष्ण कटीबन्धीय चक्रवात ..... एवं ..... रेखाओं के मध्य आते हैं ।
2. शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात में पवन की गति समान्यत: ..... किमी. प्रति घण्टा तक होती है ।

14.4.4 भू–स्खलन (Land Slides)

भू–स्खलन एक प्राकृतिक विपदा है । भारी वर्षा के कारण पहाड़ो पर स्थित दरारों व छिद्रों से जल बहकर नीचे आता रहता है । जिससे चट्टानों का यह भाग ढीला हो जाता है । गुरूत्वाकर्षण बल के कारण चट्टानों के बढ़े भाग रू कर नीचे की ओर खिसकते जाते हैं । इसे भू–स्खलन कहते ।

भू–स्खलन का मनहूस सिलसिला 1880 में प्रारम्भ हुआ था, जब नैनीताल के स्नोव्यू हिले में हुये विनाशकारी भू–स्खलन से 151 लोग जिन्दा दफन हो गये थे । नैनीताल की नैना पहाडी हो रहे भू–स्खलन से लोगों में आज भी भारी दहशत फैली हुई है ।

14.4.4.1 भू–स्खलन के कारण (Causes of Land Slides)

भू–स्खलन के लिये निम्न कारण उत्तरदायी हैं :–

1. खड़े तथा तीव्र ढाल के कारण भू–स्खलन होता है ।
2. भारी वर्षा से मृदा कटाव के कारण भी भू–स्खलन होता है ।
3. अपक्षय द्वारा जब चट्टानों में बढ़ी–बढ़ी दरारों का निर्माण हो जाता है तो उनके अन्दर बर्फ पिघलने लगती है तथा भू–स्खलन होता है ।
4. कभी–कभी चट्टानों का निचला हिस्सा खत्म हो जाता है जिससे ऊपरी चट्टान होकर नीचे खिसकने लगती है ।
5. गुरूत्व के कारण कभी–कभी बड़े पैमाने पर भू–स्खलन होने लगता है ।
6. जब चट्टानों का स्तर लम्बवत होता है या ये किसी घाटी की तरफ झुकी होती हैं तो भू–स्खलन को बढ़ावा मिलता है ।
7. भू–स्खलन का मुख्य कारण भूकम्प भी रहा है । संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलेरेडो प्रान्त के सान जुवान पर्वत के अधिकतर भू–स्खलन भूकम्पों द्वारा हुये थे ।

14.4.4.2 भू–स्खलन के प्रकार (Types of Land Slides)

सक्रियता एवं स्थलन की मात्रा के आधार पर इसे कई भागों में विभाजित किया जाता है

(अ) अवपतन – इसमें चट्टानों या भूमि का रूक–रूक कर नीचे की ओर स्थलन होता है । इसमें चट्टाने अचानक नीचे की ओर धंस जाती हैं । यह कम दूरी तक ही सीमित रहता

(ब) मलबा स्खलन – यह अवपतन की अपेक्षा बड़े पैमाने पर होता है । इसमें जल की मात्रा कम ही होती है ।

(स) मलबा पात -- इस प्रकार का भू–स्खलन में मलबा अत्यधिक ऊंचाई से गिरता है । इसलिये तल में छोटे–छोटे ढेर बन जाते हैं ।

(द) शैल स्खलन -- इसमें चट्टानों के बड़े–बड़े दुकड़े पहाड़ों के ढाल से खिसककर नीचे गिरते हैं । यह मुख्यत: बसन्त ऋतु के दिनों में होता है जब बर्फ पिघलने लगती है ।

14.4.4.3 भू--स्खलन का प्रबन्धन (Management of Land Slides)

1. भूस्खलन सम्मावित क्षेत्र की पहचान सर्वप्रथम भू–स्खलन संभावित क्षेत्र की पहचान की जानी चाहिये । इन क्षेत्रों में अभियांत्रिकी के सहयोग से भू–स्खलन से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है ।
2. भू–स्खलन के नियंत्रण के उपाय
   (i) जल निकास भू–स्खलन : संभावित क्षेत्रों में जल निकास अच्छा होने से भू–स्खलन की संभावना कम हो जाती है क्योंकि जल निकास अच्छा होने से मृदा कटाव कम हो जाता है ।
   (ii) ढ़लान पर नियंत्रण : अधिक ढलान भू–स्खलन में सहायक होती है । ढलान को कम करके भू–स्खलन को कम किया जा सकता है ।
   (iii) वृक्षारोपण : पैड़-पौधों की जड़ें मृदा कटाव को कम कर भू–स्खलन की संभावना को कम करती हैं ।
3. भू–स्खलन चेतावनी तंत्र : भू–स्खलन संभावित क्षेत्रों में भू–स्खलन चेतावनी तंत्र होना चाहिये । भू–स्खलन की संभावना होने पर चेतावनी तंत्र समय रहते लोगों के पास इसकी जानकारी पहुंचाये । जिससे इससे होने वाले नुकसान को कम किया जा सके ।

बोध प्रश्न

1. वृक्षारोपण भू--स्खलन को..... करने में सहायक है ।
2. संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलेरेडो प्रांत के सान जुआन पर्वत के अधिकतर भू--स्खलन..... के द्वारा होते हैं ।

14.4.5 सुनामी (Tsunami)

सागरीय धरातल में अचानक भूतल विस्थापन होने के कारण समुद्री क्षेत्र में दीर्घ तरंगदैर्ध्य वाली जल तरंगे उत्पन्न होती हैं । यह अत्यन्त विनाशकारी होती हैं । इन्हें सुनामी कहते हैं । इनको "भूकम्पी–समुद्री तरंगे" भी कहते हैं । उदाहरणार्थ 26 दिसम्बर 2004 में हिन्द महासागर के तल में आये भूकम्प के कारण उत्पन्न सुनामी लहरों ने भारत के समुद्र तटीय क्षेत्र कन्याकुमारी एवं इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, श्रीलंका इत्यादि के तटवर्ती क्षेत्रों भारी तबाही मचाई ।

14.4.5.1 सुनामी के भौतिक लक्षण (Physical charactor of Tsunami)

सुनामी तरंगों की तरंग दैर्ध्य गहरे सागरीय क्षेत्रों में नियत रहती है । जब सुनामी आती है तो गहरे समुद्री क्षेत्रों में तरंगों की ऊंचाई असामान्य रूप से बढ़ जाती है । छिछले क्षेत्रों में इनकी तरंगदैर्ध्य घट जाती है । सुनामी समेत सभी तरह की तरंगों में तरंगदैर्ध्य, तरंग उंचाई, आवृत्ति, तरंग गति आदि गुण पाये जाते हैं

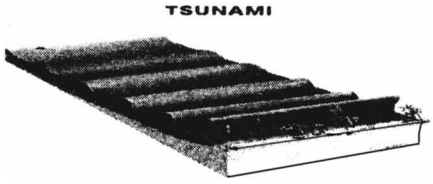

सामान्य समुद्री तरंगों की तरंग गति 90 किलोमीटर/घण्टा होती है । किन्तु सुनामी के संदर्भ में इनकी गति 950 किलोमीटर प्रतिघण्टा (लगभग जेट विमान की गति के बराबर) होती है ।

किसी भी तरंग की गति

$$V = \frac{\lambda}{P}$$

जहां

$V =$ तरंग गति

$P =$ तरंग आवृत्ति

14.4.5.2 सुनामी के कारण (Causes of Tsunami)

1. **भूकम्प** -- प्रशान्त महासागर में प्रतिवर्ष लगभग दो विनाशकारी सुनामी आती है । मुख्यत: यह सभी सुनामी भूकम्प के कारण आती है । भूकम्प के कारण समुद्रीय सतह पर हलचल हो जाती है और सुनामी बन जाती है । सुनामी का आकार भूकम्प के आधार पर निर्भर रहता है ।
2. **ज्वालामुखी** -- तटीय क्षेत्रों में ज्वालामुखी फटने पर सुनामी आती है । जापान में आईलैण्ड ऐसे देश हैं जो ज्वालामुखी जनित सुनामी से प्रभावित हैं ।
3. **भू--स्खलन** -- जब भू–स्खलन की क्रिया समुद्र और खाड़ी में होती है तो सुनामी आती है । भूरखलन भू-कम्प आने और ज्वालामुखी फटने के कारण हो सकता है । अलास्का में 1958 में सुनामी आई थी। जिसमें लहरों की उंचाई 60 मीटर तक थी ।

14.4.5.3 सुनामी प्रबन्धन (Management of Tsunami)

सुनामी एक प्राकृतिक आपदा है । प्रतिवर्ष सुनामी के कारण तटीय क्षेत्रों में जन धन की हानि होती है । सुनामी पर नियन्त्रण संभव नहीं है पर कुछ उपाय कर उससे होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है ।

1. सुनामी चेतावनी तन्त्र : सुनामी संभावित क्षेत्रों में सुनामी चेतावनी तंत्र की स्थापना करनी चाहिये । सुनामी की समय रहते सूचना मिलने पर इसमें होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है ।
2. वृक्षारापेण : सुनामी संभावित क्षेत्रों में वृक्षारोपण किया जाना चाहिये । पेड़–पौधे पानी की गति को कम करने में सहायक होते हैं । इससे सुनामी से होने वाले नुकसान में कमी की जा सकती है ।
3. शिक्षा का प्रचार – सुनामी संबंधी शिक्षा का प्रसार होना चाहिये । शिक्षा का प्रसार स्कूल एवं महाविद्यालय दोनों स्तर पर कर सुनामी से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता ।
4. बचावदल – सुनामी संभावित क्षेत्रों में बचाव दल का गठन करना चाहिये । बचाव दल समय आने वाले लोगों की सहायता करे ।
5. चिकित्सा सुविधा – सुनामी आने वाले समय रहते लोगों को चिकित्सा सुविधा उपलब्ध होनी चाहिये । इसके लिये चिकित्सा दल गठित किये जाने चाहिये ।

बोध प्रश्न

1. समान्य समुद्री तंरगों की गति ..... किमी. प्रति घण्टा होती है ।
2. अलास्का में 1958 में आई सुनामी की लहरों की ऊँचाई ..... मीटर तक थी ।

14.5 इकाई सारांश (Summery)

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, वनोन्मूलन, गरीबी, आदि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पर्यावरण के लिये अत्यधिक दुष्कर साबित हो रही है । मानव विकास के साथ–साथ पर्यावरण का भी ध्यान रखना आवश्यक है । बढ़ते हुये प्रदूषण पर नियंत्रण करना भी जरूरी है अन्यथा ये मानव के लिये विनाशकारी क्षेत्र होगा । विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाएं भी मानव की अति उपभोक्तावादी प्रवृत्ति का परिणाम है । अत: समृत विकास वर्तमान समय की मांग है । इसके द्वारा न केवल हम मानव विकास को प्रेरित कर सकते हैं । बल्कि प्राकृतिक संतुलन भी बनाये रख सकते हैं ।

14.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शहरी एवं औद्योगिक अपशिष्टों का प्रभाव
    1. उच्च ताप
    2. जैव विघटनीय एवं जैव अविघटनीय
2. बाढ़
    1. अत्यधिक वर्षा
    2. 19.5 प्रतिशत
3. भूकम्प
    1. 50 से 250
    2. भ्रंश
4. चक्रवात
    1. कर्क और मकर
    2. 20 किलोमीटर
5. भू–स्खलन
    1. कम
    2. भूकम्प
6. सुनामी
    1. 90 किमी
    2. 60 मीटर

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ठोस कचरा पर्यावरण को किस प्रकार प्रभावित करता है'
2. ठोस कचरे के प्रबन्धन की कौन–कौनसी विधियां हैं?

3. बाढ़ आने के कौन-कौनसे कारण है? समझाइये ।
4. भारत में बाढ़ प्रभावित क्षेत्र कौन–कौनसे हैं?
5. बाढ़ नियंत्रण के उपाय लिखिये ।
6. भूकम्प आने के कारणों को विस्तार से समझाइये ।
7. भूकम्प कितने प्रकार के होते हैं? समझाइये ।
8. चक्रवात कितने प्रकार के होते हैं समझाइये ।
9. आप चक्रवात का प्रबन्धन किस प्रकार करेंगे समझाइये ।
10. भूस्खलन के कारण कौन–कौनसे हैं?
11. भू–स्खलन का प्रबन्धन किस प्रकार करेंगे? समझाइये ।
12. सुनामी के भौतिक लक्षणों को समझाइये ।
13. सुनामी आने के कारण कौन–कौनसे हैं? विस्तार से समझाइये ।

14.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. एस.सी. सान्त्रा : एन्वार्यनमेन्टल साईस
2. पी.डी. शर्मा. ईकॉलोजी एंड एन्वार्यनमेंट
3. एडवर्ड ए. केलर : इन्ट्रोडक्शन ऑफ एन्वार्यनमेन्टल जियोलॉजी

इकाई –15

जलवायु परिवर्तन

(Climatic Change)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 जलवायु परिवर्तन

15.3 हरितगृह प्रभाव या ग्रीन हाउस प्रभाव

15.3.1 हरित गृह प्रभाव क्या होता हैं ?

15.3.2 हरित गृह प्रभाव का महत्व

15.3.3 हरित गृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी कारण

15.3.4 हरित गृह प्रभाव का जनजीवन पर प्रभाव

15.4 वैश्विक ताप वृद्धि या ग्लोबल वार्मिंग

15.4.1 ग्लोबल वार्मिंग के कारण

15.4.2 ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव

15.4.3 ग्लोबल वार्मिंग के समाधान

15.5 ओजोन परत का क्षरण

15.5.1 ओजोन परत क्या है ?

15.5.2 ओजोन परत का महत्व

15.5.3 ओजोन छिद्र

15.5.4 ओजोन परत क्षय के कारण

15.5.5 ओजोन परत क्षय के दुष्प्रभाव

15.5.6 ओजोन परत की सुरक्षा के उपाय

15.6 नाभिकीय दुर्घटनाएं

15.7 अम्लीय वर्षा

15.7.1 अम्लीय वर्षा के कारण

15.7.2 अम्लीय वर्षा के स्त्रोत

15.7.3 अम्लीय वर्षा के प्रभाव

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 संदर्भ ग्रन्थ

15.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.12 प्रश्नों के उत्तर

15. उद्देश्य (Objectives)

विश्व के तापमान में तथा समुद्री स्तरों में वृद्धि, जलवायु में परिवर्तन से अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चक्रवात, तूफान आदि आकस्मिक घटनाओं में वृद्धि, विश्वभर में अजूबा माने जाने वाला ग्रीनलैंड का इन्यूलिसट हिमनद (ग्लेशियर) का पिघलना, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं जैसे त्वचा के कैंसर, अस्थमा, आंखों की बीमारियों का बढ़ना आदि कई ऐसी घटनाएं है जो विश्व की अत्यधिक महत्वपूर्ण समस्याएं बन गई हैं क्योंकि यह पृथ्वी पर जीवों का जीवन खतरे में डाल रही हैं ।

इस इकाई का अध्यच्य करने के बाद आप

- पर्यावरण के साथ मानव हस्तक्षेप की वजह से जलवायु में परिवर्तन के विषय में जान सकेंगे ।
- ग्लोबल वार्मिग 'ग्रीन हाउस प्रभाव', अम्ल वर्षा, ओजोन क्षीणता के कारण और प्रभावों के बारे में विस्तृत रूप से जानकर, उपरोक्त सभी समस्याओं के निराकरण के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे क्योंकि इन समस्याओं को जल्दी नियंत्रित नहीं किया गया तो यह विश्व के विनाश का कारण बन सकती हैं ।
- नाभिकीय ऊर्जा के अनियंत्रण से होने वाली दुर्घटनाओं के बारे में जान सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले खंडों में आप पढ़ चुके है की किस प्रकार मनुष्य के क्रियाकलाप पर्यावरण को प्रभावित करते हैं । आपने यह भी देखा है कि एक ओर कृषि के तीव्र विकास और दूसरी ओर तेजी से शहरीकरण के साथ औद्योगिकरण ने भौतिक और जैविक दोनों प्रकार के संसाधनों को नष्ट कर दिया है । आप बिना फ्रिज और एयरकंडीशनर वाले घर के बारे में सोच भी नहीं सकते हैं क्योंकि हमें इनकी इतनी आदत हो गई है कि यह अब लक्लूरी आइटम न होकर हमारी आवश्यकता में शामिल हो गया है । इसी तरह संचार व आवागमन के साधनों के बिना हम चलने की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं लेकिन क्या हम यह जानते हैं कि हमारी यह आवश्यकता दुनिया के लिए और खुद हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए कितनी विनाशकारी है ।

अत: विश्व पर्यावरण को बचाने एवं विश्व की जलवायु में होने वाले परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी प्रमुख समस्याओं का अध्ययन करें ।

इस इकाई में हम विश्व की अत्यधिक महत्वपूर्ण समस्याएँ जैसे ग्रीन हाउस प्रभाव, ग्लोबल वार्मिग, अम्लीय वर्षा तथा ओजोन परत क्षरण के विभिन्न स्त्रोतों एवं उनकी प्रकृति एवं जीव जंतुओं तथा पेड़–पौधों पर उनके हानिकारक प्रभावों के बारे में अध्ययन करेंगे । इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख नाभिकीय दुर्घटनाओं तथा उनके प्रभाव के बारे में चर्चा करेंगे ।

15.2 जलवायु परिवर्तन (Climate changes)

हमारी पृथ्वी को चारों तरफ से घेरी हुई वायु की परत को वायुमंडल कहते हैं । इस वायुमंडल में होने वाले प्रतिदिन के परिवर्तन को जलवायु कहते हैं । तापमान, दाब, नमी, वर्षा, सूर्य का प्रकाश, बादल तथा वायु का प्रभाव एवं तीव्रता मौसम तथा जलवायु को प्रभावित करते हैं । किसी भी स्थान की जलवायु उसकी समुद्र तल से ऊंचाई, अक्षांश, समुद्र से दूरी तथा अन्य स्थानीय भौगोलिक कारणों (geographical factors) से प्रभावित होती है । सभी परिवर्तन वायुमंडल की क्षोभमंडल

(troposphere) स्तर में होते हैं जो कि समतापमंडल (stratosphere) से घिरी होती है । किसी भी स्थान के मौसम के लिए तापमान तथा अवक्षेपण (precipitation) बहुत महत्वपूर्ण होते है । बहुत दिनों से यही समझा जाता रहा है कि वायु प्रदूषण, स्थानीय जलवायु विशेषकर वर्षा को ही प्रमादित कर सकते हैं । पर अब वैज्ञानिकों ने यह अध्ययन किया कि, विश्व जलवायु पर भी वायु प्रदूषण के संभावित प्रभाव हैं ।

वर्तमान में मानव की बढ़ती पिपासा व प्रकृति के अंधाधुंध दोहन से प्रदूषण उत्पन्न हो रहा है। जैसा कि आपने पिछले अध्याय में पढ़ा कि, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, ताप प्रदूषण एवं नाभिकीय प्रदूषण आदि के कारण वातावरण दूषित होता जा रहा है । जिसका एक सबसे बड़ा दुष्प्रभाव जलवायु परिवर्तन के रूप में सामने आया है ।

आज जलवायु चक्र पूरी तरह से गड़बड़ा गया हैं । प्रकृति अपना नियमित चक्र बनाए रखने में असमर्थ सिद्ध हो रही है । जल चक्र में परिवर्तन होने से सर्वाधिक गर्मी वाले प्रदेशों में, वर्षा या बाढ़ का प्रकोप देखने को मिल रहा है एवं अधिक वर्षा वाले स्थानों पर सूखा पड़ रहा है । जलवायु में परिवर्तन से अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चक्रवात, तूफान आदि आकस्मिक घटनाओं में वृद्धि होती है जिसका प्रभाव मानव के आवास, परिवहन, ऊर्जा स्त्रोत, स्वास्थ्य आदि सभी पर पड़ता है । कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी यदि आने वालों वर्षो में गर्मी 8 महीने हो या वर्षा, वर्षा के मौसम में न होकर सर्दियों के समय हो । वर्तमान में विश्व के कई भागों में ग्रीष्म ऋतु की अवधि और अधिकतम तापमान में वृद्धि हो रही है ।

औद्योगिकरण के कारण उत्पन्न, ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में वृद्धि रो पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है क्योंकि ये ताप के लिए अवरोधक का कार्य करती हैं, इसके प्रभाव पृथ्वी के अलग अलग भागों में भिन्न-भिन्न हैं किन्तु सभी हानिकारक हैं । जलवायु में अप्राकृतिक परिवर्तनों से, जैसे CO_2 गैस की मात्रा में वृद्धि से कृषि उत्पादनों में 10 से 30 प्रतिशत की कमी हो सकती है । वनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है ।

जलवायु परिवर्तन की घटनाओं से पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystems) पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा जो वनस्पति व जीव इस परिवर्तन को नहीं सह पायेंगे समाप्त हो जाऐंगे इससे जैव विविधता को खतरा पैदा होगा । जल चक्र भी इससे प्रभावित होगा । तापमान परिवर्तन से ध्रुवों पर स्थित बर्फ के पिघलने का खतरा बढ़ जायेगा जिससे समुद्रतल की ऊंचाई बढ़ेगी और आस–पास के तटीय क्षेत्रों के डूबने, ढहने या खारेपन आदि का खतरा बढ़ेगा । इस कारण विश्व राष्ट्र संघ (U.N.O.) ने यह पाया है कि विश्व का तापमान धीरे धीरे बढ रहा है । यदि मानव जनित प्रदूषण नियंत्रित नहीं किया गया तो सन् 2100 तक यह 3.5° सेल्सियस बढ जायेगा ।

एलनीनो भी जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों का ही प्रभाव है जिसमें शीतोष्ण प्रशांत समुद्र क्षेत्र के वायुमंडल में हलचल होती है । 1997–98 में होने वाले एलनीनो से विश्व में लगभग 24000 लोगों की मौत हुई व 340 लाख अमेरिकी डालर की क्षति हुई । 2000–2001 में एलनीनो की घटना हुई जिसमें प्रशांत महासागर के पूर्वी भागों के तापमान में कमी आई ।

अब जरूरत है कि सम्पूर्ण विश्व सम्मिलित रूप से प्रयास कर प्रदूषण को नियंत्रित करें जिससे जलवायु में अवांछित परिवर्तन न हो । बहुत समय से यही समझा जाता रहा है कि विभिन्न प्रकार

के प्रदूषण खासतौर से वायु प्रदूषण स्थानीय जलवायु, विशेषकर वर्षा को ही प्रभावित कर सकते हैं । हाल के वर्षा में विश्व जलवायु पर वायु प्रदूषण के संभावित प्रभाव के बारे में काफी विचार विमर्श किया जाता रहा है । आइए हम विश्व पर जलवायु संबंधी परिवर्तनों एवं उनके प्रभावों के विषय में जानकारी प्राप्त करें ।

15.3 हरित गृह प्रभाव (Green House Effect)

हरित गृह प्रभाव एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसमें कुछ गैसे जिन्हें हरित गृह गैसें कहते हैं, पृथ्वी से परावर्तित होने वाली ऊष्मा को अवशोषित कर लेती हैं । यह ऊष्मा पृथ्वी के तापमान में जीवित रहने लायक गर्मी बनाये रखती है । अब यह प्रश्न है कि "हरित गृह गैसें क्या हैं?" इसे समझने के लिये हरित गृह के बारे में समझना होगा:

15.3.1 हरित गृह प्रभाव क्या होता है : हरित गृह कांच की बनी सरंचना होती हैं । ठण्डे प्रदेशों में बहुत कम अवधि के लिये सूर्य का प्रकाश उपलब्ध होता है, इस अवधि में. सौर ऊर्जा प्रकाश के रूप में हरित गृह के काँच से होकर प्रवेश करती है तथा पेड़–पौधों के द्वारा होने वाले खाद्य संश्लेषण में सहायक होती है ।

प्रकृति के नियमानुसार प्रकाश ऊर्जा, ताप ऊर्जा में परिवर्तित होकर अवरक्त किरणों (Infrared) के रूप में हरित गृह के काँच से बाहर निकलने का प्रयास करती हैं लेकिन हरित ग्रह में उपस्थित कार्बनडाईआक्साइड के कारण इस तरह से बाहर निकलने में असमर्थ रहती हैं । यह ताप ऊर्जा, हरित गृह में गर्मी बनाये रखती है जो पेड़–पौधों के लिये ठण्डे मौसम में आवश्यक है इससे सर्दी होने के फलस्वरूप भी वनस्पति वृद्धि करती है ।

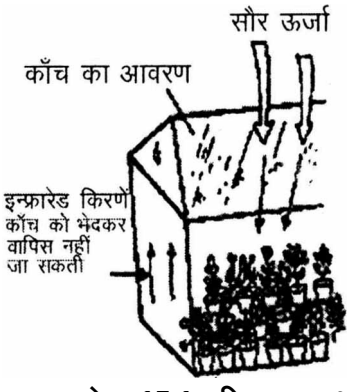

आरेख 15.1 हरित गृह प्रभाव

इसी प्रकार सौर ऊर्जा वायुमण्डल को भेदकर पृथ्वी पर आकर उसे गर्म करती है और सायंकाल में अवरक्त किरणों (IR) के रूप में वापस लौटती हैं । सामान्य परिस्थितियों में सूर्य के चारों ओर से घेरे हुये क्षोभमण्डल, हरित गृह में स्थित काँच की तरह से कार्य करता हैं एवं क्षोभमण्डल में एकत्रित इन अवरक्त किरणों को वापस नहीं जाने देता है तथा,पृथ्वी पर तापीय ऊर्जा के सन्तुलन को बनाये रखता है ।

मानवीय गतिविधियों एवं अति औद्योगिकरण के कारण कुछ गैसे जैसे कार्बनडाई ऑक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4), नाइट्रस ऑक्साइड (NO), क्लोरोफ्लोरो क कार्बन (CFC-12,11,22) का उत्सर्जन अधिक मात्रा में होने लगा है जिससे वायुमण्डल में इनका जमाव बढ़ता जा रहा है । यह जमाव

एक ऐसे काँच के परदे की तरह कार्य कर रहा है जिससे होकर सौर ऊर्जा विकिरण पृथ्वी पर आ तो सकती है लेकिन परावर्तित होकर वापस नहीं जा सकती हैं । इस कारण पृथ्वी का तापमान धीरे-2 बढ़ रहा है । इसे ही हरित गृह प्रभाव कहते हैं । इस प्रभाव का नामकरण सर्वप्रथम 1827 में जे. फुरियर ने किया था ।

15.3.2 हरित गृह प्रभाव का महत्व : यदि पृथ्वी पर हरित गृह गैसो का आवरण नहीं होता पृथ्वी के वातावरण से विकिरणें वापस लौट जाती जिससे पृथ्वी का तापमान जमाव बिन्दु से भी काफी नीचे (-18˚C or -4˚ F) हो सकता था तथा जीवन असंभव हो जाता । अत: यही पर हरित गृह गैसे पृथ्वी पर एक कम्बल की भांति कार्य करती है एवं इस कारण पृथ्वी का तापमान लगभग 15˚C बना रहता है ।

15.3.3 हरित गृह प्रभाव के लिये उत्तरदायी कारण : वैज्ञानिकों ने अब तक लगभग 30 हरित गैसों की पहचान की है उनमें से पांच प्रमुख है कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) मीथेन (CH_4), नाइट्रस ऑक्साइड (NO), क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC) तथा जलवाष्प हैं । इसके अतिरिक्त ओजोन को भी हरित गृह गैस माना गया है । इनमें से कार्बनडाईऑक्साइड सर्वाधिक हानिकारक साबित हुई है क्योंकि मानवीय क्रियाकलापों एवं जीवाश्म ईंधनों (पेट्रोलियम पदार्थ एवं कोयला) के दहन से निरन्तर इनकी मात्रा में वृद्धि हो रही है ।

तालिका 15.1 प्रमुख हरित गृह गैसें व उनका योगदान

क्र.सं.	गैस	वायुमंडल में प्रति शत	हरित गृह गैस में प्रतिशत योगदान	स्त्रोत
1.	CO_2	49	57%	जीवाश्म ईंधन के जलने से
2.	CH_4	18	12%	विघटन से दलदल, कीचड़, पशु गोबर, मृत पशु के एवं चावल के खेतों से
3.	CFC	14	25%	वातानुकूलन, शीतलन व थर्मोकॉल आदि के निर्माण से
4.	NO	6	6%	नाइट्रोजन खाद का उत्सर्जन, इंजन का आंतरिक दहन तथा जीवाश्म ईंधन के दहन से
5.	अन्य गैसे व जल वाष्प	13		वायुमंडल के जलवाष्पीकरण से

कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) : वातावरण में जीवाश्म ईंधन के दहन, अतीव औद्योगीकरण तथा वाहनों से निकलने वाली गैस की उपस्थिति से वातावरण में CO_2 की मात्रा तेजी से बढ़ रही है । सामान्य कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा में प्रकाश संश्लेषण तथा तापमान के महासागरीय जल में स्थानांतरण के द्वारा संतुलन स्थापित हो जाता है । परन्तु मानवीय गतिविधियों के कारण CO_2 की मात्रा बढ़ने से यह संतुलन गड़बड़ा जाता है एवं अवरक्त विकिरणों को अवशोषित करने की CO_2 की क्षमता के कारण तापमान में वृद्धि हो जाती है ग्रीन हाउस प्रभाव पैदा करने और भूमण्डलीय ताप वृद्धि में एक अकेले कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) का योगदान 57 प्रतिशत आका गया है । एक अनुमान से अब

तक वातावरण में 25 प्रतिशत तक इसकी मात्रा बढ़ चुकी है एवं 2075 तक दुगुनी होने का अनुमान है । वर्तमान में यह गैस 1.8 mg/m^3 or 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ रही है ।

नाइट्रस ऑक्साइड (NO) : नाइट्रस ऑक्साइड एक ट्रेस गैस है, जिसकी मात्रा वायुमण्डल में 5 से 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ रही है, इसकी वायुमण्डल में अपेक्षाकृत मात्रा कम होने पर भी हरित गृह गैस में इसका योगदान 6 प्रतिशत आका गया है, क्योंकि इसकी ताप अवशोषण क्षमता कार्बनडाई ऑक्साइड से 250 गुणा अधिक है । नाइट्रोजन युक्त खाद का अंधाधुंध प्रयोग, विभिन्न कृषि कार्य–कलापों तथा अति वाहनीकरण के कारण वायुमण्डल में इसका प्रतिशत बढ़ कर भयानक स्थिति उत्पन्न कर सकता हैं ।

मीथेन (CH_4) : यह जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न एक प्राकृतिक गैस है । वातावरण में मीथेन की मात्रा पिछले तीन दशकों में दुगनी से अधिक हो चुकी है । रासायनिक कारखानों एवं अभिक्रियाओं में सहउत्पाद के रूप में, प्राकृतिक गैस के निरन्तर निकलने एवं जैव मात्रा (Bio mass) के दहन, इसकी वृद्धि का प्रमुख कारण है । इसके अलावा चावल के उत्पादन में, आक्सीजन रहित वनस्पति के क्षय एवं गोबर का विभिन्न उत्पादों में परिवर्तन भी इसकी वृद्धि में सहायक है । एक अध्ययन के अनुसार विद्युत उपकरण (Hydro electric and transformer equipments) भी मीथेन के उत्पादन में सहायक होते हैं । प्रकृति में मीथेन की मात्रा 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है । ऊष्मा अवशोषण की दृष्टि से CH_4, CO_2 की अपेक्षा 25 गुणा अधिक शक्तिशाली है तथा हरित गृह गैस में इसका योगदान लगभग 12 प्रतिशत माना गया है ।

क्लोरोफ्लोरो कार्बन गैसें (CFCs) : ये गैसे पिछली सदी में ही वातावरण में प्रविष्ट हुई हैं । CFC-12,11 तथा CFC-22 इसके प्रमुख घटक हैं । इन गैसों का उपयोग मुख्यत: प्रशीतन, वातानुकूलन थर्मोकोल निर्माण एवं डीओडरेण्ट की औद्योगिक इकाइयों में होता है । 1985 में CFC-12 तथा CFC-11 की मात्रा क्रमश: 380 तथा 220 ppm थी । अब यह गैसे वातावरण में 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही हैं । ऊष्मा अवशोषण की दृष्टि से इनकी क्षमता कार्बन डाईऑक्साइड से लगभग 12000 गुणा अधिक है तथा हरित गृह प्रभाव में इनका योगदान 25 प्रतिशत तक आंका गया है । इसके अतिरिक्त ये गैसें वातावरण की ओजोन गैस परत को क्षति पहुँचा रही हैं जिससे सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणें सीधे पृथ्वी पर पहुँच रही है । 30 वर्ष पूर्व भारत के ऊपर जो ओजोन परत का 6 प्रतिशत भाग क्षय हुआ था जो अब बढ़कर 8 प्रतिशत तक हो गया है । "लन्दन सम्मेलन" 1990 में विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के CFC रहित तकनीक व धन उपलब्ध कराने की बात हुई थी । 1992 में कोपेनहंगन सम्मेलन में निर्णय किया गया कि सभी देश ओजोन मैत्रीकारक पदार्थ (OFS) के उपयोग को बढ़ाकर CFC का उपयोग समाप्त करेंगे । लेकिन भारत के 1992 मांट्रियल संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद भी ऐसा नहीं हुआ ।

ओजोन (O_3) : समतापमण्डलीय क्षेत्र में O_3 (ओजोन) पृथ्वी को पराबैंगनी किरणों से सुरक्षित रखती है । परन्तु क्षोभमण्डलीय ओजोन, जलवाष्प के साथ मिलकर एक प्रभावी हरित गृह गैस का निर्माण करती है । मानवीय गतिविधियों के कारण ओजोन की वायुमण्डल में मात्रा बदलती रहती है । यह ऊष्मा अवशोषण में CO_2 की अपेक्षा 2000 गुणा अधिक प्रभावशाली है ।

जलवाष्प : उपरोक्त गैसे जलवाष्प (बादलों) की उपस्थिति से अधिक प्रभावशाली होती हैं ।

15.3.4 ग्रीन हाउस प्रभाव का जनजीवन पर प्रभाव : ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण निचले वातावरण में 2050 तक 1.5 से 4°C तक ताप में वृद्धि हो जायेगी । जिससे हिमनदों (ग्लेशियर) का पिघल कर समाप्त होना प्रारम्भ हो चुका है । वनस्पतियों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया, जल ग्रहण करने की क्षमता एवं उत्पादन में कमी होगी । जलीय घटकों (Phyto plankton) में इसका असर प्रभावी है । मनुष्यों पर भी इसका असर देखा जा सकता है । इनकी स्वास्थ्य सम्बन्धित समस्याओं की शुरूआत चिन्ताजनक है । इस प्रभाव से मौसम चक्र गड़बड़ा गया है जिसका प्रभाव साइक्लोन प्राकृतिक आपदा, सुनामी आदि हैं । फसलों का उत्पादन कम होने पर उनको भण्डार करने की समस्या भी बनी हुई है ।

बोध प्रश्न 1.

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :--

(क) उद्योगों द्वारा खान का कोयला जलाने से वायुमण्डल में ..... बढ़ जाने की संभावना है जो दूसरी गैसों के साथ सूर्य से ऊर्जा को अवशोषित कर लेती है जिससे .....तापमान बढ़ जाता है, यह परिघटना ..... कहलाती है ।

(ख) मुख्य ग्रीन हाउस गैसों के नाम बताइये?

.....

.....

(ग) CFCs और CO_2, की ऊष्मा का अवशोषण क्षमता की तुलना कीजिये ।

.....

.....

(घ) CO_2 का ग्रीन हाउस प्रभाव में क्या योगदान है?

.....

.....

15.4 वैश्विक ताप वृद्धि (Global Warming)

मनुष्यों द्वारा किये गये प्रकृति से छेड़छाड़, अतीव औद्योगिकरण एवं प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ रहे प्रदूषण के कारण पृथ्वी के तापमान में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है । विश्व का औसतन तापमान पिछले कई वर्षो से तेजी से बढ़ा है । यदि तापमान की वृद्धि दर ऐसी ही रही तो अगले 100 वर्षो में पृथ्वी का तापमान 3-5°C बढ जायेगा । पृथ्वी का तापमान बढ़ने का प्रमुख कारण जलवायु परिवर्तन है । तापमान में वृद्धि का प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में अलग–अलग है । हमारे वायु मण्डल में विभिन्न स्तरों पर भिन्न–भिन्न गैसों की परते हैं और उनकी घटती / बढ़ती मात्रा एवं प्रदूषण के कारण जलवायु में भी परिवर्तन हो रहा है ।

15.4.1 ग्लोबल वार्मिंग के मुख्य कारण हैं :-- (i) हरित गृह प्रभाव (ii) हरित गृह गैसे (iii) मानव क्रिया कलापों का योगदान । पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृद्धि होने की समस्या का प्रमुख कारण हरित गृह प्रभाव है । हरित गृह प्रभाव का विस्तृत वर्णन पिछले भाग (15.3) में किया जा चुका है।

हरित गृह प्रभाव ठण्डे प्रदेशों में गर्मी बनाये रखने के कारण एक वरदान है । परंतु अब इसमें प्रत्येक क्षण हरित गृह गैसों के जुड़ने से (पृथ्वी से लौटने वाली अवरक्त किरणों को रोकने से) तापमान

में वृद्धि होती जा रही है । यहाँ पर बढ़ती हुई हरित गृह गैस (CO_2,CH_4,NO,CFC,O_3, जल वाष्प एवं अन्य गैसें) ग्लोबल वार्मिंग में 24 प्रतिशत तक उत्तरदायी है । इसके अतिरिक्त विश्व तापक्रम में बढ़ोतरी के लिये मानव के क्रियाकलाप भी शामिल हैं जो समय के साथ–साथ विकास से भी जुड़े हैं और उसके अदूरदर्शितापूर्ण प्रक्रियाओं से भी इसका असर बढता है ।

औद्योगिकरण एवं शहरी विकास के लिये जो प्रमुख आधार है वह है "ऊर्जा उत्पादन" । ऊर्जा उत्पादन चाहे नाभिकीय या तापीय हो । दोनों ही प्रक्रिया में तापीय एवं वायु प्रदूषण अधिक फैलता है । इसका ताप वृद्धि में 49 प्रतिशत तक का योगदान होता है ।

सूर्य समस्त वातावरण को प्रकाश व ताप देता है । सूर्य की सतह का ताप लगभग 5800°K है एवं इससे 0.4 से 1.0 मी. की तरंग दैर्ध्य (wave length) की दृश्य किरणें (Visible Rays) निकलती हैं । अंतरिक्ष में अन्य तारों के समान सूर्य के आकार में परिवर्तन के कारण तरंग दैर्ध्य भी परिवर्तित हो रही है । जिसके कारण तापमान में वृद्धि हो रही है ।

15.4.2 ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव : तापमान में वृद्धि के कारण हिमनद (ग्लेशियर) पिघल रहे हैं । एशिया में हिमालय एवं यूरोप के अल्पाइन के तो कुछ भाग 50% तक कम हो गये हैं । भारत के प्रमुख तीर्थस्थलो में से एक, गंगोत्री उद्गम स्थल, प्रत्येक वर्ष पीछे खिसक रहा है । अब तो ध्रुवों पर घास जैसी वनस्पति भी दिखाई देने लगी है । ध्रुवो पर तापीय वृद्धि के कारण एवं हिमनदों के पिघलने से वहाँ की जैविक सम्पदा (पेड़–पौधे एवं प्राणी) समाप्ती की ओर है ।

हिमनदों के पिघलने से सर्दऋतु भी धीरे–धीरे कर जिससे मौसम चक्र गड़बड़ा रहे हैं इससे विभिन्न फसल चक्रों और जीव जन्तुओं क जावन चक्र भा परिवर्तित हो रहे है । इस कारण बर्फीले पहाड़ बंजर होते जा रहे हैं जिसका प्रभाव पर्यटन पर भी पड़ रहा है ।

हिमनदों के पिघलने के कारण जिन नदियों में वर्षभर जल का प्रवाह बना रहता था, वे अब बरसाती नदियों में बदल चुकी हैं उस कारण नदियों के पानी पर आधारित खेती या यातायात में पूर्ति आसानी से नहीं हो पा रही है एवं वहाँ के सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण बदल रहे है इसके साथ नदियों में पानी नहीं रहने से उन पर आधारित बिजलीघर को समान रूप से आवश्यक पानी नहीं मिलता है । राजस्थान में चम्बल नदी पर पड़ने वाला प्रभाव इसका स्पष्ट उदाहरण है ।

हिमनदों के लगातार पिघलने के कारण महानगरों का जलस्तर बढ़ रहा है । रीवेली (1983) के अनुसार 6°K तापक्रम बढ़ने से जलस्तर में 70 से.मी की बढोत्तरी हो जायेगी । हमारे भारत देश के तटीय एवं द्वीप क्षेत्रों में काफी हिस्सा इस समस्या का सामना कर रहा है । यही हाल रहा तो वियतनाम, जापान, बांग्लादेश एवं भारत के मुम्बई, आध्रप्रदेश तथा केरल के तटीय क्षेत्र के काफी हिस्से महासागर में समा जायेंगे ।

इसके साथ ही वहाँ के पेयजल में भी प्रदूषण की मात्रा बढ़ रही है जिससे वहाँ के निवासियों में संक्रमित रोग के फैलने का भय रहता है ।

तापीय वृद्धि के कारण नमभूमि क्षेत्र, कच्छ वनस्पति एवं शैवाल, प्रवाल भित्तियों के समाप्त होने का खतरा बढ़ रहा है तापीय वृद्धि के कारण वनस्पति एवं प्राणी जगत के जीवन चक्रों पर असर पडा है जिससे पारिस्थितिक तंत्र पर भी असर पड़ता है ।

15.4.3 वैश्विक ताप वृद्धि (Global Warming) के समाधान

1. CO_2, CH_4, CFC, NO जैसी गैसों की उत्पत्ति एवं प्रयोग की मात्रा कम की जाये ।
2. औद्योगिक क्षेत्रों में ऐसे संयत्र लगाये जाये जिससे हानिकारक उत्पादों की मात्रा विघटित हो सके या उपयोगी पदार्थो में परिवर्तित हो जाये उदाहरणत: Photooxidation द्वारा हाइड्रोकार्बन ऐरोमैटिक योगिकों में विघटित कर दिये जाते हैं ।
3. वनो के विनाश को रोका जाये एवं कृषि योग्य भूमि को बढाया जाये ।
4. ईधन एवं प्रकाश के लिये गैर पारम्परिक स्त्रोतो जैसे पवन एवं सौर ऊर्जा को काम में लिया जाये।
5. जीवाश्म ईधन जैसे कोयला, पैट्रोलियम पदार्थ आदि का उपयोग नियंत्रित रूप से किया जाना चाहिये।
6. जनसंख्या वृद्धि की दर कम होनी चाहिये ।
7. व्यक्तिगत ऊर्जा व्यय को कम करने के लिये मनुष्य के स्वभाव को आम जन जीवन में परिवर्तन की आदत डालनी चाहिये ।

बोध प्रश्न 2

(क) वैश्विक ताप वृद्धि के लिए उत्तरदायी प्रमुख गैसे कौनसी हैं?

.....

.....

(ख) ग्लोबल वार्मिंग के मुख्य कारण क्या हैं?

.....

.....

15.5 ओजोन परत का क्षरण (Ozone Layer Depletion)

15.5.1. ओजोन परत क्या है : (O_3) ओजोन ऑक्सीजन का ही एक दूसरा अपररूप (Allotrope) है । परमाणु संख्या 2 होने से ऑक्सीजन स्थायी रूप में होती है किन्तु ओजोन में 3 परमाणु होते हैं, अत: यह अपेक्षाकृत कम स्थायी होती है ।

ओजोन परत वायुमंडल में उपस्थित O_3 गैस की एक परत है । यह वायुमण्डल के समताप मंडल में पृथ्वी की सतह से 30 किलोमीटर की ऊँचाई पर, एक सघन व लगभग 20 कि.मी. मोटाई का एक घेरा होता है । यह गैस गुरूत्वाकर्षण बल के कारण एक परत के रूप में पृथ्वी के चारों ओर तनी रहती है । इसी ओजोन परत के कारण पृथ्वी को विलक्षण ग्रह होने का दर्जा मिलता है ।

समताप मंडलीय ओजोन लगातार उत्पन्न और नष्ट हो रही है । वायुमण्डल में इसका निर्माण एक स्वाभाविक प्राकृतिक क्रिया है । जब सूर्य की किरणे वायुमंडल की ऊपरी सतह से टकराती हैं तो उच्च उर्जा विकीरण से आणविक ऑक्सीजन (O_2) का कुछ भाग ऑक्सीजन परमाणु (O) से मिलकर ओजोन (O_3) में बदल जाता है । ऐसा वायुमंडल में विद्युत अपघटन व मोटर वाहनों के विद्युत स्पार्क से भी होता है ।

पराबैंगनी किरणे

$$O_2 \longrightarrow O+O \quad \text{परमाणु}$$

$$O + O_2 \longrightarrow O_3 \quad \text{ओजोन}$$

ओजोन विखंडन का निबल परिणाम इस प्रकार है

$$2O_3 \longrightarrow 3O_2$$

15.5.2 ओजोन परत का महत्व : ओजोन परत, हमारे लिए एक रक्षक कवच का कार्य करती है । इसका मुख्यकार्य सूर्य के प्रकाश में उपस्थित हानिकारक पराबैंगनी किरणों (अल्ट्रावायलेट किरणों) को अवशोषित कर पृथ्वी पर पहुँचने से रोकना है तथा यहाँ पर रहने वाले जीवों की रक्षा करना है । सीधे शब्दों में कहें तो यह फिल्टर का कार्य करती है तथा पृथ्वी के तापमान नियमन में सहायता करती है ।

15.5.3 ओजोन छिद्र : जिसे हम ओजोन छिद्र (Ozone hole) के नाम से जानते हैं वह वस्तुत: कोई छिद्र नहीं है बल्कि समताप मण्डल में उपस्थित ओजोन की सघन व मोटी परत का क्षीण होना या पतला होना है । इसे ओजोन परत क्षरण (Ozone layer depletion) या ओजोन छिद्र कहते हैं ।

सर्वप्रथम 1985 में अंटार्कटिका ध्रुव पर ओजोन स्तर की मोटाई में कमी दिखाई दी । एक सर्वेक्षण के अनुसार 1977 से 1984 के मध्य ओजोन में 40 प्रतिशत कमी पाई गई है । 1990 में इस पतले स्तर का क्षेत्रफल 333 लाख वर्ग कि.मी. (लगभग अफ्रीका महाद्वीप के बराबर) नापा गया तथा 30 सितम्बर 2006 में बढ़कर यह 2 करोड़ लाख वर्ग कि.मी. हो गया है अर्थात यह नॉर्थ अमेरिका से भी बड़ा है । कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यूरोप तथा अमेरिका के ऊपर भी ओजोन स्तर लगभग 10 प्रतिशत कम हो गया है ।

15.5.4 ओजोन परत क्षय के कारण : ओजोन परत को क्षीण करके उसकी मोटाई को कम करने वाले मुख्य कारक मानवीय कारण हैं । वैज्ञानिकों के अनुसार मानव की विभिन्न गतिविधियाँ एवं क्रियाकलाप जो कि प्रदूषण को बढ़ा रही है, ओजोन गैस की कमी का मुख्य कारण हैं । आपके लिए यह जानना महत्वपूर्ण होगा कि दैनिक उपयोग में आने वाले कुछ ऐसे उपकरण है जिनकी ओजोन लेयर को नष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका है जैसे– फ्रिज, एयरकंडीशनर, रूम हीटर, परफ्यूम, हेयर स्प्रे, फोम को पैक करने वाली सामग्री आदि, क्योंकि इन उत्पादों को बनाने में एच.बी.एफ.सी. (HBFC) सी.एफ.सी. (CFCs) गैसों (हाइड्रोबोमो फ्लोरोकार्बन्स व क्लोरोफ्लोरो कार्बन्स) का प्रयोग किया जाता है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वैज्ञानिकों ने केमिकल्स का एक ऐसा समूह खोजा था जो काफी देर तक ठंडा प्रभाव देता था । इस ग्रुप के रसायनों को क्लोरोफ्लोरो क कार्बन्स (CFCs) नाम दिया गया । दूसरा ग्रुप था हेलोन्स जो फायर प्रोटेक्शन या अग्निशमन, जहाजों वायुयानों एवं कम्प्यूटर कन्ट्रोंल के रूप में काम आता है । तीसरा समूह हाइड्रो फ्लोरो कार्बन्स का है जो मुख्तया रेफ्रिजरेशन, फोम ब्लोइंग व सी.एफ.सी. की जगह प्रयुक्त होता है । पूर्व में अज्ञानता वश इनका उपयोग औद्योगिक सफलता माना गया क्योंकि यह गैसें रंगीन, गंधहीन, विषहीन, अग्निरोधी, निफिय, लम्बे समय तक स्थायी एवं सस्ती थी । इस तरह फ्रिज और एयर कंडीशनर्स की नई औद्योगिक इकाईयां खुल गई तथा इसका प्रचलन इतना बढ़ गया कि हर घर में इसकी पहुँच हो गई । नये उपकरण के इस्तेमाल से लोग बहुत खुश थे । किन्तु इस गैस का प्रभाव कालांतर में दिखाई दिया । वैज्ञानिकों के लिए यह चिंता का कारण बन गया जब उन्होंने 1980 में पहली बार अर्टाकटिका के ऊपर ओजोन लेयर में कमी देखी ।

सी.एफ.सी. गैसें बहुत स्थायी होती हैं यह वी में 25 से 50 कि.मी. की ऊँचाई (ओजोन परत) तक पहुँच जाती है वहाँ पर उपस्थित पराबैंगनी किरणें इसमें से मुक्त क्लोरीन या ब्रोमीन अलग कर देती हैं । ये मुक्त मूलक ओजोन से क्रिया कर उसे 02 परमाणु में विभक्त कर देता है । सी.एफ.सी. का एक अणु अकेला ही ओजोन के कई हजार अणुओं को खत्म कर सकता है । इस प्रकार ओजोन परत का क्षय होता है ।

इनके अतिरिक्त वायुगतिकीय पराध्वनि (सुपरसॉनिक) जेट वायुयानों में जलने वाले ईधन से निकलने वाली गैस नाइट्रिक ऑक्साइड भी ओजोन परत को हानि पहुँचाती है ।

15.5.5 ओजोन परत क्षय के दुष्प्रभाव और इससे प्रभावित होता जन जीवन: ओजोन परत सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों के लिए फिल्टर का काम करती है । इस तरह पृथ्वी पर जीवन को सुरक्षित रखती है लेकिन ओजोन लेयर में होल हो जाने से हानिकारक पैराबैंगनी किरणें सीधे पृथ्वी पर पहुँच रही है जिससे ग्लोबल वार्मिंग के साथ साथ स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ जैसे – मोतिया बिंद, त्वचा का कैंसर, अल्सर, ब्रोंकाइटिस, अस्थमा, आदि बीमारियां बढ रही हैं तथा प्रतिरोधक क्षमता (immunity) में कमी आ जाती है । इन किरणों से समुद्रीतंत्र में प्रकाश संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले सूक्ष्म जीवों का जीवन भी खतरे में पड़ जाता है जिससे समुद्री खाद्य श्रृंखला गड़बड़ा जाती है । भूमि में उपस्थित सूक्ष्म जीव भी पराबैंगनी विकीरण से नष्ट हो जाते हैं जिसका सीधा प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ता है । यह भी अनुमान है कि फसलों की पैदावार में कमी जैसी घटनाएँ भी हो सकती है ।

15.5.6 ओजोन परत की सुरक्षा के उपाय : ओजोन परत की हानि के ज्ञान के बाद 1985 में वियना सम्मेलन व 1987 में कनाड़ा के मांट्रियल में एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता पारित किया गया जिस पर लगभग सभी देशों ने हस्ताक्षर किए हैं इसमें CFCs के उत्पादन और खपत को समाप्त करने तथा इनके विकल्प की खोज करने का निश्चय किया गया । किन्तु कुछ खामियों के चलते पूरी तरह ऐसा नहीं हो पाया है । लंदन सम्मेलन 1990 में विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को CFC रहित तकनीकी व धन उपलब्ध कराने की बात हुई । 1992 में कोपेनहेगन सम्मेलन में निर्णय लिया गया कि जहाँ तक सही हो सभी देश ओजोन मैत्रीकारक पदार्थो (O.F.S.) के उपयोग को बढ़ाकर CFCs का उपयोग समाप्त करेंगे ।

तरह–तरह के विरोध जताने के बाद यहीं पर 1992 में भारत में मांट्रियल संधि पर हस्ताक्षर किये क्योंकि भारत के मतानुसार – क्षय के लिए उत्तरदायी मुख्य रूप से अमेरिका, बिट्रेन जैसे विकसित देश है, जिन्हें क्षय कारक पदार्थो का उत्पादन पहले समाप्त करना चाहिए या दूसरे विकासशील देशों पर दबाव न डालकर उन्हें, परिवर्तित प्रौद्योगिकी उपलब्ध करवानी चाहिए । भारत के ऊपर आज से 10 वर्ष पूर्व ओजोन परत का 6प्रतिशत क्षय हुआ था जो अब बढ़कर 8प्रतिशत तक पहुँच गया है । अत: स्थिति भयावह तो नहीं पर ध्यान देने योग्य अवश्य है ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अतिरिक्त व्यक्तिगत स्तर पर आपका योगदान भी इसमें महत्वपूर्ण है । ओजोन बचाना, विश्व बचाना है । हर एक व्यक्ति की जिम्मेदारी है कि अपने स्तर पर पहल करें । ओजोन फ्रेंडली, इनवायर्नमेंट फ्रेडली चीजें ही बाजार से खरीदें । परफ्यूम स्प्रे, शेविंग से, दर्द निवारण स्प्रे आदि जिनमें CFCs हैं उनका प्रयोग न किया जाए कपड़ों की ड्राइक्लीनिंग में भी CFC का प्रयोग होता है । अत: उसका उपयोग न किया जाए । जब भी आपका फ्रिज, एयर कंडीशनर खराब हो CFCs

को रिसाइकिल न करवाएं । इस केमीकल को कभी भी खुली हवा में ना छोड़े । आखिर विश्व पर्यावरण का सवाल है ।

इसके अतिरिक्त वृक्षारोपण अधिकाधिक किया जाए जिससे क्लोरीन एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी गैंसे वातावरण में न जा सके । विभिन्न वाहनों में सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग करें ।

राष्ट्रीय स्तर पर यह आवश्यक है कि पर्यावरण सहायक ओजोन प्रकोष्ट का निर्माण किया जाये तथा CFCs एवं हैलोन्स के विकल्प खोजे जाये । क्लोरोफ्लोरोकार्बन के विकल्प खोजने में भारत में वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, पूना (NCL) ने दो विकल्प हाइड्रो क्लोरोफ्लोरोकार्बन 22A एवं हाइड्रोफ्लोरो कार्बन 134A का विकास कर लिया है । हालांकि विश्व द्वारा विकासशील देशों को सन् 2010 तक की CFCs के निर्माण की छूट दी गई है पर भारत में ओजोन उत्सर्जन पदार्थो के नियन्त्रण के ठोस प्रयास नहीं किए गए हैं । इस तथ्य की पुष्टि ओजोन क्षरण के लिए उत्तरदायी औद्योगिक पदार्थो के उत्पादन बन्द करने की प्रस्तावित तिथि से लगता है ।

तालिका 15.2

भारत में ओजोन उत्सर्जन पदार्थो पर नियन्त्रण

क्र. सं.	ओजोन क्षरण पदार्थ	उपयोग	उत्पादन बन्द करने के प्रस्तावित तिथि
1.	क्लोरोफ़्लोरोकार्बन (Chlorofluorocarbons)	रेफ्रिजरेटर तथा वातानुकूलन उपकरणों में प्रशीतक के रूप में प्रयुक्त, एरोसोल या परफ्यूम स्प्रे, शेविंग क्रीम में झाग, कीटनाशक इत्यादि इन्सूलेसन में क्वथन प्रक्रिया तथा इलेक्ट्रोनिक और परिशुद्धता, स्वच्छता व पदार्थो पर लेपित करने में विलायक के रूप में	1 जनवरी 2010
2.	हैलॉन्स (Halons)	अग्निशामक	1 जनवरी 2010
3.	कार्बन टेट्राक्लोराइड (Carbon tetrachloride)	विनिर्माण व अन्य ओद्योगिक प्रक्रियाओ में विलायक के रूप में	1 जनवरी 2010
4.	मिथाइल क्लोरोफॉर्म (Methyl chloroform)	इलेक्ट्रोनिक, परिशोधन में विलोपन	1 जनवरी 2015
5.	मिथाइल ब्रोमाइड (Methyl bromide)	कीटनाशक	1 जनवरी 2015
6.	हाइड्रो क्लोरोफ्लोरोकार्बन (Hydro chloro Fluorocarbons-HCFC's)	बड़े आकार के प्रशीतकों तथा प्रशीतन संयन्त्रों में	1 जनवरी 2040

स्रोत : प्रोडक्शन एण्ड कनजम्पशन ऑफ ओजोन डिप्लीटिंग सकटेन्स 1986–98 ओजोन सचिवालय,यूएनडीपी, नैरोबी अक्टूबर 1999 पृ. 37 ।

बोध प्रश्न 3.

i. नीचे दिए गए रिक्त स्थानों को भरिए :--

(क) पृथ्वी को हानिकारक पराबैंगनी किरणों से ..... गैस सुरक्षा प्रदान करती है ।

(ख) क्लोरोफ्लोरो कार्बन ओजोन विघटन की प्रक्रिया को ..... कर देते हैं ।

(ग) पृथ्वी की ओजोन परत का क्षरण मुख्यतया ..... के कारण होता है।

(घ) मनुष्यों में त्वचा की कैंसर की घटनाओं के बढने का मुख्य कारण ..... है ।

(ड) ओजोन परत के क्षरण से..... किरणें पृथ्वी पर अधिक मात्रा में पहुंचती है ।

ii. CFCs क्या होते हैं ।

.....

.....

iii. CFCs के मुख्य स्त्रोत क्या होते हैं ।

.....

.....

15.6 नाभिकीय दुर्घटनाएं (Nuclear Accidents)

रेडियोधर्मी तत्व, जहाँ भी होते है, धीरे–धीरे विखडिंत होते रहते हैं व पर्यावरण, मानव, जीव तथा वनस्पति जगत को स्थाई नुकसान पहुँचाते हैं । इनके खनन, उपयोग, संचय व निस्तारण में हर प्रकार की सावधानी, यदि न बरती जाये तो बहुत हानिकारक हो सकते हैं । रेडियोधर्मी पदार्थो से निकलने वाले विकिरण बडे पैमाने पर पर्यावरणीय समस्या पैदा कर रहे है । रेडियोएक्टिव पदार्थ वे पदार्थ हैं, जो स्वत: ही α, β व γ

(एल्फा, बीटा एवं गामा) किरणों का उत्सर्जन कर अन्य पदार्थो में परिवर्तित होते रहते हैं । कुछ विघटन प्राकृतिक होते है तो कुछ मानव द्वारा उपयोगी कार्यो के लिए किए जाते है । यदि ये विघटन नियंत्रित रूप से किए जाए तो मानव के लिए फायदेमंद होते है परंतु यदि इनका विघटन अनियन्त्रित हो जाए तो यह काफी नुकसानदेह साबित होते हैं । नाभिकीय दुर्घटना से उत्सर्जित कण लम्बे समय तक विकिरण के रूप में विद्यमान रहते है । इसके अलावा रेडियोधर्मी अपशिष्ट का सुरक्षित निपटान एक गम्भीर समस्या है । विश्व भर में घटित मुख्य नाभिकीय दुर्घटनाएं निम्न हैं –

1947 में एटलांटिक महासागर में छोडे गये नाभिकीय कचरे से जो नुकसान हुआ तथा कई जीव जन्तुओं की मृत्यु हुई, उसे ले.क.जार्ज पर्ल (IV) ने सभी के सामने रखा ।

1950 में पेसिफिक महासागर पर 8000 फुट की ऊँचाई पर बी–36 विमान के खराब होने के कारण नाभिकीय सामग्री के पैकेट समुद्र में गिराये गये जबकि 1950 में ही अन्य बी–29 विमान नाभिकीय शस्त्रों के साथ महासागर में समा गया ।

1957 में U.K. के एक नाभिकीय संयत्र में आग लगने से 11 टन यूरेनियम नष्ट हो गया एवं उसकी वाष्प से वहाँ आसपास के जल, वायु तथा भूमि में प्रदूषण बढ़ गया तथा वही का 2 लाख टन दूध प्रदूषित हो गया ।

मार्च 1979 U.K. में परमाणु भट्टी को ठण्डा रखने का कार्य करने वाली शीत तरल सामग्री में कमी होने पर अत्याधिक गर्मी उत्पन्न हुई, जिस कारण परमाणु भटटी की छत पिघल गई । जिससे रेडियोधर्मी विकिरणों के फैलने के कारण 5000 व्यक्तियों को वहाँ से हटाना पड़ा तथा सामान्य जन–जीवन विभिन्न बीमारियों से प्रभावित होकर अस्त-व्यस्त हो गया ।

जनवरी 1982 में जिना, न्यूयार्क में नाभिकीय प्लांट में ओरिएण्टों झील के पास नाभिकीय रिसाव हुआ । इसी प्रकार 1984 में इण्डियन II नाभिकीय ऊर्जा सयंत्र बुचानन में भी रेडियोधर्मी पानी का रिसाव हुआ । 1986 में टांस्फिनिड़ नाभिकीय ऊर्जा केन्द्र से एवं 1987 में कनाडा को आल्टर्ड रिर्सोस लिमिटेड शोधक कारखानों में रिसाव होने के कारण इन संयत्रों को बंद करवाना पड़ा ।

25 अप्रेल 1986 में सोवियत एशिया के ऊक्रेन राज्य के चेर्नोबिल स्थान पर सयंत्रो में हुये नाभिकीय दुर्घटना ने काफी तबाही मचाई थी । इस विस्फोट से उठे धुएँ के गुब्बार काफी ऊँचाई तक पहुँच कर पूरे सोवियत में फैल गये थे । 31 व्यक्तियों की तो घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई थी । इस घटना के कारण स्थानीय 150000 लोगों को वहाँ से हटाना पड़ा । इसका असर काफी समय पश्चात अंटार्कटिका पर भी देखा गया ।

जापान की 1999 की नाभिकीय दुर्घटना में सामान्य से 15000 गुणा अधिक विकिरण निकला था जिसका दूषित प्रभाव बहुत दूरी की वनस्पति एवं जीवजन्तुओं पर देखने को मिला ।

इस प्रकार वर्ष 2000 तक लगभग 1200 से अधिक नाभकीय दुर्घटनायें हो चुकी थी । जब इस तीव्रता की प्रलयंकारी दुर्घटनायें घटित होती है तो परमाणु ऊर्जा उत्पादन तथा इसके लाभ पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है । रेडियोधर्मी दुर्घटनाओं के मनुष्य एवं वनस्पति पर असर आज भी देखने को मिल रहे है जो काफी समय पूर्व घटित हो चुकी थी ।

जर्मनी तथा स्वीडन में वैज्ञानिकों के अनुसार इस तरह की अन्य भयंकर दुर्घटनायें अगामो पांच वर्षो में होने की 70% संभावना है । यह सम्भावना सबसे अधिक पूर्व सोवियत गणराज्य में स्थित गलत डिजाईन वाले 15 नाभिकीय संयत्रों में होने का अनुमान है । इन सभी संयत्रों में सुरक्षा सम्बन्धित उपायों की अनदेखी की गई है । इस तरह के अन्य संयत्र यूरोप में भी स्थित हैं । इन खतरनाक परमाणु संयत्रों के साथ कई देशो में स्थित पुराने संयत्र जिन्हें न तो बंद किया गया है और न ही लम्बे समय के लिये चलाया जा सकता है, एक तरह से चिन्ता का विषय है ।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिये गए रिक्त स्थानों को भरिए :--

(क) .....ऊर्जा का अनियंत्रण भयानक .....को जन्म देता है ।

(ख) 1986 में सोवियत रूस के .....स्थान पर नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों में हुए विस्फोटों की श्रृंखला ने तबाही मचा दी थी ।

15.7 अम्लीय वर्षा (Acid Rain)

आज अम्लीय वर्षा पर्यावरण के लिये प्रमुख समस्या है जो दिनोदिन गम्भीर रूप लेती जा रही है । 1873 में U.K. के स्मिथ द्वारा सर्वप्रथम इस अम्लीय वर्षा शब्द का प्रयोग किया गया था । प्राकृतिक वर्षा का जल, हवा में उपस्थित विभिन्न प्रदूषकों की अभिक्रिया के फलस्वरूप अम्लीय हो जाता है इसको ही अम्लीय वर्षा कहते है ।

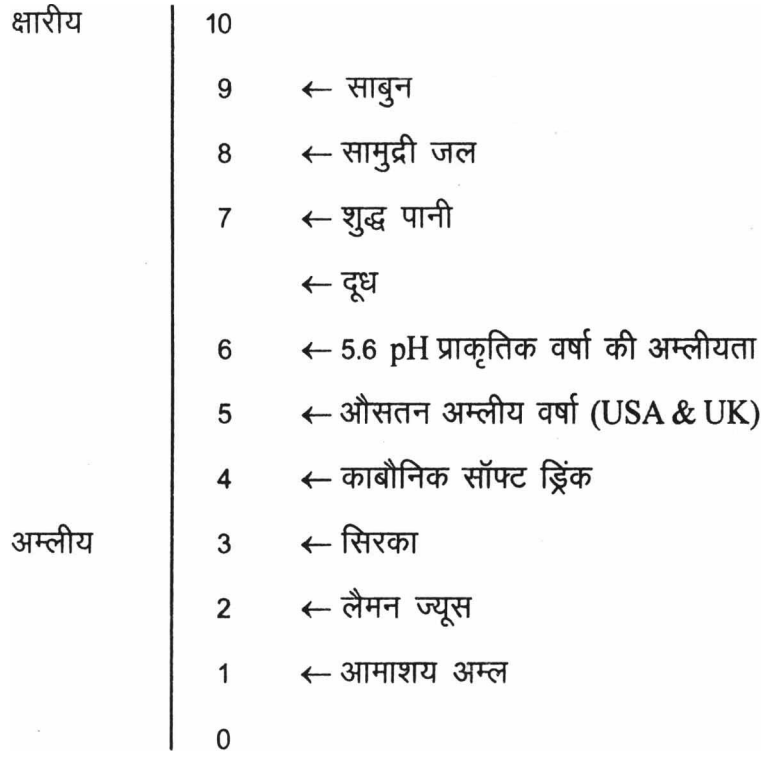

तालिका 15.3 : प्रकृति में विभिन्न जलीय पदार्थो की pH (पी.एच.)

सामान्य शुद्ध जल की pH उदासीन होती है, अर्थात उसकी pH 7 होती है । इससे कम pH होने पर जल अम्लीय एवं अधिक pH होने पर जल क्षारीय कहलाता है साधरणतया वर्षा के जल का pH 5.6–6.0 होता है, क्योंकि इसमें कार्बोनिक अम्ल H_2CO_3 मिला होता है । यह अम्लता कार्बोनिक अम्ल के आयनीकरण अभिक्रिया में हाइड्रोजन आयन निकलने के कारण होती है पर यह तनु अस्त प्रकृति के किसी घटक को हानि नहीं पहुँचाता है ।

15.7.1 अम्लीय वर्षा के कारण :-- पृथ्वी पर दिनों–दिन बढ़ते वाहन, औद्योगिकरण, मशीनीकरण, शहरीकरण आदि के द्वारा प्रदूषण की मात्रा बढ़ रही है । इससे आज पर्यावरणीय समस्या जन्म ले रही है । उद्योगों की चिमनी से निकले हए धुएँ में नाइट्रोजन एवं सल्फर के ऑक्साइड प्रचुर मात्रा में होते हैं । वाहनों से निकले हुये धुएँ में भी इन गैसो की मात्रा होती है ये गैसे(SO_2, NO and NO_2) हवा में उपस्थित जलकण/वाष्प/नमी के साथ मिलकर क्रमश: तनु सलफ्यूरिक अम्ल एवं नाइट्रिक अम्ल का निर्माण करते हैं । जब यह अम्ल, वर्षा के साथ मिलकर आकाश से बरसता है तो उसे अम्लीय वर्षा कहते हैं । ये दोनो अम्ल बहुत तेज होते हैं एवं जब वाष्प जल के साथ मिलकर वर्षा के रूप में

पृथ्वी पर गिरते हैं तो इस वर्षा जल का pH 5.6 से कम हो जाता है और कभी–कभी पी.एच. 1.2 तक पहुँच जाता है । जिससे जैविक एवं अजैविक घटकों को नुकसान पहुँचाता है ।

पश्चिम देशों में इस प्रकार की वर्षा का प्रभाव लम्बे समय तक देखा गया तथा भारत में सर्वप्रथम मुम्बई में अम्ल वर्षा देखी गई थी ।

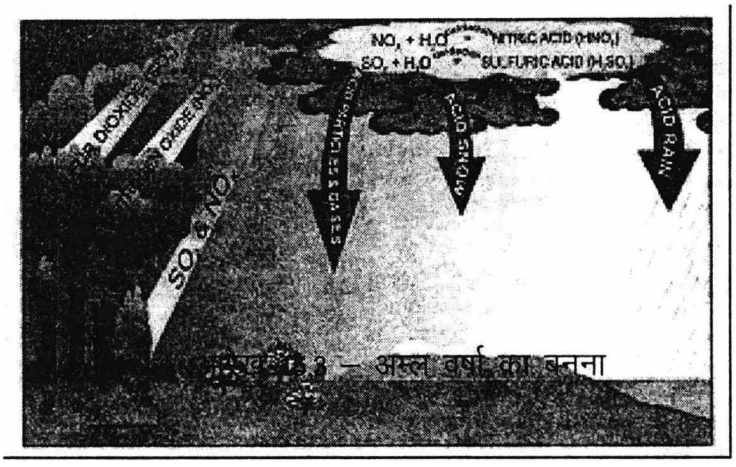

आरेख व 5.3 -- अन्त वर्षा का बनना

15.7.2 अम्लीय वर्षा के स्त्रोत : मानव एवं प्रकृति से सम्बन्धित क्रियाऐं अम्लीय वर्षा के लिये समान रूप से उत्तरदायी हैं । सल्फर एवं नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा फार्मिक अम्ल प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा भी बनते हैं ।

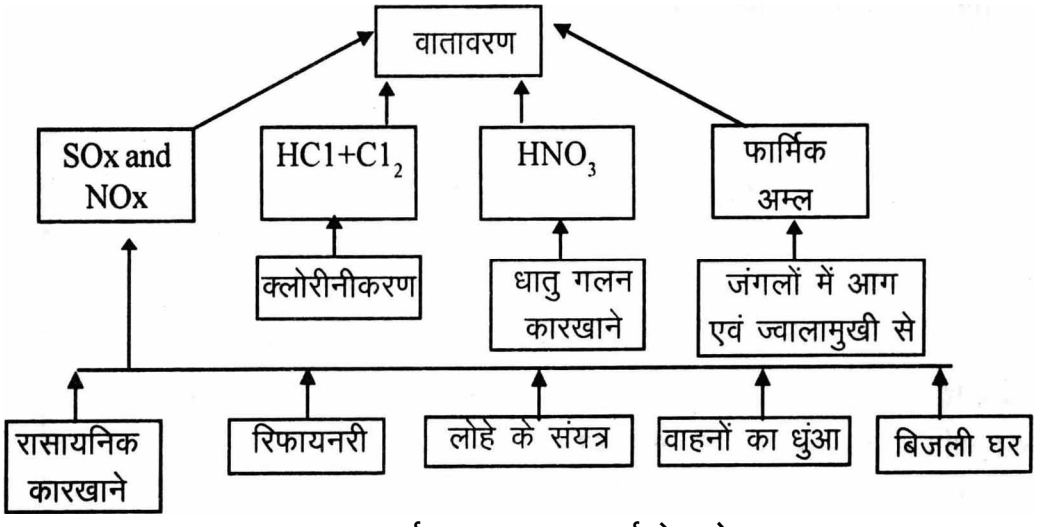

चार्ट 15.1 -- अम्ल वर्षा के स्त्रोत

अम्लीय वर्षा का प्रमुख कारण वायु प्रदूषण है । वायु प्रदूषण में सर्वाधिक प्रभाव सल्फर एवं नाइट्रोजन के ऑक्साइडों का है । इसके अतिरिक्त कुछ प्रभाव HCI (हाइड्रोक्लोरिक गैस / अम्ल) एवं कार्बन के ऑक्साइड का भी है । इन गैसों के वायुमण्डल में प्रवाह के कारण अम्लीय वर्षा होती है और यह प्रवाह कई प्रकार की प्राकृतिक व औद्योगिक क्रियाओं जैसे–आग, कार्बनिक संयोजन आदि के कारण होता है । मानव से सम्बन्धित कई क्रियाऐं, जैसे पैट्रोलियम पदार्थो के दहन से व परिवहन साधनो से निकले धुएँ के कारण इन गैसो की मात्रा बढ जाती है । इसके अतिरिक्त स्वचलित वाहनों, तेक्लस

शोधन संयत्रों (रिफाइनरी) इस्पात, तांबा व जस्ता उद्योग, ताप विद्युतीय घर इसके प्रमुख स्त्रोतों में से है ।

वातावरण में नाइट्रिक अम्ल का बनना : इस अभिक्रिया के लिये नाइट्रोजन के आक्साइड निम्न तरीकों से प्रकृति में बनते हैं

(1) दहन प्रक्रिया

(2) मृदा में नाइट्रीकरण अभिक्रिया के दौरान सुक्ष्म माइक्रोबैक्टीरिया द्वारा सह उत्पादन

(3) कार्बनिक नाइट्रोयौगिकों के द्वारा

(4) वर्षा के दौरान आकाश में बिजली चमकने के मध्य अभिक्रिया द्वारा

नाइट्रोजन आक्साइड से नाईट्रिक अस्त की प्रक्रिया में प्रकृति में उपस्थिति O_3 (ओजोन) भी भाग लेती है । यह प्रक्रिया रात एवं दिन में अलग–अलग क्रियाओं द्वारा पूर्ण होती है नाइट्रोजन के आक्साइड + नमी / वाष्प / जल कण $\longrightarrow$ नाइट्रिक अम्ल ।

वातावरण में सल्फ्यूरिक अम्ल (गंधक का अम्ल) का बनना

वातावरण में समतापमण्डल में सल्फर के आक्साइड की उपस्थिति का प्रमुख उद्गम ज्वालामुखी के सक्रिय होने पर निकली गैसों में होता है । यहाँ पर उपस्थित सल्फर के आक्साइड हरित गृह में भी प्रभाव डाल कर वातावरण को गर्म करने में सहायक सिद्ध हो रहे है । इस अभिक्रिया व माइक्रोबैक्टीरियल अभिक्रियाओं में ज्वालामुखी का अधिक ताप एक उत्प्रेरक का कार्य करता है यह अभिक्रिया ध्रुवों पर अधिक होती है । वातावरण में सल्फर के आक्साइडों का दूसरा स्त्रोत तेल शोधक कारखाने हैं । सल्फर के आक्साइडों से सल्फयुरिक अम्ल के निर्माण में भी वातावरण में उपस्थित ओजोन (O_3) का सक्रिय योगदान होता है यह अभिक्रिया कई परिस्थिति एवं पदों में पूर्ण होती है ।

सल्फर के आक्साइड + जल $\longrightarrow$ सल्फ्यूरिक अम्ल

नाइट्रोजन एवं सल्फर के आक्साइडो द्वारा क्रमश: नाईट्रिक और सल्फ्यूरिक अम्ल, फार्मिक अम्ल, हाडड्रोक्लोरिक अन्त द्वारा अम्ल वर्षा गीली अस्त वर्षा के रूप में जानी जाती हैं । वातावरण में उपस्थित आयनो का पृथ्वी पर फुहार के रूप में गिरना सूखी वर्षा के रूप में जाना जाता है । वातावरण से विभिन्न Na^+, Mg^{2+},Cl^-, K^+, Ca^{2+}, NH_4^+, $SO4^{-2}$, SNO_3^- आयनों का पृथ्वी पर सूखे फुहार के साथ आना इस तरह से सूखी वर्षा के अन्तर्गत आता है ।

15.7.3 अम्लीय वर्षा के प्रभाव

वनों पर प्रभाव :-- ठण्डें प्रदेशों में जहाँ वर्षा के साथ बर्फ भी गिरती है वहाँ बर्फ में भी अम्ल की मात्रा मिलती है । उत्तरी गोलार्द्ध के विकसित औद्योगिक राष्ट्रों का वायुमण्डल इसी कारणो से प्रदूषित है । पश्चिमी देशों में अम्ल वर्षा का प्रभाव लम्बे समय तक देखा गया है । जर्मनी का ब्लैक फोरेस्ट लगातार वृक्ष मृत्यु का सामना कर रहा है । एक रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटेन के 67% पेड़ अम्ल वर्षा के कारण क्षतिग्रस्त हैं । अम्लीय वर्षा का प्रभाव वनो की पत्तियों एवं जड़ो की अवरोधक गति को देखकर पहचाना जा सकता है । इस अम्लीय वर्षा का जल जब वहां के जलीय स्त्रोतों से मिलता है तो वहाँ के वनस्पति एवं जीव–जन्तु प्रभावित होतें है । अम्ल वर्षा से पादपों में प्रकाश संश्लेषण अभिक्रिया प्रभावित होती है, जिससे खाद्य उत्पादन में कमी होती है । अम्लीय वर्षा से जंगलो के बढने की दर में भी कमी पाई गई है ।

बोध प्रश्न 5

i. नीचे दिए गए रिक्त स्थानों को भरिए : -

(क) अम्ल वर्षा का pH..... से कम होता है, इसके दो मुख्य घटक..... एवं..... हैं ।

(ख) अम्ल वर्षा का मुख्य कारण..... प्रदूषण है ।

(ग) ताजमहल के संगमरमर पत्थरों के क्षरण..... के नाम से जाना जाता है ।

ii. भारत में सर्वप्रथम अस्त वर्षा कहां पाई गयी और क्यों? 1

.....

15.8 सारांश (Summary)

इस इकाई में आपने विश्व जलवायु और उस पर प्रदूषण एवं मानवीय क्रिया कलापों की वजह से पड़ने वाले निम्न प्रभावों का अध्ययन किया है :–

ग्रीन हाउस प्रभाव : यह एक प्राकृतिक क्रिया है जिसमें कुछ गैसें, जो ग्रीन हाउस गैसों के नाम से जानी जाती है, पृथ्वी की सतह से वापिस परावर्तित होने वाली ऊष्मा को अवशोषित कर लेती हैं जिससे गर्मी बढ़ती है ।

ग्लोबल वार्मिंग : ग्रीन हाउस प्रभाव की वजह से पृथ्वी एवं इसके वातावरण का औसत तापमान बढ़ रहा है इसे ही "ग्लोबल वार्मिंग" कहते हैं ।

ओजोन परत क्षरण : औद्योगिक वायु प्रदूषण में उपस्थित गैसें, मुख्यतया CFCs, ओजोन की परत में पहुँच कर, रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा ओजोन को आक्सीजन में अपघटित करके, ओजोन की परत को नष्ट कर देती हैं । चूंकि ओजोन, भू पृष्ठ पर पहुँचने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों से कवच के रूप में रक्षा करती है इसलिए ओजोन परत की क्षीणता से मनुष्यों में त्वचा का कैंसर हो सकता है और अन्य जैविक प्रभाव पड़ सकते हैं ।

नाभिकीय दुर्घटनाएँ : नाभिकीय उर्जा का अनियंत्रण भयानक दुर्घटनाओं को जन्म देता है जिससे जान व माल की भयानक क्षति होती है । अत: इसके नियंत्रण के सभी मापदंडों पर कड़ी निगरानी की आवश्यकता है ।

अम्लीय वर्षा : यह औद्योगिक वायु प्रदूषण व वाहनों के धुएं से उत्पन्न प्रदूषण का एक मुख्य प्रभाव है । सल्फर व नाइट्रोजन के आक्साइड, वायुमंडल में अभिक्रिया करते हैं जिससे तेज अस्त बनता है वो अम्ल वर्षा, हिमपात या धूल के रूप में अवक्षेपित होता है । इस अम्लीय अवक्षेपण ने जन जीवन को प्रभावित करने के साथ ही जंगलों और मत्स उद्योगों का अत्यधिक विनाश किया है साथ ही पत्थर की इमारतों, धातुओं और ऐसे ही अन्य पदार्थो का क्षरण किया है ।

15.9 शब्दावली (Glossary)

अम्लीय वर्षा :- वायुमण्डलीय अम्लीय गैसों का तरल अथवा शुष्क अवक्षेपण । अम्ल वर्षा के दौरान वर्षा जल का pH7 से कम हो जाता है ।

जीवाश्म ईंधन :- ऐसा ईंधन जो कि जीवाश्मीय पादपों अथवा प्राणियों से अर्जित किया जाता है, जीवाश्म ईंधन कहलाता है ।

पी.एच. (pH) :-- हाइड्रोजन सान्द्रता का ऋणात्मक लघुगणक ।

प्रदूषण :-- मानवीय क्रियाकलापों के फलस्वरूप वातावरण में हानिकारक पदार्थो का मुक्त होना प्रदूषण कहलाता है ।

वायुमण्डल :-- पृथ्वी के चारों ओर हवा का गैसीय आवरण, जिसमें नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन डाई ऑक्साइड तथा जलवाष्प प्रमुख रूप से उपस्थित होती है ।

हरित गृह प्रभाव : सौर ऊर्जा से, गर्म धारा के ऊष्मीय विकिरण का वायुमण्डलीय ऊष्मारोधी गैसों द्वारा अवशोषण तथा उन्हें अंतरिक्ष में परावर्तित नहीं होने देना, हरित गृह प्रभाव के नाम से इंगित किया जाता है ।

ओजोन :-- ऑक्सीजन का अपर रूप जिसमें ऑक्सीजन के तीन परमाणु पाये जाते हैं ।

15.10 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. Singh J.S., Singh S.P., Gupta S.R., Ecology, Environment and Resource Conservation.
2. डॉ. हरिमोहन, पर्यावरण और लोक अनुभव, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली 2.
3. वेदप्रकाश दुबे, पर्यावरण की पुकार, मगध प्रकाशन, दिल्ली –32.

15.11 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Practice)

15.11.1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर चार–पांच पंक्तियों में लिखिये :–

i. ग्रीन हाउस प्रभाव क्या है?

.....

.....

.....

ii. ग्लोबल वार्मिंग से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

iii. अम्ल वर्षा क्या है, समझाइए ।

.....

.....

.....

iv. अम्ल वर्षा से ताजमहल किस प्रकार प्रभावित होता है ।

.....

.....

.....

v. ओजोन परत क्षय या ओजोन होल से आप क्या समझते हैं ।

.....

.....

.....

vi. समताप मंडल से ओजोन अवक्षय होना मानव–जीवन को किस प्रकार प्रभावित करेगा ।

.....

.....

.....

15.11.2 वर्णनात्मक प्रश्न (Explainatory questions)

i. विश्व तापमान में वृद्धि से आप क्या समझते हैं, उसके कारणों की विवेचना करें ।

ii. ओजोन परत क्षरण के लिये उत्तरदायी कारणों एवं उसके प्रभावों के बारे में विस्तृत लेख लिखिये।

iii. नाभिकीय दुर्घटनाओं से आप क्या समझते है, कुछ प्रमुख नाभिकीय दुर्घटनाओं के बारे में संक्षिप्त में लिखिये ।

iv. अम्ल वर्षा से आप क्या समझते है । अम्लीय वर्षा के प्रभावों का वर्णन कीजिये ।

15.12 प्रश्नों के उत्तर

15.12.1 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1.(क) कार्बनडाई ऑक्साइड, वायुमंडलीय, ग्रीन हाउस प्रभाव

(ख) मुख्य ग्रीन हाउस गैसें CO_2, CH_4, NO, CFC, व जल वाष्प हैं ।

(ग) CFCs की ऊष्मा की अवशोषण क्षमता CO_2 से लगभग 20,000 गुना अधिक है ।

(घ) CO_2 पृथ्वी से परावर्तित होने वाली ऊष्मा को अवशोषित कर लेती है और ये ऊष्मा ताप नियमन में सहायता करती है ।

उत्तर 2.(क) 1. हरित गृह प्रभाव 2. हरित गृह गैसें 3. मानव क्रियाकलापों का योगदान

उत्तर 3.

i. ओजोन (ख) तीक् (ग) CFCs (घ) ओजोन परत क्षरण (ड) पराबैंगनी

ii. CFCs क्लोरोफ्लोरो कार्बन होते हैं जो कि मुख्यतया ओजोन परत के क्षरण के लिए उत्तरदायी है ।

iii. CFCs मुख्यतया रेफ्रिजरेटर व वातानुकूलन उपकरणों में प्रशीतन के रूप में प्रयुका होता है। अत: इनकी औद्योगिक इकाईयां इसके प्रमुख स्त्रोत हैं ।

उत्तर 4.(क) नाभिकीय, दुर्घटनाओं (ख) चेर्नोबिल

उत्तर 5.

i. (क) 5.6, सल्फ्यूरिक अम्ल, नाइट्रिक अस्त (ख) वायु (ग) मार्बल कैंसर

ii. भारत में सर्वप्रथम अम्ल वर्षा मुम्बई में, वहां पर अतीव औद्योगिकीकरण से उत्पन्न धुंए में नाइट्रोजन व सल्फर के आक्साइड के प्रचुर मात्रा में होने से पाई गई ।

15.12.2 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

(i) अतीव औद्योगिकरण, वाहनीकरण व जीवाश्म ईधन – जैसे कोयले आदि के जलने से उत्पन्न कार्बन डाइआक्साइड गैस कुछ अन्य गैसों जैसे मीथेन, नाइट्रस आक्साइड व क्लोरापेलोरोकार्बन्स आदि के साथ वायुमंडल में जमा होती रहती है । ये गैसे एक परदे की तरह कार्य करती हैं और पृथ्वी की सतह से परावर्तित सौर ऊर्जा को पुन: अंतरिक्ष में जाने से रोकती हैं इसे ही ग्रीनहाउस प्रभाव कहते हैं ।

(ii) Global warming - पृथ्वी के औसत तापमान में निरंतर वृद्धि होने को ग्लोबल वार्मिग कहते है । एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी के तापमा न में पिछले पचास वर्षो में 3.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हु ई है । क्षोभमंडल में एकत्रित ग्रीन हाउस गैसों जैसे कार्बनडाइ आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड. (N_2O) मीथेन (CH_4) क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) आदि गैसे तापमान में वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं तथा इन गैसों में वृद्धि के लिए मानवीय गतिविधियाँ जिम्मेदार है । इनसे जलवायु में अवांछनीय परिवर्तन होते हैं । अत: ग्रीन हाउस गैसों के प्रभाव से हो रही वैश्विक ताप वृद्धि को विश्व उष्णता या ग्लोबन वार्मिग कहते है ।

(iii) औद्योगिक संयंत्रों द्वारा व वाहनीकरण से उत्पन्न, वायुमंडल में छोड़ी गई गैसें जैसे सल्फर डाई आक्साइड (SO_2) व नाइट्रोजन के आक्साइड (N_2O व NO_2) जल की बूंदों और आर्द्र धूल कणों को सोख लेती है तथा तनु सल्फ्युरिक, नाइट्रिक व नाइट्रस अन्त बनाती हैं । फिर ये संघनित होकर अम्ल वर्षा के रूप में पृथ्वी पर अवक्षेपित होतीहै । साधारण भाषा में वह वर्षा जिसका pH 5.6 से कम हो, अम्लवर्षा कहलाती है इसका जीवों, वनस्पतियों, भूमि व स्मारकों पर अत्यंत हानिकारक प्रभाव होता है ।

(iv) मथुरा क्रूड आयल रिफायनरी व कई चमड़ा शोध कारखानों द्वारा निकलने वाली सल्फर डाइ आक्साइड की वजह से ताजमहल पर अस्त वर्षा के दुष्प्रभाव पड़ने की संभावना है । ताजमहल संगमरमर के पत्थरों से बना हु आ है और अस्त वर्षा से संगमरमर पत्थरों का संक्षारण होगा और उनमें पपड़ी निकल जाएगी । यह घटना मार्बल कैंसर के नाम से जानी जाती है ।

(v) ओजोन परत, समताप मंडल में उपस्थित ओजोन गैस की एक मोटी सतह है जो सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर पहुँचने से रोकती है । इस सुरक्षात्मक परत की मोटाई में क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स (CFCs) व हैलोन्स नामक कार्बनिक गैसों के कारण पिछले वर्षो में, 10 प्रतिशत से अधिक की कमी हो गई है । ओजोन स्तर की मोटाई में कमी सबसे पहले अंटार्कटिका क्षेत्र में देखी गई, जिसे ओजोन छिद्र के नाम से जाना जाता है । वर्तमान में इस तरह का पतलापन यूरोप, अमेरिका व आर्कटिक क्षेत्र में भी देखा गया है ।

(vi) यदि समताप मंडल में ओजोन की संरक्षी परत नष्ट हो गई तो सूर्य से होने वाला पराबैंगनी विकिरण, पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश कर जाएगा । इससे त्वचा के कैंसर और मेलोनॉमा मोतियाबिन्द, प्रतिरोधकता क्षय आदि बीमारियों में वृद्धि होगी । इसके अतिरिक्त समुद्रीतंत्र व भूमि में उपस्थित सूक्ष्मजीवों का जीवन खतरे में पड़ने से सीधा प्रभाव परिस्थितिकी तंत्र व कृषि पर पडेगा और मानव जीवन प्रभावित होगा ।

15.12.3 वर्णनात्मक प्रश्नों के उत्तर :-- कृपया इकाई में देखें ।

इकाई – 16

पर्यावरण कानून

Environmental Law

इकाई संरचना

16.0 उद्देश्य (Objective)

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

16.2 पर्यावरण सम्बन्धी कानून (Environmental Laws)

16.3 पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 Environmental (Protection) Act, 1986

16.4 वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण)अधिनियम,1981
The air (prevention and control of pollution) Act, 1981

16.5 जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974
Water (prevention & control of pollution) Act 1974

16.6 वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम, 1972 The wild life (protection) Act, 1972

16.7 वन संरक्षण अधिनियम, 1980 Forest (conservation) Act, 1980

16.8 इकाई सारांश(Summary)

16.9 अभ्यास कार्य (Exercise)

16. उद्देश्य(Objective)

बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण के कारण मानव जीवन विभिन्न रोगों, तनाव और समस्याओं से ग्रसित हो चुका है । अत: हमें यह जानना अतिआवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के प्रदूषण को नियंत्रित किस प्रकार किया जाये । सन् 1974 और उसके बाद वाले वर्षो में पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण हेतु विभिन्न अधिनियम बनाये गये तथा इनमें समय-समय पर संशोधन किये गये । इन अधिनियमों का पालन न करने पर जेल या जुर्माना या दोनों लगाये जा सकते हैं । अत: हमें इन पर्यावरण कानूनों का पालन करना चाहिये तथा जनता को भी इन कानूनों की पालना के प्रति जागरूक करना चाहिये।

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण, वैज्ञानिक विकास, शहरीकरण एवं मनुष्य की भोगवादी प्रवृति के कारण हमारे देश में वन–वृक्षों, उद्यानों, स्थायी वनस्पतियों, जलाशयों तथा खेतिहर पशुओं का तेजी से विनाश हुआ है । पृथ्वी के प्राकृतिक संतुलन की रक्षा करने वाले बैक्टीरिया, कीट, जन्तु और वन्य जीव तेजी से विलुप्त हो रहे हैं । इन सभी के कारण प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ गया है जिसके फलस्वरूप भूमि कटाव, सूखा, बाढ़, भूकम्प, चक्रवात, अकाल, प्रदूषण और महामारी की काली छाया हमारे देश पर फैलती दिखायी देती है ।

एक आकलन के अनुसार विगत चार दशक में हमारी पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के कारण 21,000 करोड़ रूपये की आर्थिक हानि लगभग हुई है । आज हमारी पृथ्वी न केवल वायु वरन् विविध

प्रकार के प्रदूषण से त्रस्त है । आज से पांच दशक पूर्व 6000 घनमीटर पानी प्रतिदिन प्रति व्यक्ति उपलब्ध था जो घटकर 2,300 घनमीटर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति रह गया है तथा कालान्तर में भी घटने की प्रबल सम्भावना है । इसके अतिरिक्त अदृश्य रूप में ध्वनि, सूक्ष्म तरंग, इलेक्ट्रॉनिक प्रदूषण भी मानव को विविध प्रकार से रोग ग्रसित कर रहा है ।

स्वतन्त्रता के 60 वर्षो में हमारी पर्यावरण समस्याऐं सुरक्षा की भांति बढ़ी है । हमारा देश आज तेज गति से ऊर्जा आश्रित जीवन शैली तथा शहरीकरण की ओर अग्रसर है । रोजगार, शिक्षा तथा अन्य सुविधाओं को देखकर लोग गांव तथा छोटे शहरों से आज बड़े शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं ।

आज दिल्ली विश्व का पाँचवीं तथा एशिया का पहला प्रदूषित शहर बन गया है । चीन का बीजिंग शहर जनसंख्या वृद्धि की मार से आहत है परन्तु पर्यावरण प्रदूषण के मामले में इसने अपना स्तर काफी सुधार लिया है विश्व में वायु प्रदूषण से 2.5 मिलियन लोग प्रतिवर्ष मर रहे हैं । इन सब का मुख्य कारण वृक्षों का विनाश, वनों की कटाई, कार्बन एवं सल्फर डाइ ऑक्साइड के सान्द्रण में वृद्धि, क्लोरोफ्लोरो क कार्बन जैसी ग्रीन हाऊस गैसों में बेहताशी वृद्धि कही जा सकती है ।

16.2 पर्यावरण सम्बन्धी कानून (Environmental Laws)

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पर्यावरण संरक्षण की प्राचीन भारतीय विधि का विवरण दिया गया है । समाज के प्रत्येक व्यक्ति का धर्म प्रकृति का संरक्षण तथा उसकी पूजा करना था । पर्यावरण की शुद्धता पर बल देते हुये आसपास की वायु को शुद्ध करने के लिये वैदिक समाज में यज्ञ किये जाते थे । कौटिल्य ने वनों के प्रकथन की परिकल्पना की थी । आदिकाल में वृक्षों को काटना दण्डनीय अपराध था । भारतीय दण्ड संहिता तथा संविधान में पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित साधारण विधियों को विशिष्ट विधियों में संयोजित किया गया है । पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित विनिर्दिष्ट उपाय संविधान के अनुच्छेद 51क के अधीन मूल कर्तव्य है और अनुच्छेद 48क के अधीन राज्य के नीति निर्देशक तत्व हैं जिन्हें 42 वें संविधान संशोधन द्वारा 1976 में संविधान में सम्मिलित किया गया । इसके अतिरिक्त स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 14,19 व 21 में संरक्षित है । संविधान के अधीन पर्यावरण का संरक्षण करना व सम्बर्धन करना राज्य का ही नहीं बल्कि नागरिकों का भी कर्तव्य है ।

साधारणतया पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान कानूनों (statues) द्वारा किया जाता है । इस कारण पर्यावरण की दृष्टि से शक्तियों के आवंटन की जानकारी महत्वपूर्ण है । भारत ने परिसंघात्मक प्रणाली (republic system) को अपनाया है जिसमें विधायी शक्तियों को संघ व राज्यों के बीच विभाजित किया गया है । पर्यावरण विधि अन्य विधियों में प्रतिपादित सिद्धान्तों, संकल्पनाओं, मानों (norms) व मानकों का संश्लेषण है । पर्यावरण विधि पर्यावरण से सरोकार रखने वाली विधियों में तंत्र की सहमति प्रदान करना, पर्यावरण सम्बन्धी मामलों में स्थिति का शिथिलीकरण, पर्यावरण के बारे में निर्णय देने से पहले मान्य मापदण्डों का विचार आदि से प्रदूषण नियंत्रण भरपूर है । भारत में पर्यावरण संरक्षण के लिए समय–समय पर अनेक कानून बनाये गये हैं । इनमें से कुछ महत्वपूर्ण नियमों अथवा अधिनियमों का वर्णन यहाँ किया गया है ।

बोध प्रश्न

1. वनों के प्रबन्धन की परिकल्पना किसने. की थी –

(अ) चरक (ब) सुश्रुत (स) कौटिल्य (द) अर्जुन

2. पर्यावरण अधिनियम किस वर्ष में पारित हुआ था –
(अ) 1976 (ब) 1986 (स) 1966 (द) 1956

3. पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित नीति निर्देशक तत्व 42 वें संविधान संशोधन द्वारा किस वर्ष सम्मिलित किये गये –
(अ) 1976 (ब) 1981 (स) 1950 (द) 1942

16.3 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1988 [Environmental (Protection) Act 1986]

सम्पूर्ण भारत पर लागू होता है । इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रावधान हैं –

(1) पर्यावरण के अन्तर्गत जल, वायु, भूमि, मनुष्य, प्राणी, पौधे, सूक्ष्म जीवाणु तथा सम्पत्ति एवं इनके मध्य सम्बन्ध सम्मिलित हैं ।

(2) पर्यावरण प्रदूषक ऐसा ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ है, जो ऐसी सांद्रता में विद्यमान है कि पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता 'है ।

(3) पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ पर्यावरण में प्रदूषकों का होना आवश्यक है ।

(4) ऐसे पदार्थ के निर्माण, पैकिंग, भण्डारण, परिवहन उपयोग, विनाश तथा विक्रय के दौरान हाथों से छूना ।

(5) संकटमय (hazardous) पदार्थो का निर्माण जो अपने रासायनिक या भौतिक गुणों से मनुष्यों, प्राणियों, वनस्पति, सक्ष्मजीवी या पर्यावरण को हानि पहुँचा सकता है । इस कानून के अन्तर्गत या ऊपर बतायी गयी परिभाषाओं को ध्यान में रखकर केन्द्र सरकार के अधीन निम्नलिखित शक्तियाँ रहेगी ।

(i) पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियन्त्रण के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना तथा उसको क्रियान्वित करना ।

(ii) पर्यावरण के विभिन्न आयामों के सम्बन्ध में उनके लिये मानक (standards) बनाना ।

(iii) विभिन्न स्त्रोतों से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन या नि:सारण के मानक निश्चित करना ।

(iv) उन क्षेत्रों को चिन्हित करना जिनमें कोई उद्योग नहीं चलाया जायेगा । पर्यावरण प्रदूषित करने वाली दुर्धटनाओं के निवारण के लिये प्रक्रिया तथा रक्षा के उपाय निर्धारित करना ।

(v) संकटमय पदार्थो के उपयोग के दौरान रक्षा के उपाय निश्चित करना ।

(vi) प्रदूषणकारी निर्माण सामग्री तथा पदार्थो की जाँच करना ।

(vii) पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं के सम्बन्ध में शोध व अनुसन्धान करना ।

(viii) किसी भी परिसर में संयन्त्र, मशीनरी, निर्माण–सामग्री आदि का निरीक्षण करना ।

(ix) पर्यावरणीय प्रयोगशालाओं तथा संस्थाओं की स्थापना करना तथा मान्यता देना ।

(x) पर्यावरणीय प्रदूषण सम्बन्धी सूचनायें संग्रहित करना तथा उनका प्रचार, प्रसार करना ।

(xi) पर्यावरण प्रदूषण के निवारण तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित नियम, पुस्तिकायें तथा मार्गदर्शिकायें तैयार करना ।

इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रदूषण फैलाने के जिम्मेदार व्यक्ति को अधिकतम पाँच माह की जेल या एक लाख रूपये जुर्माना या दोनों हो सकते हैं । प्रदूषणकारी गतिविधियाँ जारी रखने पर 5000 रूपये प्रतिदिन जुर्माना किया जा सकता है ।

बोध प्रश्न

4. प्रदूषणकारी गतिविधियां जारी रखने पर प्रतिदिन जुर्माना शुल्क है --
   (अ) 1000रू. (ब) 500रू. (स) 5000रू. (द) 100रू
5. सन् 1986 में पारित कानून का नाम लिखिये ।
   .....

16.4 वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981 [The Air (Prevention and Control of Pollution)Act,1981]

यह भी सम्पूर्ण भारत पर लाग होता है इस कानून के अन्तर्गत निम्न परिभाषाऐं दी गयी हैं–

(1) वायु प्रदूषक – किसी ऐसे गैसीय पदार्थो का इस प्रकार वायु मण्डल में उपस्थित होना जो मानव जीवन, दूसरे जीवों, वनस्पति सम्पत्ति अथवा पर्यावरण के लिये हानिकारक हो सकता है ।

(2) वायु प्रदूषण में वायु प्रदूषक पदार्थ का वायुमण्डल में उपस्थित होना आवश्यक है ।

(3) ऐसे उपकरण जो किसी ज्वलनशील पदार्थ के दहन के लिये या किसी धुऐं, गैस या विशिष्ट वस्तु को उत्पन्न करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है, प्रदूषणकारी माना जाता है । इस कानून के अन्तर्गत निम्न कार्य किये जायेंगे–

   (i) वायु प्रदूषण के निवारण नियन्त्रण के लिये व्यापक कार्यक्रम की योजना बनाना तथा उसे क्रियान्वित करना ।

   (ii) वायु प्रदूषण से सम्बन्धित किसी विषय में राज्य सरकारों को परामर्श देना ।

   (iii) वायु प्रदूषण से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित करना तथा उसका प्रसार करना ।

   (iv) वायु प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण में कार्य करने वाले को प्रशिक्षण दिलवाना ।

   (v) उचित समय पर औद्योगिक इकाई तथा निर्माण प्रक्रियाओं का निरीक्षण कर वायु प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण के लिए कदम उठाने के लिये आवश्यक आदेश देना ।

   (vi) वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र का आवश्यक अन्तराल पर निरीक्षण करना तथा उस क्षेत्र में वायु के गुणों को निर्धारित करना ।

   (vii) केन्द्रीय बोर्ड द्वारा निर्धारित वायु के गुणों के मानक को ध्यान में रखकर औद्योगिक इकाइयों तथा वाहनों के वायु प्रदूषकों का मानक निर्धारित करना ।

   (viii) वायु प्रदूषण करने की सम्भावना वाले उद्योग को चलाने वाले स्थान की उपयुक्तता के सम्बन्ध में परामर्श देना ।

   (ix) ऐसे अन्य कार्यो का पालन करना जो केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किये जायें ।

   (x) राज्य बोर्ड द्वारा इन कार्यो के पालन करने के लिये प्रयोगशालायें स्थापित करना या मान्यता देना ।

इस अधिनियम के अन्तर्गत तीन माह की जेल या 10,000 रूपये जुर्माना या दोनों लगाये जा सकते हैं । अधिनियम की पालना न होने पर 100 रूपये प्रतिदिन की दर से जुर्माना लगाया जा सकता है ।

बोध प्रश्न

6. वायु प्रदूषण अधिनियम किस वर्ष में पारित हुआ -
   (अ) 1966 (ब) 1976 (स) 1981 (द) 1990
7. अधिनियम 1981 का हनन होने पर किस सजा का प्रावधान है --
   .....

16.5 जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 [Water (Prevention and Control of Pollution) Act,1974]

इस कानून का दायरा पूरे भारतवर्ष में होगा । इसके अनुसार निम्न परिभाषायें दी गयी हैं –

(1) निकास के अन्तर्गत प्रदूषणकारी मल या व्यावसायिक बहि-स्त्राव वहन करने वाली कोई खुली या बंद नाली की व्यवस्था ।

(2) लोक स्वास्थ्य, उद्योग, कृषि, जीव–जन्तुओं, पौधों या जलीय जीवों के जीवन व स्वास्थ्य के लिये हानिकारक प्रदूषण के लिए जल के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों का परिवर्तन या ऐसे किसी अन्य द्रव गैसीय या ठोस पदार्थ का जल में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मिलना आवश्यक है ।

(3) नदी, अन्तर्देशीय, भूमिगत, समुद्री या ज्वारीय जल सरिता के अन्तर्गत आते हैं ।

(4) इसके अन्तर्गत निम्न कार्य किए जायेंगें –

   (i) जल प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण से सम्बद्ध किसी विषय पर केन्द्र सरकार को परामर्श देना ।

   (ii) राज्य बोर्डो के क्रिया–कलापों में समन्वय करना व उनके बीच के विवादों को सुलझाना ।

   (iii) राज्य बोर्डो को तकनीकी सहायता देना तथा उनका मार्ग–दर्शन करना साथ ही शोध तथा अनुसन्धान की व्यवस्था करना ।

   (iv) जल प्रदूषण के निवारण, नियन्त्रण कार्यक्रमों में लगे हुये व्यक्तियों के प्रशिक्षण की योजना बनाना ।

   (v) जल प्रदूषण के बारे में जन–सम्पर्क के माध्यम से व्यापक कार्यक्रम बनाना ।

   (vi) जल प्रदूषण व उसके प्रभावी निवारण व नियन्त्रण से सम्बन्धित तकनीकी एवं सांख्यकीय आँकड़े एकत्र, संकलित और प्रकाशित करना और मल तथा व्यावसायिक बहिस्त्राव से सम्बन्धित निर्देशिकायें, संहितायें आदि तैयार करना ।

   (vii) राज्य सरकारों के परामर्श से सरिता या कुऐं के मानक निर्धारित करना ।

   (viii) जल प्रदूषण के निवारण व नियंत्रण के लिये राष्ट्रव्यापी योजना बनाना व उसे कार्यान्वित करना ।

(ix) विभिन्न क्षेत्रों की मृदा, जलवायु व जल स्त्रोतों की विशेष दशाओं का विशेष रूप से सरिताओं व कुओं में जल के बहाव की विद्यमान प्रकृति का ध्यान रखते हुये मल तथा व्यवसायिक बहि:स्त्राव की शुद्धीकरण के लिये विश्वसनीय पद्धतियाँ विकसित करना ।

(x) राज्य सरकार को किसी ऐसे उद्योग की स्थापना के बारे में परामर्श देना जिसके चलाये जाने से नदी व कुओं का प्रदूषण सम्भव है ।

(xi) मल या कचरा अथवा दोनों का नि:स्तारण कराते समय व्यक्तियों द्वारा अनुपालन किये जाने वाने बहि:स्त्रावों के मानक निर्धारित करना ।

इस कानून की धारा 20 की उपधारा (2) या उपधारा (3) के अधीन निर्देशों का या धारा 32 की उपधारा (1) के खण्ड (ग) के अधीन जारी किये इन आदेशों का या धारा 33 की उपधारा (2) या धारा 33 (क) के अधीन जारी किये गये निदेशों की पालना करने में असफलता पाये जाने पर 3 मास के लिए करावास या 10,000 रू. जुर्माना अथवा दोनों से दण्डनीय होगा । यदि असफलता जारी रहती है तो ऐसे जुर्माना के साथ अगले प्रत्येक दिन के लिये 5000 रू. का दण्ड हो सकेगा ।

कोई अपराध किसी कम्पनी द्वारा किया गया हो तो उस कम्पनी के कारोबार के संचालन के लिये उत्तरदायी प्रत्येक व्यक्ति उस अपराध का दोषी माना जाएगा । यदि कोई अपराध किसी सरकारी विभाग द्वारा किया जाता है तो विभागाध्यक्ष को अपराध का दोषी समझा जायेगा तथा नियमानुसार उसे दंडित किया जायेगा ।

बोध प्रश्न

8. सरिता या कुऐं का मानक निर्धारण ..... के परामर्श से किया जाता है

9. जल प्रदूषण अधिनियम वर्ष ..... में पारित हुआ ।

16.6 वन्य जीव (सुरक्षा) अधिनियम, 1972 [The Wild Life (Protection) Act, 1972]

यह अधिनियम जम्मु–कश्मीर को छोड़कर पूरे भारतवर्ष में लागू रहेगा । इसके अन्तर्गत निम्नलिखित परिभाषायें दी गयी हैं –

(1) प्राणी में उभयचर, सरीसृप, पक्षी, तथा स्थनधारी व उनके बच्चे या अण्डे सम्मिलित हैं ।

(2) प्राणियों के बाल, खाल, नाखून, सींगे अथवा अन्य किसी अंग से बनी हुई वस्तुयें भी प्राणी वस्तुओं (animal articles) में शामिल हैं ।

(3) आवास का अर्थ भूमि, पानी, वनस्पति या अन्य आवास जिसमें वन्य प्राणी रहते हैं ।

(4) शिकार में प्राणी को पकड़ना, मारना, विष देना, पिंजरे में कैद करना या कैद का प्रयत्न करना, वन्य जीवों के साथ छेड़-छाड़ करना उनको किसी तरह से घायल करना या उनके प्रजनन स्थलों को नुकसान पहुँचाना आदि शामिल हैं ।

इस अधिनियम को प्रथम बार 1982 में व उसके बाद 1986,1991,1993 में व अभी हाल ही 2002 में संशोधित किया गया है । इस कानून के अन्तर्गत राष्ट्रीय वन्य जीव मंडल (National Board for Wild Life) का गठन किया गया है । जिसके अनुसार देश के प्रधानमंत्री इसके अध्यक्ष रहेंगे । इसमें निम्न कार्य अपेक्षित हैं ।

(i) बोर्ड द्वारा निर्धारित किये गये नियमों एवं कार्य योजना के द्वारा वन्य जीवों तथा वनों का संरक्षण तथा वनों का विकास करना ।

(ii) वन्य जीवों का संरक्षण तथा वन्य जीवों से उत्पन्न की गई वस्तुओं का व्यापार एवं अवैध शिकार को नियन्त्रित करने हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकार को समयानुसार सुझाव देना ।

(iii) राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों एवं संरक्षित क्षेत्रों के प्रबन्धन के बारे में दिशा निर्देश जारी करना।

(iv) वन्य जीवों एवं उनके रहने के स्थानों के वैज्ञानिक अनुसंधान हेतु किये जा रहे अध्ययनों एवं परियोजनाओं का उचित आकलन कर उन्हें अनुमोदित करना ।

(v) वन्य जीवों के संरक्षण की कार्य योजनाओं का वैज्ञानिक आकलन कर आवश्यकता के अनुसार उनमें सुधार लाना ।

(vi) प्रत्येक दो वर्ष में वन्य जीवों की स्थिति के बारे में विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित करना ।

(vii) केन्द्रीय वन्य जीव मंडल के साथ–साथ राज्य स्तरीय वन जीव मंडलों के गठन का भी इसमें प्रावधान किया गया है ।

राज्य वन्य जीव बोर्ड (State Wild Life Board) की अध्यक्षता राज्य के मुख्यमंत्री करेंगे। इस बोर्ड से निम्नलिखित कार्य अपेक्षित हैं -

(1) वन्य जीवों के लिये संरक्षित क्षेत्र घोषित करने हेतु उचित वन प्रदेशों का चुनाव एवं प्रबन्धन

(2) वन्य जीव एवं वनस्पति की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु नीतियों का निर्धारण करना ।

(3) वन्य जीवों के संरक्षण की विभिन्न नीतियों एवं वनवासियों एवं अन्य आदम जातियों की आवश्यकताओं के बीच सामंजस्य स्थापित करना । इस अधिनियम के खण्ड 11 एवं 12 के अतिरिक्त i,ii,iii एवं iv सूची में दिए हुए वन्य जीवों के शिकार पर पूर्ण पाबन्दी की व्यवस्था है।

(4) इन वन्य जीवों के मारे अथवा पकड़े जाने सम्बन्धी रिकार्ड के रख–रखाव को भी निश्चित किया जायेगा ।

(5) स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति की सुरक्षा ध्यान में रखते हुये अथवा आक्रमण करने वाले वन्य प्राणी को मारने पर अपराध नहीं माना जायेगा ।

इसी प्रकार कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में जैसे कोई अन्य वन्य जीव मनुष्य के लिये खतरा बने अथवा इतना बीमार हो कि उसे किसी तरह का उपचार देना सम्भव नहीं हो तो उस वन्य जीव को मारने की अनुमति मुख्य वन्य जीव प्रतिपालक (Chief wild life warden) दे सकता है । इसी अधिनियम के अनुसार कुछ विशिष्ट वनस्पति प्रजातियों की देख-भाल एवं सुरक्षा भी सुनिश्चित की जायेगी । इस प्रावधान के अनुसार वन क्षेत्रों या सरकार द्वारा चिन्हित विशिष्ट क्षेत्रों से खास प्रजाति की वनस्पति को उखाड़ना, क्षतिग्रस्त करना अथवा संग्रहित करना पूर्णतया निषिद्ध माना गया है । इन विशिष्ट वनस्पतियों तथा उनके उत्पादों के विक्रय, हस्तांतरण अथवा परिवहन पर भी पूरी तरह रोक रहेगी । जिन क्षेत्रों में यह वनस्पतियां पायी जाती हैं वहाँ के मूल निवासियों तथा जनजातियों के स्वयं के उपयोग के लिये उन्हें काम में लेने हेतु छूट दी गयी है । इन प्रावधानों के अतिरिक्त कुछ अन्य नियम भी प्रस्तावित किये गये हैं –

(1) इन विशिष्ट वनस्पतियों की खेती कोई भी व्यक्ति बिना सरकारी अनुमति के नहीं कर सकेगा ।

(2) इनको खेती करने के लिये अनुमति लेने से पहले उस व्यक्ति को यह स्पष्ट कर देना होगा कि वह किस विशिष्ट प्रजाति की तथा कितने बड़े क्षेत्र में खेती करने का इरादा रखता है ।

(3) शासकीय अनुमति के बिना इन विशिष्ट वनस्पति प्रजातियों तथा इनके उत्पादों का व्यापार अथवा लेन-देन करना निषिद्ध रहेगा ।

(4) इन वनस्पतियों की खेती करने वाले व्यक्ति को इनके उत्पादों के भण्डारों की घोषणा करनी होगी।

अभयारण्यों के बारे में भी इस कानून के अन्तर्गत अनेक निर्देश दिये गये हैं । इसके अनुसार शासन किसी भी प्राकृतिक पारिस्थितिकीय, वानस्पतीय प्राणि वैज्ञानिक अथवा भू-आकारिकीय महत्व के संरक्षित क्षेत्रों को अभयारण्य घोषित कर सकती है । ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले मूल निवासियों के लिये इन क्षेत्रों में धारा 28 के अन्तर्गत आवागमन की छूद दी गयी है । अभयारण्यों में तैनात कर्मचारियों तथा वन्य जीव वार्डन यह सुनिश्चित करेंगे कि मूल निवासियों के अलावा अन्य कोई अभयारण्य में प्रवेश तथा वास नहीं कर सकेगा । शासकीय अनुमति के उपरान्त अभयारण्य में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य होगा कि वह अभयारण्य के नियमों एवं कायदे-कानूनों का कड़ाई से पालन करे तथा वन–क्षेत्र में हुई वन्य प्राणियों की मृत्यु या वनाग्नि की सूचना शीध्रातिशीध्र वन विभाग के अधिकारियों को देकर आग बुझाने में सहायता करेगा । उनका यह भी कर्तव्य होगा कि वह स्वयं वन सम्पदा से किसी प्रकार की छेड़-छाड़ नहीं करेगें तथा अभ्यारण्य को हानि पहुँचाने वाली अग्नि नहीं जलाएगा ।

अभयारण्य में घूमने के लिये आने वाले व्यक्तियों से भी यह अपेक्षा है कि वह इस क्षेत्र में किसी भी प्रकार का हथियार नहीं लायेंगे तथा अभयारण्यों को क्षति पहुँचाने वाले विस्फोटकों का प्रयोग नहीं करेंगे । इसी अधिनियम के तहत कोई भी बिना लिखित आज्ञा के गाय, भैंस, ऊँट, भेड़, बकरियाँ आदि पशुओं की चराई नहीं करेगा । इस बात का भी प्रावधान है कि वन्य जीवों को संक्रामक बीमारियों से बचाने के लिए अभयारण्य की सीमा के 5 किमी क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के प्रत्येक मवेशी को टीका लगाया जाए । किसी क्षेत्र के वन्य जीव अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होने से उनकी सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु अभ्यारण्यों के भीतरी भागों से सम्बन्धित न होने पर भी राज्य सरकार इन क्षेत्रों को राष्ट्रीय उद्यान (National Park) घोषित कर सकती है ।

इस अधिनियम के अन्तर्गत चिड़ियाघरों में प्रदर्शित किये जाने वाले प्राणियों के रख–रखाव की उचित व्यवस्था की जायेगी । चिड़ियाघर के निर्माण पर भी नियंत्रण राज्य सरकार का रहेगा । कर्मचारियों को वन्य प्राणियों की देखभाल तथा प्रजनन कार्यक्रमों, अनुसंन्धान, गतिविधियों आदि का उचित प्रशिक्षण दिया जायेगा ।

(1) समस्त वन्य जीवन एवं संरक्षित क्षेत्र सरकारी सम्पत्ति है इनकी सुरक्षा करना सभी का कर्तव्य है ।

(2) शासकीय अनुमति के बिना वन्य जीवों तथा उनके उत्पादों का व्यापार पूर्णतया निषिद्ध है ।

(3) उपखण्ड – 2 के अन्तर्गत वन्य जीवों का क्रय–विक्रय करना, पकड़ना तथा उन्हें अपने पास रखना अपराध है, इनमें से कोई भी कृत्य उजागर एवं प्रमाणित होने पर ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को आर्थिक दण्ड अथवा 3 या अधिक वर्षा की कैद के द्वारा दण्डित किया जा सकता है ।

(4) जन्तुओं की हत्या या उन पर दुराचार करने वाले व्यक्तियों के बारे में शासन को जानकारी देकर सहायता करने वाले किसी अन्य प्रकार से वन्य जीवों की रक्षा में योगदान देने वाले व्यक्ति को पुरस्कृत किये जाने का प्रावधान भी इस अधिनियम के अन्तर्गत निहित है ।

बोध प्रश्न

10. वन्य जीव को मारने की अनुमति..... दे सकता है ।

11. वन्यजीव सुरक्षा अधिनियम को प्रथम बार वर्ष..... व अन्त में वर्ष..... में संशोधित किया गया ।

12. राष्ट्रीय वन्य जीव मंडल के अनुसार..... .... इसके अध्यक्ष रहेंगे ।

16.7 वन संरक्षण अधिनियम. 1980 [Forest (Conservation) Act, 1980]

हमारी पृथ्वी का लगभग एक तिहाई भू-भाग वनों से आच्छदित है । किसी भी देश का 33 प्रतिशत भाग वनाच्छादित होना चाहिए इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वन संरक्षण अधिनियम पारित किया गया । इनमें निम्नलिखित परिभाषायें दी गई हैं -

वन तथा वनस्पति में वृक्ष, पत्ते, फूल, फल एवं सभी अवर्णित भाग अथवा उपज आती है। वृक्ष के अन्तर्गत ताड़, बाँस, सूंठ, झाड-झांकड़ आदि आते हैं ।

वन उपज में इमारती लकड़ी, लकड़ी का कोयला, खैर की लकड़ी का तेल, राल, प्राकृतिक वार्निश, छाल, लाख, महुआ के फूल, कुथ व हरड़, शहद, गोंद आदि सभी सम्मिलित हैं । इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्न कार्य प्रतिबन्धित हैं तथा इन्हें करने वाला व्यक्ति -

(1) आरक्षित वन में आग लगाकर उस आग का जलता छोड़ नहीं सकेगा । जिससे वन को क्षति पहुँच सकती है ।

(2) अतिचार अथवा पशु चराई नहीं करेगा ।

(3) वृक्ष को गिराने या किसी इमारती लकड़ी को काटने या घसीटने में उपेक्षा द्वारा कोई नुकसान नहीं पहुँचायेगा ।

(4) वृक्ष अथवा पत्ते नहीं गिरायेगा । डालियाँ अथवा उसकी छाल नहीं उतारेगा न ही अन्य नुकसान पहुँचायेगा ।

(5) पत्थर की खुदाई, कोयला अथवा किसी वन उपज का संग्रह नहीं करेगा ।

(6) खेती या अन्य किसी प्रयोजन के लिये भूमि को साफ नहीं करेगा ।

(7) सरकार द्वारा इसके लिये बनाये गये किन्हीं नियमों के उल्लंघन कर शिकार करना, गोली चलाना, मछली पकड़ना, जल विषैला करना, जाल बिछाना अथवा पाश (trap) लगाना आदि कार्य नहीं करेगा ।

एक अन्य प्रावधान के अनुसार राज्य सरकार किसी भूमि या आरक्षित वन को किसी ग्राम समुदाय को आवंटित कर सकेगा अथवा आवंटन को रद्द कर सकेगी । यह ग्राम समुदाय इन वनों से ये इमारती लकड़ी या अन्य वन उपज का दोहन कर सकेगा । राज्य सरकार कभी भी किसी भी वन भूमि या बंजर भूमि को संरक्षित कर सकेगी इसी तरह संरक्षित वनों में किन्हीं वृक्षों या वृक्षों के वर्ग की अधिसूचना द्वारा नियत तिथि द्वारा आरक्षित घोषित कर सकेगी । 1980 में पारित इस अधिनियम का मुख्य कार्य वनों की सुरक्षा एवं संरक्षण सुनिश्चित करना है तथा इन सभी क्षेत्रों को इस अधिनियम के दायरे में लाना है । जो सुरक्षित वन घोषित नहीं हैं परन्तु जहाँ पर वनस्पति विपुलता में है इसके

अलावा वन भूमि में प्रयोग तथा वृक्षों की अनावश्यक कटाई पर रोक लगाना, सघन वृक्षारोपण कार्यक्रमों को बढ़ावा देना एवं वनों का समग्र प्रबन्धीकरण सुनिश्चित करना आदि भी कार्य है । 1988 में बनायी गयी राष्ट्रीय वन नीति (National Forest Policy) का उद्देश्य पारिस्थितिकी संतुलन सुनिश्चित करना है जिससे मानव, वन्य प्राणी तथा वनस्पति अपने प्राकृतिक स्थलों में स्वस्थ रह सके ।

बोध प्रश्न

13. वन संरक्षण अधिनियम ..... में पारित हुआ ।
14. 1988 में बनायी गयी राष्ट्रीय वन नीति का उद्देश्य ..... सुनिश्चित करना है
15. भारतीय वन नीति के अनुसार कितने प्रतिशत भू--भाग वन आच्छादित होना चाहिए।

16.8 सारांश (Summary)

लम्बे समय से मनुष्य प्रकृति के साथ छेडछाड़ कर रहा है । हालांकि औद्योगीकरण से पहले पर्यावरण मानव क्रियाओं द्वारा ज्यादा प्रभावित नहीं होता था । किन्तु औद्योगीकरण युग में मनुष्य ने प्रदूषण के भयावह रूपो को जन्म दिया है । इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण का हर घटक प्रदूषण के दुष्परिणामों की त्रासदी झेलने को मकर हो रहा है । इसी का परिणाम है कि आज प्राकृतिक आपदायें भी बढ़ रही है । इसलिए हमें पर्यावरण के बारे में पर्याप्त जानकारी की आवश्यकता है । जिससे कि पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर चुनौतियों से मुकाबला किया जा सके । इसके लिए समाज में पर्यावरणीय नैतिकता का विकास बहुत जरूरी है ।

पर्यावरणीय नैतिकता से अभिप्राय उन नियमों से है जो हमें वातावरण एवं इसके घटकों से नियंत्रित रूप से उचित एवम् श्रेष्ठ प्रकार का आचार प्रदर्शित करने की जानकारी प्रदान करते है । ये हमें प्रकृति के साथ अनावश्यक छेड़छाड़ नहीं करने को प्रेरित करती है ।

पर्यावरणीय नैतिकता का एक ज्वलंत उदाहरण राजस्थान के जोधपुर जिले के खेजड़ली ग्राम में हुए चिपको आन्दोलन के रूप में मिलता है । इस आन्दोलन में अमृता बाई एवं अन्य महिलाओं ने भी बढ़ चढ़कर भाग लिया था जिसमें हरे वृक्षों को बचाने के लिए लोग पेड़ो के साथ चिपक गये थे । पेड़ों के बचाने के लिए इस गाँव के लगभग 350 लोगों ने अपने प्राणों की आहुतियाँ दे दी थी।

इसके अलावा हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी पर्यावरण संरक्षण के बारे में महत्वपूर्ण तथ्य उजागर किये गये है । ऋषि चरक द्वारा लिखित चरक संहिता में भी वनों के विनाश को सर्वाधिक वर्जित दुष्कृत्य माना है ।

विश्व के सर्वाधिक पुराने हिन्दु धर्म में विभिन्न पेड़ -पौधो तथा जीव जन्तुओं को कई देवी -देवताओं के समकक्ष मान्यता दी गई है ।

जैन धर्म के 24 वें तीर्थकर भगवान् महावीर ने भी अंहिसा परमोधम का उपदेश प्रचारित कर 'पादपों एवम् प्राणियों पर अत्याचार को सर्वाधिक घृणित कृत्य बताया है ।

प्राचीन भारत के सम्राट अशोक ने भी वृक्षारोपण एवं वन्य सम्पदा के संरक्षण के लिये विशेष प्रायोजन किए ।

मध्यकालीन भारत में भी अनेक राजा- महाराजाओं ने वन्य सम्पदा संरक्षण पर जोर दिया । इनमें अकबर का नाम भी प्रमुखता से आता है । उसने नगरीय क्षेत्रों में सड़को एवं आम रास्तों के आस -पास वृक्षारोपण को अत्यधिक महत्व दिया ।

आधुनिक भारत के संविधान में भी पर्यावरण संरक्षण पर पुरजोर ध्यान केन्द्रित किया है । पर्यावरण से सम्बन्धित दो धाराएँ क्रमश : 48 A एवम् 51 A (G) सन् 1976 में शामिल की गई।

धारा 48 A के तहत समस्त राज्यों को पर्यावरण की सुरक्षा एवं इसके उचित रखरखाव की जिम्मेदारी सौंपी गई है । वही पर धारा 51 A (g) के अंतर्गत भारतीय नागरिक के मूल अधिकार बताये गये हैं जिसके तहत वह पर्यावरण की सुरक्षा करें एवम् जीवों के प्रति करूणा व दया का भाव रखने को प्रतिबद्व किया गया है ।

उपरोक्त नियमों एवं नैतिक कर्तव्यों का पालन कर पुन: मानवता का अन्य पारितंत्रों के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकते है । तथा जीवन को उत्कृष्ट बना सकते है ।

16.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वायु प्रदूषण (संरक्षण) अधिनियम को विस्तार से लिखिये ।
2. पर्यावरण संरक्षण क्या है ? इससे सम्बन्धित कौन –कौन से इससे सम्बन्धित कौन–कौन से कानून बनाये गये हैं ? संक्षिप्त में विवरण दीजिये ?
3. क्या आप इससे सहमत है कि पर्यावरण कानूनों का हमें पालन करना चाहिये, यदि ही, तो अपने विचारों को विस्तार से प्रकट करिये ?
4. राज्य वन्य जीव बोर्ड की अध्यक्षता कौन करता है तथा इसके क्या–क्या कार्य अपेक्षित है ?
5. पर्यावरण कानूनों के प्रभावी पालना से सम्बन्धित मुद्दे कौन–कौन से हैं ? संक्षिप्त में समझाइये?

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (स) कौटिल्य
2. (ब) 1986
3. (अ) 1976
4. (स) 5000 रूपये
5. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम
6. (स) 1981
7. तीन माह की जेल या 10000 रू जुर्माना या दोनों
8. राज्य सरकार
9. 1974
10. वन्य जीव प्रतिपालक
11. 1982, 2002
12. प्रधानमंत्री
13. 1980
14. परिस्थितिकी
15. 33 प्रतिशत

इकाई संदर्भ

पर्यावरण शिक्षा	–	के.के.शर्मा
पर्यावरण प्रबन्धन	–	डी.डी. ओझा
पर्यावरण	–	गुरदीप सिंह

इकाई – 17

मानव जनसंख्या

Human Population

जनसंख्या वृद्धि, विभिन्न देशों की जनसंख्या में विभिन्नताऐं, जनसंख्या विस्फोट पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य ।

इकाई की रूपरेखा :--

17.1 उद्देश्य (Objective)

17.2 प्रस्तावना (Introduction)

17.3 जनसंख्या वृद्धि (Population structure)

- 17.3.1 भारतीय परिप्रेक्ष्य में जनसंख्या वृद्धि (Population Growth in Indian Context)
- 17.3.2 जनसंख्या संरचना (Population structure)

17.4 विभिन्न देशों की जनसंख्या में विभिन्नताऐं (Differences in population of different countries)

- 17.4.1 जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले घटक(Factors affecting distribution of population)
  - 17.4.1.1 उच्चावच (Relief)
  - 17.4.1.2 जलवायु (Climate)
  - 17.4.1.3 जलापूर्ति (Water Supply)
  - 17.4.1.4 मृदा (Soil)
  - 17.4.1.5 खनिज पदार्थ (Minerals)
- 17.4.2 मानवीय घटक (Human Factors)
  - 17.4.2.1 नगरीकरण (Urbanization)
  - 17.4.2.2 परिवहन के साधनों का विकास (Development of Means of Transport)
  - 17.4.2.3 औद्योगिक विकास (Industrial Development)
  - 17.4.2.4 कृषि का विकास (Development of Agriculture)
- 17.4.3 सांस्कृतिक और राजनैतिक घटक (Cultural & Political factors)

17.5 जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion)

17.6 मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण (Human Health & Environment)

- 17.6.1 मानव स्वास्थ्य एवं वायु प्रदूषण (Human Health & Air Pollution)
- 17.6.2 मानव स्वास्थ्य एवं ध्वनि प्रदूषण (Human Health & Noise Pollution)

17.6.3 मानव स्वास्थ्य एवं जल प्रदूषण (Human Health & Water Pollution)
17.6.3.1 फ्लोरोसिस (Flourosis)
17.6.3.2 ब्ल्यू बेबी सिन्ड्रोम (Blue-Baby Syndrome)
17.7 सारांश (Summary)
17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालना है । भारत, जो कि एक विकासशील देश है उसको विकसित होने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ रहा है, लेकिन उस परिश्रम का असर नगण्य हो जाता है क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि इतनी तेजी से हो रहीं है कि देश के विकास में काम आने वाले संसाधनों का उपयोग हम जनसंख्या की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कर रहे है । जनसंख्या की अतिवृद्धि के कारण ही हमारे प्राकृतिक संसाधनों का अति उपभोग हो रहा है । और धीरे–धीरे जैविक एवं अजैविक संसाधन लुप्त प्राय की स्थिति में आते जा रहे है, जो प्राकृतिक संसाधन वर्तमान में उपलब्ध भी है तो वे प्रदूषित अवस्था में है, जिनका कुप्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ रहा है । और जीवन की गुणवत्ता में ह्रास हो रहा है ।

17.2 प्रस्तावना (Introduction)

आज सम्पूर्ण विश्व की जो मुख्य–मुख्य समस्याएं है, जनसंख्या वृद्धि उनमें से एक है । विकासशील देशों में जनसंख्या का 80 प्रतिशत भाग आता है । और आज इन देशों की प्रतिशत वृद्धि दर विकसित देशों से अधिक है । विकसित देशों की जनसंख्या वृद्धि पर पूरी तरह से काबू पा लिया गया है कुल जनसंख्या का मात्र 20 प्रतिशत हिस्सा ही विकसित देशों में रहता है । अत: जनसंख्या वृद्धि के कारण होने वाली समस्त समस्याओं का सामना विकासशील देशों को ही करना पड़ता है । मानव सभ्यता का विकास लगभग 50 हजार साल पूर्व हुआ । प्रारंभ में चूंकि मानव जनसंख्या काफी कम थी अत: प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों की भरमार थी । सर्वत्र घने वृक्ष, स्वच्छ जल, वायु, मृदा तथा वनों का वर्चस्व था । मानव घनत्व बहुत ही कम था । तालिका 17.1 दर्शा रही है कि सन् 1650 में विश्व की जनसंख्या लगभग 50 करोड़ थी जो कि सन् 1830 में लगभग दो गुनी होकर एक अरब हो गई, और आज हम 6 अरब से भी ज्यादा हो गये है ।

तालिका 17.1 : विश्व की जनसंख्या

क्रमांक	वर्ष	जनसंख्या करोड़ो में
1	1650	50.00
2	1700	62.30
3	1750	72.80
4	1800	90.60
5	1830	100.00

6	1850	121.00
7	1900	160.80
8	1930	200.00
9	1950	240.00
10	1960	300.00
11	1970	363.20
12	1975	400.00
13	1980	438.40
14	1987	500.00
15	1991	538.40
16	1999	600.00
17	2001	102.70

17.3 जनसंख्या वृद्धि (Population Growth)

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा स्थान आता है । सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या लगभग 102.7 करोड़ थी । विश्व के प्रत्येक 7 व्यक्तियों में से एक व्याक्ति भारतवासी माना जाता है । विश्व विकास रिपोर्ट 2003 के अनुसार सन् 2001 के मध्य में भारत की जनसंख्या लगभग 103.3 करोड़ व्यक्ति आंकी गई थी जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका की 28.4 करोड़ थी । अत: भारत की जनसंख्या अमेरिका की जनसंख्या की लगभग 3.6 गुना है । 1901 में भारत की जनसंख्या लगभग 23.8 करोड़ थी जो बढकर 2001 में 1027 करोड़ हो गयी ।

17.3.1 भारतीय परिप्रेक्ष में जनसंख्या वृद्धि (Population growth in Indian context)

भारत में सर्वप्रथम 1872 में जनगणना का कार्य व्यवस्थित रूप से शुरू हुआ उसके बाद दुबारा जनगणना सन् 1881 से हुई तथा इसके पश्चात् हर दस वर्ष बाद जनगणना की जाती है । भारत में जब जनगणना शुरू हुई है तब से सदा धनात्मक वृद्धि हुई है । केवल1921 का वर्ष ही एक अपवाद रहा है । जब भारत की जनसंख्या में वृद्धि ऋणात्मक हुई थी । इसका कारण इन्फ्लुएन्जा, चेचक, हैजा, प्लेग आदि महामारियों का प्रकोप था । भारत की जनसंख्या वृद्धि को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया जा रहा है ।

तालिका 17.2 :- भारत में 100 वर्षा की जनसंख्या वृद्धि की स्थिति (सन् 1901 से 2001 तक)

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ो में)	प्रति दशक वृद्धि (प्रतिशत में)	घनत्व प्रति व्यक्ति वर्ग किमी.
1901	23.83	-	77
1911	25.20	+5.75	82
1921	25.12	-0.30	81
1931	27.89	+11.00	90

1941	31.85	+14.23	103
1951	36.10	+13.31	117
1961	43.91	+21.52	142
1971	54.79	+24.80	177
1981	68.38	+24.75	221
1991	84.39	+23.50	267
2001	102.70	+21.34	324

विश्व में जनसंख्या के आधार पर भारत का स्थान दूसरा है । प्रथम स्थान पर चीन है । भारत की जनसंख्या तीव्र गति से बढ रही है । आजादी से पूर्व 1947 में भारत की जनसंख्या 34.4 करोड़ थी जो कि 1981 में बढकर 68.5 करोड़ हो गई यानि कि 34 वर्षो में दूसरा भारत (Second India) का निर्माण हो गया । वर्ष 1991 के सेन्सस की रिर्पोट के अनुसार भारत की जनसंख्या 84.3 करोड़ थी जो कि 2001 में बढकर 102.70 करोड़ हो गई । भारत की जनसंख्या में पिछले 50 वर्षो में अत्यधिक तीव्र वृद्धि दर्ज की गई है । वर्ष 1951 में जहाँ जनसंख्या मात्र 36.10 करोड़ थी वहीं सन् 2001 में यह 100.27 करोड़ हो गयी । केवल मात्र 50 वर्षो की अवधि में 66.60 करोड़ की जनवृद्धि अंकित की गई । जनसंख्या वृद्धि में हुई इस आशातीत वृद्धि का मूल कारण जन्म एवं मृत्यु दर में बढता हुआ अंतर हैं, क्योंकि मृत्यु दर पर स्वास्थ्य सेवाओं ने रोक लगा दी है और काफी हद तक मृत्यु दर पर काबू पा लिया जबकि जन्म दर पर उसी गति से काबू नहीं पाया जा सका और कुल वृद्धि की दर बढ गई ।

तालिका 17.3 भारत के विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की जनसंख्या एवं दषकीय वृद्धि

कोड	भारत / राज्य के केन्द्र शासित क्षेत्र	जनसंख्या 2001			दशक में प्रतिशत वृद्धि	
		व्यक्ति	पुरुष	महिलाएं	1981-91	1991-2001
	भारत	127015247	531277078	495788169	23.86	21.34
1	जम्मू कश्मीर	10069917	5300574	4769343	30.34	29.04
2	हिमाचल प्रदेश	6077248	3085256	2991992	20.79	17.53
3	पंजाब	24289296	12963362	11325934	20.81	19.76
4	चंडीगढ़	900914	508224	392690	41.16	40.33
5	उत्तरांचल	8479562	4316401	4163161	23.23	19.2
6	हरियाणा	21082989	11327658	9755331	27.41	28.06
7	दिल्ली	13892976	7570890	6212086	51.45	46.31
8	राजस्थान	56473122	29381657	27091465	28.44	28.33
9	उत्तर प्रदेश	166052859	87466301	78586558	25.55	25.8
10	बिहार	82878796	43153964	39724832	23.38	28.43
11	सिक्किम	540493	288217	2552276	28.47	32.98

12	अरुणाचल प्रदेश	1091117	573951	517166	36.83	26.21
13	नागालैंड	1988636	1041686	946950	56.08	64.41
14	मणिपुर	2388634	1207338	1181296	29.29	30.02
15	मिजोरम	891058	459783	431275	39.7	29.18
16	त्रिपुरा	3191169	1636138	1555030	34.3	15.74
17	मेघालय	2306069	1167840	1138229	32.86	29.94
18	असम	26638407	13787799	12850608	24.24	18.85
19	प. बंगाल	80221171	41487694	38733477	24.73	17.84
20	झारखण्ड	26909428	13861277	13048151	24.03	23.19
21	उड़ीसा	36706920	18612340	18094580	20.03	15.94
22	छत्तीसगढ़	20795956	10452426	10343530	25.73	18.06
23	मध्य प्रदेश	60385118	31456873	28928245	27.24	24.34
24	गुजरात	50596993	26344053	24252939	21.19	22.48
25	दमन एवं दीव	158059	92478	65581	28.62	55.59
26	दादरा नगर हवेली	220451	121731	98720	33.57	59.2
27	महाराष्ट्र	96752247	50334270	46417977	25.73	22.57
28	आंध्र प्रदेश	75727541	38286811	37440730	24.2	13.86
29	कर्नाटक	52733958	26856343	25877615	21.12	17.25
30	गोआ	1343998	685617	658381	16.8	14.89
31	लक्षदीप	60595	31118	29477	28.47	17.19
32	केरल	31838619	15468664	16369955	14.32	9.42
33	तमिलनाडु	62110839	31286654	30842185	15.39	11.19
34	पोण्डिचेरी	973829	486705	487124	33.64	20.56
35	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	356265	192985	163124	18.7	29.94

स्त्रोत भारत की जनगणना 2001, जनगणना निदेशालय जयपुर ।

1. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या कितनी है ?

   (अ) 100.0 करोड़ (ब) 101.5 करोड़

   (स) 102.7 करोड़ (द) 99.99 करोड़

2. जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में भारत का कौनसा स्थान है ?

   (अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) चतुर्थ

3. जनसंख्या वृद्धि के क्या लाभ है ?

(अ) बाजारों का आकार बढना (ब) तकनीकि क्षेत्र में वृद्धि

(स) श्रम शक्ति का बढना (द) उपर्युक्त सभी

4. विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या किस देश की है ?

(अ) भारत (ब) चीन

(स) आस्ट्रेलिया (द) पाकिस्तान

भारत के विभिन्न प्रान्तों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उत्तर प्रदेश सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य है जबकि सिक्किम राज्य की जनसंख्या सबसे कम अर्थात् 54 लाख हो है । निम्न तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की जनसंख्या दर्शायी गयी है ।

केरल व तमिलनाडू की कुल प्रजनन दर क्रमश: 1.8 एवं 2.0 है । जनसंख्या के स्थिरीकरण हेतु अन्य राज्यों को भी उपरोक्त राज्यों से प्रेरणा लेनी होगी । सन् 2001 की जनगणना से एक और पहलू सकारात्मक संदेश देता है । भारत की साक्षरता दर में वृद्धि आंकी गयी है जो इस आशा को बल देती है कि साक्षर महिलाएँ अब निकट भविष्य में महिला सशक्तीकरण की ओर अग्रसर हो सकेगी एवं इसका प्रभाव जनसंख्या नियंत्रण पर अवश्य पड़ेगा ।

तालिका 17.4: राजस्थान एवं भारत की जन्म दर, मृत्यु दर व शिशु मृत्यु पर की तुलनात्मक तालिका

वर्ष	जन्म दर		मृत्यु दर		शिशु मृत्यु दर		दंपत्ति संरक्षण दर	
	राजस्थान	भारत	राजस्थान	भारत	राजस्थान	भारत	राजस्थान	भारत
1985	39.7	39.9	13.2	11.1	108	97	19.8	32.1
1986	36.4	32.6	11.7	10.9	107	96	23.1	34.9
1987	35.1	32.2	11.6	11.0	102	95	26.0	37.5
1988	33.3	31.5	14.0	10..3	103	94	27.9	39.9
1989	34.2	30.3	10.7	9.7	96	91	28.9	41.9
1990	33.6	29.9	9.6	9.6	84	80	29.5	43.3
1991	35.0	29.5	9.8	9.8	79	80	28.9	44.1
1992	34.7	29.0	10.8	10.0	90	79	29.5	43.6
1993	33.6	28.5	9.0	9.2	82	74	29.4	43.5
1994	33.7	28.6	9.0	9.2	84	73	30.3	45.4
1995	33.3	28.3	9.1	9.0	85	74	30.2	46.8
1996	32.3	27.4	9.7	8.9	86	72	30.7	46.5
1997	32.1	27.2	8.9	8.9	85	72	36.4	44.0
1998	31.3	27.2	8.9	8.8	83	71	37.0	45.0

स्त्रोत– राजस्थान में जनसंख्या वृद्धि, आई.ई.सी. ब्यूरो, चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण निदेशालय, जयपुर

बढ़ती जनसंख्या के बावजूद सकारात्मक परिवर्तन सम्पूर्ण राष्ट्र में परिलक्षित हुए हैं । यद्यपि जन्म एवं मृत्यु दर दोनों में कमी आयी है, परन्तु मृत्यु दर की अपेक्षा जन्म दर में कमी बहुत अधिक सकारात्मक नहीं है । इनके बढ़ते हुए अन्तर ने ही जनसंख्या विस्फोट का रूप लिया है । शिशु मृत्यु दर जो 1947 में 200 से अधिक थी भारत में केवल मात्र 71 रह गई (तालिका–17.4) । वर्ष 1985 में जहाँ दम्पत्ति संरक्षण दर 32 प्रतिशत थी सन् 1998 में बढ़कर 45.0 प्रतिशत हो गयी । इसके परिणामस्वरूप कुल प्रजनन दर में भी गिरावट अंकित की गयी ।

17.3.2 जनसंख्या संरचना (Population Structure)

जनसंख्या संरचना के अन्तर्गत स्थान विशेष की जनसंख्या से संबंधित समस्याओं पहलुओं तथा विशेषताओं का वर्णन किया जाता है । प्राय: एक स्थान की जनसंख्या दूसरे स्थान से भिन्न होती है । सामान्यत: जनसंख्या संरचना में निम्न दो पहलुओं को ज्यादा महत्व दिया जाता है ।

आयु संरचना (Age Structure):– इसके अन्तर्गत स्थान विशेष की जनसंख्या को आयु वर्ग के अनुसार विभाजित किया जाता है । इस संरचना के द्वारा अलग–अलग आयु वर्ग के व्यक्तियों की जनसंख्या ज्ञात की जा सकती है । आयु संरचना के अन्तर्गत जनसंख्या के विभिन्न आयु समूहों जैसे :– 0 से 14 वर्ष, 14 से 49 वर्ष एवं 21 से 60 वर्ष एवं 60 से अधिक आयु के वर्ग समूहों में भी विभाजित कर अलग–अलग क्षेत्रों में जनसंख्या अध्ययन किया जा सकता है । जन्म दर एवं मृत्यु दर के निर्धारण में भी आयु संरचना का उपयोग किया जाता है ।

लिंग संरचना (Sex Structure):– लिंग संरचना के मुख्य दो आधार है । स्त्री एवं पुरूष, जनसंख्या अध्ययन में स्त्री–पुरूष अनुपात का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है । इसके अन्तर्गत हम प्रत्येक हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या का अध्ययन करते है । जैसे हमारे देश का लिंगानुपात सन् 2001 की जनगणनानुसार प्रति 1000 पुरूषों पर 933 महिलाएं है । स्त्री–पुरूष अनुपात की प्रमुख तीन अवस्थाएं है, जो निम्न है:–

1. स्त्री एवं पुरूषों का समान अनुपात
2. स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों की अधिक संख्या
3. पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की अधिक संख्या

इन दो संरचनाओं के अलावा जनसंख्या संरचना में आयु एवं लिंग को प्रभावित करने वाले कारक ग्रामीण–नगरीय निवास, प्रवास, वैवाहिक स्थिति, जन्मदर, मृत्युदर, प्रजननता इत्यादिका भी अध्ययन किया जाता है ।

5. भारत में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य कौन सा है ?
   (अ) उत्तर प्रदेश (ब) मध्य प्रदेश
   (स) राजस्थान (द) गुजरात
6. राजस्थान में सर्वाधिक जनसंख्या वाला जिला कौन सा है ?
   (अ) जयपुर (ब) जोधपुर
   (स) अजमेर (द) नागौर
7. जनसंख्या संरचना के आधार है :-.....; .....

17.4 विभिन्न देशों की जनसंख्या में भिन्नतायें (Differences in Population of different countries)

यदि सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न भागों की जनसंख्या का आकलंन करें तो हम पायेंगे कि सभी स्थानों पर जनसंख्या का वितरण समान नहीं है । कुछ ऐसे भाग है जहां जनसंख्या बहुत अधिक है तो अन्यत्र बहुत ही कम है । इस असमान वितरण के मुख्य कारण प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक एवं राजनैतिक है । विश्व की कुल जनसंख्या का 75 प्रतिशत भाग एशिया एवं यूरोप में निवास करते है । भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.5 प्रतिशत है किन्तु इस पर विश्व की लगभग 16 प्रतिशत जनसंख्या रहती है ।

तालिका 17.5 : विश्व के समस्त महाद्वीपों का क्षेत्रफल और जनसंख्या प्रतिशत में ।

महाद्वीप	कुल जनसंख्या प्रतिशत	क्षेत्रफल भाग प्रतिशत
एशिया	58.2	32.8
यूरोप	16.2	5.3
अफ्रीका	11.3	20.5
उत्तरी अमेरिका	5.5	16.5
दक्षिणी अमेरिका	8.3	12.0
ऑस्ट्रेलिया	0.5	3.6
अंटार्कटिका	0.0	9.3

आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.5 प्रतिशत है किन्तु इस पर केवल 0.5 प्रतिशत जनसंख्या की निवास करती है । महाद्वीपों के अन्दर भी जनसंख्या का असमान वितरण मिलता है । जैसे चीन में एशिया की 25 प्रतिशत जनसंख्या रहती है । यूरोप में भी उत्तरी पश्चिमी यूरोप में दक्षिणी पूर्वी यूरोप से अधिक जनसंख्या घनत्व है । विश्व में जनसंख्या वितरण को निम्नलिखित घटक प्रभावित करते है ।

17.4.1 जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक घटक (Factors affecting distribution of population)

17.4.1.1 उच्चवच (Relief):– ऊँचे पर्वतों पर जनसंख्या का वितरण और घनत्व बहुत कम होता है क्यों कि इस प्रकार के क्षेत्रों में अधिक ठंडी जलवायु, परिवहन साधनों का अभाव, अल्प वर्धनकाल, और कृषि योग्य भूमि की कमी के कारण बहुत कम लोग बसते है । विश्व के मैदानी भागों में वनस्पति, मानव और पशु जीवन की दशाएं अनुकूल है । यही परिवहन के साधनों का समुचित विकास हुआ है । यही कृषि योग्य भूमि और जलापूर्ति हेतु जल की सुविधा भी पायी जाती है । अतः इन क्षेत्रों में जनसंख्या अधिक पायी जाती है । उदाहरण के लिए गंगा और ब्रह्मपुत्र की घाटी, संयुक्त राज्य अमेरिका के मैदानी भागों में घनत्व अधिक पाया जाता है! साइबेरिया के मैदान इसके अपवाद है क्योंकि ठंड के कारण यहां जनसंख्या कम पायी जाती है ।

17.4.1.2 जलवायु (Climate) :– यह महत्वपूर्ण कारक है जो जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करता है । अत्यंत ठंडे प्रदेश और गर्म मरूस्थलीय प्रदेश मानव को अपनी और आकर्षित नहीं कर पाए हैं ।

ध्रुवीय क्षेत्रों और अन्टार्कटिका एवं ग्रीनलैण्ड में जनसंख्या का घनत्व नाम मात्र है । अन्टार्कटिका बिलकुल जनशून्य है । सारे मरूस्थल की शुष्क जलवायु मानव विकास के लिए अनपयुक्त है । अत: ये क्षेत्र लगभग जनशून्य है । उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में अत्यधिक आर्द्रता और अत्यधिक सघन वनस्पति के कारण वनों को साफ रखना कठिन है । इसलिए इन क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व बहुत कम होता है । अनुकूल जलवायु मानव की कार्यक्षमता को भी प्रभावित करती है । यह मानव को परिश्रम के लिए अनुकूल दशाएं प्रदान करती है । इस कारण ही पश्चिमी यूरोपीय देशों और उत्तरी अमेरिका के उत्तरी पूर्वी तटीय भागों में आर्थिक विकास हुआ है । पश्चिमी जलवायु मानव की कार्य क्षमता के लिए अत्यंत अनुकूल और स्वास्थ्यवर्द्धक है ।

17.4.1.3 जलापूर्ति (Water Supply):-- मनुष्य पौधे और पशुओं के जीवन में जल की महत्वपूर्ण स्थान है । किसी क्षेत्र की जनसंख्या का वितरण और घनत्व जल की उपस्थिति पर निर्भर करता नदी घाटियों में सघन जनसंख्या के पाये जाने का प्रमुख कारण वहां पर्याप्त मात्रा में जल की प्राप्ति है । मरूस्थलों में भी, जहॉ पर्याप्त पानी उपलब्ध है वहां पर सघन घनत्व का क्षेत्र मिलता हे । उत्तरी अफ्रीका की नील घाटी । मरूस्थलों के छोटे क्षेत्रों में जल की उपलब्धि के कारण सघन जनसंख्या निवास करती है । ये स्थान नखलिस्तान कहलाते है । जल, जलवायु को सम बनाता है जिससे तटीय भागों में घनत्व अधिक मिलता है ।

17.4.1.4 मृदा (Soil) :-- विश्व के उपजाऊ मृदा के क्षेत्रों में अधिक जनसंख्या पायी जाती है । क्योंकि उपजाऊ मृदा कृषि कार्य की उन्नति में सहायक होती है । भारत में गंगा की उपजाऊ घाटी पाकिस्तान में सिंधु घाटी और चखेन हवांगहो की घाटी में जनसंख्या सघन होने का कारण यही उपजाऊ मृदा का पाया जाना है । इण्डोनेशिया में जावा द्वीप में नवीन लावा युक्त उपजाऊ मृदा के कारण वहां जनसंख्या का घनत्व अधिक है । इसके विपरीत सुमात्रा में अनुपजाऊ और निक्षालित मृदा के कारण जनसंख्या कम पायी जाती है ।

17.4.1.5 खनिज पदार्थ (Minerals) :-- जनसंख्या वितरण में खनिजों की महत्वपूर्ण भूमिका है । कोयले और लोह अयस्कों के क्षेत्रों में विशाल जनसंख्या पायी जाती है । क्योंकि जनसंख्या का अधिक भाग लोहा–इस्पात उद्योग में लगा होता है । पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका में अपेलेशियन क्षेत्र जर्मन का सर क्षेत्र, ब्रिटेन में पेनाइन क्षेत्र और भारत में दामोदर घाटी और एशिया में डेनेटज बेसिन में घनी जनसंख्या पाये जाने का कारण कोयले का पाया जाना है । खनिज प्रदार्थो की विद्यमानता के कारण ही दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के मरूस्थलो, कालगूर्ली और कलगार्डी में सोने की खान है और पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका में सोने की खानों के कारण ये क्षेत्र विशाल जनसंख्या के केन्द्र बन गये है । उत्तरी कनाडा के निर्जन ठंडे प्रदेश में भी यूरेनियम सिटी बसने का मुख्य करण वहाँ यूरेनियम खनिज का पाया जाना है ।

17.4.2 जनसंख्या को प्रभावित करने वाले मानवीय घटक (Human Factors) :--

17.4.2.1 नगरीकरण (Urbanisation):-- आज विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 25 प्रतिशत भाग 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले बड़े नगरों में निवास करता हैं । इसका कारण यह है कि नगर हर प्रकार की सुविधाएं और रोजगार आदि के सुअवसर प्रदान करता है । विश्व

के बड़े नगरों की जनसंख्या तीव्र गति से बढी है । अत: नगरों में जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है ।

17.4.2.2 परिवहन के साधनों का विकास (Development of Means of Transport):-- वर्तमान युग में परिवहन के साधनों में अधिक वृद्धि हुई है । समुद्री परिवहन ने नए–नए भू भागों की खोज में सहायता प्रदान की है । सस्ते और लंबी दूरी वाले व्यापारिक मार्गो की स्थापना भी इन्ही के कारण हुई है । स्थल और जन परिवहन के साधनों ने भी जनसंख्या वृद्धि में योगदान दिया है । उदाहरण के लिए पूर्व सोवियत संघ में ट्रांस साइबेरियन रेल्वे के निर्माण के बाद ही कृषि और उद्योगों एवं नगरों का विकास हुआ है ।

17.4.2.3 औद्योगिक विकास (Industrial Development):-- इसने भी जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित किया है । सघन जनसंख्या और औद्योगिक दृष्टि से विकसित क्षेत्र जेसे पश्चिमी यूरोप, उत्तरी पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका में पायी जाती है । भारत में दामोदर घाटी, मुम्बई कानपुर, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु के भीतरी भागों में सघन जनसंख्या पाए जाने का मुख्य कारण इन्हीं क्षेत्रों में औद्योगिक विकास हे ।

17.4.2.4 कृषि का विकास (Agricultural Development) :-- विश्व में कृषि प्रधान देशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है । जैसे चीन और भारत में शीतोष्ण कटिबंधीय घास भूमियों अर्थात प्रेयरीज, स्टेप्स, पम्पास में कृषि की उन्नति के कारण जनसंख्या अधिक मिलती है ।दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों में जनसंख्या अधिक होने का कारण भी यहां कृषि कार्य की प्रधानता हैं ।

17.4.3 सांस्कृतिक और राजनैतिक घटक:-- सांस्कृतिक कारकों में सांस्कृतिक समूहो का विस्थापन, उत्प्रवास, राजनैतिक कारणों द्वारा विस्थापन आदि सम्मिलित किए जाते है । धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों को कभी कभी बलात् विस्थापित कर दिया जाता हे । धर्म के नाम पर आपसी झगडों के कारण मानव समूहों के स्थान को छोड कर दूसरी जगहों पर जाना पड़ता हैं । यूरोप में यहूदियों पर होने वाले अत्याचारों के कारण उनकी जनसंख्या कम हो गई । भारत और पाकिस्तान का विभाजन एक राजनैतिक निर्णय था परन्तु उसके कारण लाखों लोग विस्थापित हो गए । इसी प्रकार इजराइलियों और अरबों के झगडे के कारण फिलिस्तीनियों को इजराइल जाना पडा ।

17.6 भारत की जनसंख्या का राज्यवार लिंगानुपात एवं जनसंख्या घनत्व 1991 -- 2001

कोड	क्षेत्र	लिंगानुपात		जनसंख्या घनत्व	
		1991	2001	1991	2001
	भारत	927	933	267	324
1.	जम्मू कश्मीर	896	900	77	99
2.	हिमाचल प्रदेश	976	970	93	109
3.	पंजाब	882	874	403	482
4.	चंडीगढ़	790	773	5632	7903
5.	उत्तरांचल	936	964	133	159
6.	हरियाणा	865	861	372	477

7.	दिल्ली	827	821	6252	9249
8.	राजस्थान	910	922	129	165
9.	उत्तर प्रदेश	876	989	548	689
10.	बिहार	907	921	685	880
11.	सिक्किम	878	875	57	76
12.	अरुणाचल प्रदेश	859	901	10	13
13.	नागालैंड	886	909	73	120
14.	मणिपुर	958	978	82	107
15.	मिजोरम	921	936	33	42
16.	त्रिपुरा	945	950	263	340
17.	मेघालय	955	975	79	103
18.	असम	923	932	286	304
19.	प. बंगाल	917	934	767	904
20.	झारखण्ड	922	941	274	338
21.	उड़ीसा	971	972	203	236
22.	छत्तीसगढ़	985	990	130	154
23.	मध्य प्रदेश	912	920	158	196
24.	गुजरात	934	921	211	258
25.	दमन एवं दीव	969	709	907	1411
26.	दादरा नगर हवेली	952	811	282	449
27.	महाराष्ट्र	934	922	257	314
28.	आंध्र प्रदेश	972	978	242	275
29.	कर्नाटक	960	964	235	275
30.	गोआ	967	960	316	363
31.	लक्षदीप	943	947	1616	1894
32.	केरल	1036	1058	749	819
33.	तमिलनाडु	974	986	429	478
34.	पोण्डिचेरी	979	1001	1683	2029
35.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	818	846	34	43

स्त्रोत : भारत की जनगणना रिपोर्ट-2001

17.5 जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion)

विश्व जनसंख्या में हर वर्ष 9 करोड़ 21 लाख की वृद्धि होती है । भारत में जनसंख्या वृद्धि जनसंख्या विस्फोट की तरह मानी जाती है । सन् 1650 में विश्व की जनसंख्या 50 करोड़ थी जो कि 1830 में बढकर लगभग दुगनी हो गई । सन् 1930 में मात्र 100 वर्षो के अंतराल में विश्व जनसंख्या दुगनी अवस्था में आ गई । इसके उपरांत विश्व जनसंख्या में निरंतर धनात्मक वृद्धि होती गई । पहले जहाँ विश्व की जनसंख्या 200 साल में दुगनी हुई थी वहीं 1975 में मात्र 45 वर्षो के अंतराल में ही 400 करोड़ आंकी गई । वर्ष 1987 में विश्व की जनसंख्या 500 करोड़ आंकी गई थी जो सन् 2001 में बढकर 603 करोड़ तक पहुँच गई । सिर्फ एशिया में विश्व की 60 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है । विश्व के दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश जैसे चीन, भारत, बांग्लादेश तथा अफ्रीका के देश नाइजीरिया, गिनी, घाना आदि देशों में विस्फोट की स्थिति बनती जा रही है । यह बढती हुई जनसंख्या विश्व शांति के लिए परमाणु बम से भी अधिक खतरनाक है ।

8. किसी देश की जनसंख्या वृद्धि एवं भूमि पर उनका वितरण किन-- किन करकों पर निर्भर करता हे ?

(अ) जलवायु मिट्टी आदि भौतिक कारकों पर (ब) सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर

(स) जनसांख्यिक कारकों पर (द) उपरोक्त सभी पर

9. भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार लिंगानुपात है ?

(अ) 1002 : 1000 (ब) 999 : 1000

(स) 902 : 1000 (द) 933 : 1000

17.6 पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य (Environment and Human Health)

पर्यावरण से तात्पर्य हमारे चारों के वायुमंडल से लिया जाता है । इस पर्यावरण के अन्तर्गत मुख्यत: जल, जंगल, जमीन एवं जलवायु को सम्मिलित किया जाता है । मानव भी पर्यावरण का एक अंग है । मानव पर पर्यावरण का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है । यह दिन प्रतिदिन की गतिविधियों पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । वर्तमान में हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि बहुत ही तेजी से हो रही है जिससे हमारा पारिस्थितिकी तंत्र या पर्यावरण दिन–प्रतिदिन बिगडता जा रहा है । पर्यावरण संकट व पर्यावरण संरक्षण का जनसंख्या वृद्धि से सीधा संबंध है ।

जनसंख्या में वृद्धि होती हे तो– (1) प्राकृतिक संसाधनों का अधिक मात्रा में दोहन होगा तो प्रदूषण बढेगा । (2) विकास की सभी आधारभूत सुविधाओं, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य में कमी होगी, और पर्यावरणीय प्रदूषण बढेगा, जिससे मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहे हैं जैसे पर्यावरण अवनयन से विभिन्न प्रकार के प्रदूषण हो रहे है । ध्वनि प्रदूषण से मानव मानसिक रूप से अंसुलित हो जाता हैं उसके व्यवहार में चिडचिडापन आ जाता है । वायु प्रदूषण से वायु मंडलीय गैसों का अनुपात बिगड गया है जिससे पर्यावरण में हानिकारक गैसों की वृद्धि हो गई है । इसके अलावा ओजोन गैस के क्षरण से सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों से त्वचा कैंसर जैसे घातक रोग हो जाते

हैं । इसके अलावा जनसंख्या वृद्धि से फसलें या खाद्यानों की तीव्र मांग बढने पर भूमि में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बढा हैं । जिससे एक ओर तो भूमि के उपजाऊपन में कमी आई है दूसरी तरफ मानव को इन खाद्यानों से उचित पोषक तत्वों की पूर्ति नहीं हो पाती है जिससे मानव स्वास्थ्य में कमजोरी हो जाती है । इस प्रकार पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य में प्रत्यक्ष संबंध है । वे एक दूसरे के पूरक है । यदि पर्यावरण साफ व स्वच्छ होगा तो यहां का मानव स्वस्थ होगा । और यदि पर्यावरण प्रदूषित होगा तो मानव स्वास्थ्य खराब हो जाता है ।

मानव स्वास्थ्य के लिए पर्यावरण की स्वच्छता व संरक्षण आवश्यक है । यू.एन.ओ. के विश्व स्वास्थ्य संगठन व विश्व पर्यावरण कार्यक्रमों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदूषण के खतरों से आगाह करते हुए संरक्षण का महत्व बताया है । लगभग सभी प्रकार के प्रदूषणों का मानव स्वास्थ्य पर विपरीत असर होता है ।

17.6.1 वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effect of Air Pollution on Human Health)

वातावरण में वायु प्रदूषण की उपस्थिति से वायु मंडल की स्वच्छ एवं शुद्ध वायु के गुणधर्मो में अत्यंत परिवर्तन आ जाते है । वायु में उपस्थित दूषित कणों का मानवीय स्वारथ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । वायुप्रदूषण से दमा, निमोनिया, तपेदिके सिरदर्द, जुकाम–खांसी, फेफडों कैंसर आदि हानिकारक रोग फैलते है । कार्बन मोनोऑक्साइड की अधिकता मानवीय संचरण तंत्र को प्रभावित करती है । वायु में इसकी अधिक मात्रा होने पर यह रक्त के हीमोग्लोबिन में घुल कर कार्बोक्सी हीमोग्लोबीन का निर्माण करती है जिससे रक्त में आक्सोजन की कमी हो जाती है जो कि मृत्यु का एक कारण भी हो सकता है । वाहनों से निकलने वाले धुऐं के साथ प्रसारित लैड, यकृत, वृक्क के उत्तको को हानि पहुंचाता हैं तथा हड्डियों को कमजोर करता हैं। इन प्रभावों के अतिरिक्त वायु में स्वतंत्र अवस्था में बारीक कण मौजूद रहते है जो कि फेंफडें के कैंसर का मुख्य कारण है ।

17.6.2 मानव स्वास्थ्य पर ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव (Effect of Noise Pollution on Human Health)

आधुनिक समाज में मानव ने अपना जीवन सुविधाभोगी वस्तुयुक्त बना रखा है । एक तरफ जो वस्तुऐं मानव को सुविधाएं प्रदान करती है वहीं दूसरी और उन्हीं उपयोग द्वारा मनुष्य जाने अनजाने बिमारियों से ग्रसित हो जाता हैं । ध्वनि प्रदूषण मनुष्य के श्रवण तंत्र को सर्वाधिक प्रभावित करता है । इससे मानव की श्रवण शक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है । केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर प्रदूषण से प्रभाव से याददाश्त कम हो जाती हैं तथा इसके अलावा अल्सर, दमा एवं चिडचिडापन जैसे रोग उत्पन्न हो जाते है । उपरोक्त प्रभावों के अतिरिक्त मनुष्य में मानसिक रोग जैसे तनाव आदि भी ध्वनि प्रदूषण का ही दुष्परिणाम है ।

17.6.3 जल प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effect of Water Pollution on Human Health)

जल मानव के जीवन का एक अभिन्न अंग है । प्रदूषित जल के प्रयोग द्वारा मानव जाति में विभिन्न प्रकार की जानलेवा बीमारियाँ होने का खतरा बना रहता है । इनमें हैजा, तपेदिक, पीलिया,

अतिसार, मलेरिया, पीलिया आदि प्रमुख है । जल में कुछ भारी धातु होते है । जैसेः– पारा, कैडमियम इत्यादि । कैडमियम से दूषित जल के सेवन से मनुष्य के शरीर के जोडो व हड्डियों में अचानक पीड़ा उत्पन्न होती है, इसे इटाई–इटाई रोग कहते है ।

इसी तरह पारा एक प्रोटोप्लाजज्मिक जहर होता है जो मनुष्य के संचारण तंत्र में अवशोषित हो जाए तो लीवर, गुर्दो मसूड़ों और हड्डियो पर अपना कुप्रभाव डालता है । पारे के किसी भी योगिक की मात्रा शरीर के लिए हानिकारक है । पारायुक्त मछलियों के सेवन से मानव के शरीर में पारा पहुंच जाता है जो कि मिनिमाटा रोग का एक प्रमुख कारण है । प्रदूषित जल में प्रोटोजोआ की उपस्थिति के कारण अमीबियोसिस पेट दर्द, आंतो व आमाशय में संक्रमण की संभावना रहती हे । दूषित जल के संपर्क से चर्म रोग व नेत्र रोग होने की अधिक संभावना रहती हैं। जल में अधिक मात्रा में उपस्थित रसायन तथा अपशिष्ट पदार्थ विभिन्न प्रकार की बिमारियों को आमंत्रित करते है । राजस्थान में लगभग एक तिहाई बिमारियों का प्रमुख कारण प्रदूषित जल है । पलोराईड दंतक्षय व हड्डियों की विकृति का प्रमुख कारण है ।

17.6.3.1 फ्लोरोसिस (Fluorosis)

फ्लोरोसिस (Fluorosis) एक ऐसी बीमारी है जो शरीर के नरम (Soft) एवं कठोर (Hard) ऊत्तकों (Tissues) में फ्लोराईड के जमने के कारण होती है । डब्ल्यू.एच.ओ. (World Health organization) के अनुसार पीने के पानी में अगर 1.5 पी.पी.एम. से अधिक फ्लोराईड मानव शरीर में जाती है तो फ्लोरोसिस होने की संभावनाएं बढ जाती हैं । मानव शरीर में फ्लोरोसिस केवल फ्लोराईड से ही नहीं, बल्कि उसके साथ कई अन्य तत्वों के मिलने के कारण भी होता है ।

अकार्बनिक फ्लोराईडस अत्यन्त विषैले होते है । इनकी अधिक मात्रा से शरीर के वजन में कमी, दांतो के रोग व दांतो का क्षय, अंगों का असाधारण रूप से विस्तार एवं असामान्य आकार, जोडो का दर्द, हड्डियों का गलना व मुड़ना आदि विकृत रोग हो जाते है । जल में फ्लोराईडस की मात्रा 1.5 पीपीएम से अधिक होने पर यह शरीर पर विपरीत प्रभाव दिखाना शुरू कर देती है । यह अधिकतर भूमिगत जल के द्वारा ही मनुष्य के शरीर में पहुंचती है जिसके कारण दांतो का पीला होना, गलना, टेडे–मेडे होना, पीठ पर कुबड निकलना, शारीरिक ढांचा विकृत होना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते है । हड्डियों एवं दांतो की इन्हीं बीमारियों को फ्लोरासिस की संज्ञा दी गई है ।

फ्लोरोसिस न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में पाया जाता है । एशिया में यह भारत व चीन में बहुतायत में है । उत्तरी भारत में यह राजस्थान व गुजरात में, दक्षिणी भारत में आघ्र प्रदेश में इसकी बहुलता है। भारत में लगभग 177 जिलों में फ्लोराईड की सांद्रता 1.5 पी.पी.एम. से अधिक है । जिसके कारण स्वास्थ्य समस्याएं अधिकतर इन्हीं जिलों में ज्यादा प्रतिशत मात्रा में पाई जाती है । उक्त जिलों में फ्लोरोसिस एवं दांतों व हड्डियों की विभिन्न बीमारियों की बहुलता पाई जाती है । इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है । एक बार यदि पलोरोसिस हो जाये तो उसमें सुधार नहीं किया जा सकता है । लेकिन इस बीमारी को शरीर में होने से पहले रोका जा सकता है । जिसके लिये कुछ साधारण से तरीके हैं जो कि गांवों के स्तर पर भी अपनाये जा सकते हैं ।

17.6.3.2 ब्लू बेबी सिन्ड्रोम (Blue-Baby Syndrome)

ब्लूबेबी सिन्ड्रोम (Blue-Baby Syndrome) जिसको मिथेमोग्लोबिनेमिया (Methanoglobinemia) भी कहते हैं । इसका मुख्य कारण रूधिर का ऑक्सीजन न ग्रहण कर पाना है । जिसके कारण शरीर के विभिन्न अंगों तक ऑक्सीजन की सप्लाई नहीं होती है । यह बीमारी नाईट्रेट की अधिक सांद्रता वाले जल, सब्जियों या फलों के ग्रहण करने से हो सकती है । नाईट्रेट रूधिर में उपस्थित हिमोग्लोबिन के साथ किया करके मीथेनोग्लोबिन (Methanoglobin) बनाता है । जो कि शरीर के ऊतकों में ऑक्सीजन ले जाने में बाधा उत्पन्न करता है । जिसके कारण एसफेक्सिया अर्थात् ऑक्सीजन की कमी हो जाती है । यह बीमारी कई बार आनुवंशिक कारणों से भी होती है, जिसमें किसी विशेष एन्जाईम की कमी होने के कारण हिमोग्लोबिन में ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है ।

राजस्थान में मिथेमोग्लोबिनेमिया अधिकतर पानी में घुले तत्वों के कारण होता है क्योंकि राजस्थान शुष्क क्षेत्र (Arid Region) होने के कारण मनुष्य एवं पशु (Livestock) भूमिगत जल का ही अधिकतर उपयोग करते हैं । पीने के जल में यदि नाईट्रेटस की मात्रा अधिक हो तो यह शरीर में पहुच कर ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता को अवरूद्ध करती है, और रक्त में ऑक्सीजन की जगह घुल जाती है जिससे छोटे बच्चों का रक्त नील हो जाता है । कई बार रक्त में नाईट्रेट की सांद्रता अधिक होने पर शिशु की मृत्यु हो जाती है । क्योंकि शिशु के शरीर में रूधिर की मात्रा कम होती है इसलिए नाईट्रेट की सांद्रता बहुत जल्दी बढ जाती है और शरीर को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध नहीं हो पाती, जिससे शरीर नीला पड़ जाता है और शिशु मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।

10. दूषित जल से उत्पन्न होने वाले रोग है ?
    ....
    ....

11. दूषित जल में पारे के प्रयोग से मानव में होने वाला रोग हैं ?
    (अ) इटाई-- इटाई (ब) टाईफाईड
    (स) मलेरिया (द) एलिफेन्टाईटिस

12. पीने के जल में नाइट्रेट की मात्रा अधिक होने पर शिशुओं में होने वाला रोग ?
    (अ) ग्रीन बेबी सिन्ड्रोम (ब) ब्लू बेबी सिन्ड्रोम
    (स) रेड बेबी सिन्ड्रोम (द) ब्लेक बेबी सिन्ड्रोम

13. ध्वनि प्रदूषण से होने वाले रोग है ?
    (अ) सिरदर्द, अनिद्रा व बैचेनी (ब) डाएरिया व अमीबायोसिस
    (स) केन्सर व हेपेटाईटिस (द) टिटनेस एवं डिप्थीरिया

17.7 सारांश

जनसंख्या वृद्धि एक बहुआयामी समस्या है जिससे प्राकृतिक संसाधन, स्वास्थ्य, जीवन की गणुवजा इत्यादि सभी आयाम जुडे हुए है जैसे-जैसे जनसंख्या में बढोत्तरी हो रही हैं वैसे-वैसे मानव की जीवन की गुणवत्ता में कमी आई है । और प्राकृतिक संसाधनों का शोषण उनके पुन: चक्रण की

क्षमता से अधिक करना पड़ रहा है जो कि प्रकृति के विनाश का सुबक है । अगर इसी गति से हम बढते रहे तो वह दिन दूर नहीं जब प्राकृतिक प्रकोप ही हमारी जनसंख्या को कम करेंगे ।

17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (स),
2. (ब),
3. (स),
4. (ब),
5. (अ),
6. (अ),
7. (आयु एवं लिंगानुपात),
8. (द),
9. (द),
10. (इटाई– इटाई, हैजा, ब्लूबेबी सिन्ड्रोम, मलेरिया),
11. (अ),
12. (ब),
13. (अ)

17.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मनुष्यों में होने वाले जल वाहित रोगों के नाम लिखिए ?
2. ब्लू बेबी सिन्ड्रोम से आप क्या समझते है?
3. ध्वनि प्रदूषण किसे कहते है?
4. वायु प्रदूषण से मानव स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?
5. जनसंख्या में आयु एवं लिंग संरचना का महत्व बताईए?
6. जनसंख्या वितरण को जलवायु किस प्रकार प्रभावित करती है?
7. जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने वाले घटकों का संक्षेप में वर्णन कीजिए?
8. जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करने वाले कौन–कौनसे कारक है?
9. जनसंख्या विस्फोट पर एक टिप्पणी लिखिए?

17.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. वी.सी सिन्हा, पुष्पा सिन्हा – "जनांकिकी के सिद्धान्त", मयूर पेपरबेक्स
2. जय प्रकाश मिश्रा – "जनांकिकी के सिद्धान्त", साहित्य भवन पब्लिकेशन
3. एस.सी. श्रीवास्तव – "जनाकिकी अध्ययन के प्रारूप", हिमालय पब्लिशिंग हाऊस
4. गणेश,पाण्डेय एवं अरूणा पाण्डेय– "जनसंख्यात्मक अध्ययन" राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

इकाई –18

पर्यावरण सम्बन्धी आन्दोलन

ENVIRONMENTALMOVEMENT

इकाई का रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 खेजड़ली आन्दोलन

18.3. चिपको आन्दोलन

18.3.1 वर्तमान चिपको आन्दोलन

18.3.2 चिपको आन्दोलन के उद्देश्य

18.3.3 उपसंहार

बोध प्रश्न

18.4 टिहरी बांध

18.4.1 टिहरी बांध की भौगोलिक स्थिति

18.4.2 टिहरी बांध के लक्ष्य

18.5 नर्मदा परियोजना

18.5.1 सरदार सरोवर बांध

18.5.2 पुर्नवास हेतु प्रयत्न

18.5.3 नर्मदा बचाओ आन्दोलन

18.5.4 परिणाम

18.5.5 उपाय

बोध प्रश्न

18.6 सारांश

18.7 शब्दावली

18.8 संदर्भ–ग्रन्थ

18.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

18. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे कि –

1. भारत में पर्यावरण से सम्बन्धित कौन–कौन से आन्दोलन हुए ।
2. खेजड़ली, चिपको आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन क्यों हुए, उनका प्रभाव तथा यह आन्दोलन क्यों महत्वपूर्ण है?

3. वर्तमान में पर्यावरण की दृष्टि से इन आन्दोलनों का समाज में क्या योगदान है?

18.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । स्वच्छ पर्यावरण किसी भी समाज की महत्ती आवश्यकता है । स्वच्छ पर्यावरण के साथ मानव जीवन, स्वास्थ एवं उसका विकास जुडा हुआ है । पर्यावरण की शुद्धता इसके सभी घटकों जैसे– वायु, जल व मृदा की शुद्धता से सम्बन्धित है । पर्यावरण एवं औद्योगिक विकास होने में सामजस्य बनाये रखने की आवश्यकता है । आज विकास विनाश का कारण बन गया है जिससे पर्यावरण के सभी घटकों को क्षति पहुंची है । जब कानून व्यवस्था के द्वारा पर्यावरण का दोहन नहीं रूकता तथा प्रभावी नियंत्रण नहीं होता एवं समस्या का समाधान नहीं होने के कारण समस्या विकराल रूप धारण कर लेती हैं तथा जन समुदाय पर्यावरण समस्या के निवारण हेतु जब आन्दोलन के द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान करवाने के लिये उग्र रूप धारण करता हैं । इसे ही जन आन्दोलन कहा जाता हैं इनका अध्ययन आज के संदर्भ में अति आवश्यक हैं ।

यद्यपि जल, भूमि, वायु आदि सभी प्रदूषित हो चुके हैं । फिर भी मानव की असंयमित व अविवेकशील विकास यात्रा सतत् जारी है । उत्तोतर मानव विकास एवं पर्यावरण संरक्षण के बीच सामंजस्य समाप्त हो गया है । पर्यावरणविद निरन्तर सचेत कर रहे है, कि यदि इसी तरह प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन किया जाता रहा तो पर्यावरण एवं परिरिथतिकी में संतुलन के गंभीर संकट का सामना करना पड़ सकता है । इन सबके उपरान्त भी कुछ इस प्रकार के प्रयोग व जन आन्दोलन चल रहे है जो पर्यावरण एवं परिस्थिति तंत्र में संतुलन बनाये रखने में अपनी सार्थक भूमिका निभा रहे है । इनमें से कुछ सफल ऐतिहासिक महत्व के आन्दोलनों का वर्णन इस प्रकार है –

18.2 खेजड़ली आन्दोलन

वृक्षों की अंधाधुन्ध कटाई के विरूद्ध प्रथम जन आन्दोलन का उदय राजस्थान के खेजडली ग्राम में जो जोधपुर से 25 कि.मी. दूर है, 1731 में हुआ । इस ग्राम व उसके आस–पास के क्षेत्र में विश्नोई जाति की बहुलता है । इस ग्राम की संस्कृति के आधार (20+9) सूत्र है जिनमें से एक महत्वपूर्ण सूत्र वृक्षों की रक्षा 'करना है ।

खेजड़ली ग्राम से जलाने की लकड़ी प्राप्त करने के लिए जोधपुर के तत्कालीन महाराजा द्वारा आदेश दिये गये । इस आदेश के तहत वृक्षों के काटे जाने के विरोध में एक साहसी महिला अमृता देवी के नेतृत्व में आन्दोलन छेड़ा गया ।

इस आन्दोलन में विश्नोई समुदाय के 363 सदस्य जो कि अपने प्रिय खेजड़ी के वृक्षों को बचाने के लिए इनसे चिपक गये, वृक्षों के साथ ही काट दिये गये । इन 363 विश्नोइओं में अमृता देवी के पति रामोजी तथा उनकी तीन पुत्रियां भी सम्मलित थी । राजस्थान के खेजडली ग्राम में वृक्षों की कटाई के विरूद्ध हुए इस आन्दोलन को प्राकृतिक वनस्पति के संरक्षण की दिशा में एक चिंगारी कह सकते है । वर्तमान में राज्य सरकार ने खेजड़ी वृक्ष को राज्य वृक्ष घोषित कर विश्नोइयों के बलिदान के सम्मान देने का प्रयास किया है ।

18.3 चिपको आन्दोलन

उत्तर प्रदेश में टिहरी गढ़वाल के ग्रामीण क्षेत्र में प्राकृतिक वन सम्पदा के संरक्षण के लिये 1972 में एक आन्दोलन आरम्भ हुआ । चूंकी इस आन्दोलन के अन्तर्गत स्थानीय निवासियों द्वारा वृक्षों से चिपककर (लिपटकर) उनके काटे जाने के विरूद्ध एक संघर्ष का आदवान किया गया था । अत: इस आन्दोलन को चिपको आन्दोलन नाम दिया गया है ।

18.3.1 वर्तमान चिपको आन्दोलन

वर्तमान स्वरूप में चिपको आन्दोलन का प्रारम्भ नवसृजित उत्तराखण्ड राज्य के चमोली जिले के गोपेश्वर नामक नगर की सीमाओं में स्थित मण्डल नामक ग्राम में 27 मार्च, 1973 को हुआ जब तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा एक खेलकूद की सामग्री बनाने वाली इलाहाबाद की साइमन कम्पनी को अंगू (Ash) के पेड़ काटने की इजाजत दी गई । वहां के स्थानीय निवासियों ने एक रबर में कहा, "यदि पेड़ काटने के लिये कोई आएगा तो हम पेडों से चिपक कर उनकी रक्षा करेगें । " चिपको आन्दोलन के प्रणेता वर्तमान में टिहरी आन्दोलन के जनक श्री सुन्दरलाल बहुगुणा तथा चण्डीप्रसाद भट्ट रहे है।

हिमालय क्षेत्र में वनों की कटाई को रोकने की दिशा में 1972 में प्रथम संगठित आन्दोलन, चमोली गढ़वाल क्षेत्र की महिला गौरा देवी के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ । इसके फलस्वरूप सरकार को अलकनंदा के 1300 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र को संवेदनशील घोषित करते हुए दस वर्षो के लिए वृक्षों की कटाई पर रोक लगानी पड़ी ।

अत: चिपको आन्दोलन जो आज बदलती पारिस्थितिकीय (Ecological) संदर्भो में पर्यावरण की अन्तर्राष्ट्रीय आवाज बन चुका है, चमोली गढ़वाल क्षेत्र की ही देन है ।

इस प्रकार 1731 की अमृता देवी व 1972 की गौरा देवी के रूप में चिपको आन्दोलन में महिलाओं का योगदान भारत देश में सर्वोपरि रहा है व इन्होंने हमारे देश को गौरवान्वित किया है ।

18.8.2 चिपको आन्दोलन के उद्देश्य

चिपको आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है –

(क) वनों की अन्धाधुंध कटाई को रोकना ।

(ख) पारिस्थितिकीय सन्तुलन बनाये रखने के लिये अत्यधिक वृक्षारोपण करना ।

(ग) वनों की कटाई रोकना ।

वनों के प्रति लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए विशेष सुरक्षा तथा आत्मनिर्भरता हेतु वृक्षों की भूमिका को जन–जन में फैलाने के लिये चिपको आन्दोलन कार्यकर्ताओं द्वारा पद यात्राएं की जाती है तथा शिविर लगाये जाते है । इन शिविरों के माध्यम से ग्रामीणों को वनों व पर्यावरण संरक्षण के महत्व के बारे में बताया जाता है ।

ग्रामीण विकास हेतु चिपको आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य है –

1. व्यावसायिक महत्व वाले वृक्षों की तुलना में पर्यावरणीय महत्व वाले वृक्षों का अधिक रोपण करना।
2. सामाजिक वानिकी तथा कृषि वानिकी का विकास करना ।
3. पारिस्थितिकीय सन्तुलन बनाये रखने के लिए बड़े बांधों के निर्माण का विरोध करना ।
4. आर्थिक विकास के लिये फलदार वृक्षों को उगाना ।

चिपको आन्दोलन की तर्ज पर ही कर्नाटक में याण्डुरंग हेगडे के नेतृत्व में एप्पिको आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है । कन्नड भाषा में एप्पिको का अर्थ है चिपको । चिपको आन्दोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि है जनमानस में वृक्षों के संरक्षण के प्रति चेतना का जागृत होना ।

सन् 1977 में चिपको आन्दोलन के कार्यकर्ताओं ने घोषणा की कि वनों के मुख्य उत्पाद 'लकड़ी नहीं बल्कि मृदा, जल व आक्सीजन है । टिहरी गढ़वाल क्षेत्र की महिलाओं ने एक नारा दिया है जिसे चिपको नारा कहते है । यह नारा इस प्रकार है -

"क्या है जंगल के उपचार ? मिट्टी पानी और बयार

मिट्टी, पानी और बयार, जिन्दा रेहने के आधार ।"

श्री बहुगुणा ने सन् 1982 में यू.एन.ई.पी. का लन्दन में हुई बैठक में हिमालय क्षेत्र में वनों की कटाई पर रोक लगाने के माध्यम से जल तथा मृदा के संरक्षण के लिये योजना प्रस्तुत की । ऊंची भूमि को भूस्खलन से बचाने तथा घाटी के लोगों को बाढ़ से बचाने के रूप में पहाड़ियों में प्रत्येक वृक्ष की बहुत बड़ी आर्थिक भूमिका होती है । चिपको आन्दोलन का वास्तविक उद्देश्य पांच एफ वाले 'वृक्षों का वृक्षारोपण करना है । पांच एफ का अर्थ है– (Food) भोजन, (Fodder) चारा, (Fuel) ईधन, (Fertilizer) खाद तथा (Fibres) रेशेवाले पौधों का वृक्षारोपण, जिससे मानव समुदाय अपनी मूलभूत आवश्कताओं के लिये आत्मनिर्भर हो सके । साथ ही मृदा व जल के ह्रास को भी रोका जा सके ।

18.3.3 उपसंहार

प्रख्यात कृषि वैज्ञानिक डॉ.एम.एस. स्वामीनाथन के शब्दों में चिपको आन्दोलन एक प्रत्यक्ष दर्शन है, एक जीवन्त विचार है ।

सुन्दरलाल बहुगुणा के अनुसार चिपको केवल हिमालय की समस्या नहीं है, वरन् समस्त मानव जाति की समस्याओं का उत्तर है । अत: प्रत्येक व्यक्ति का यह दायित्व है कि वह अपने आस–पास के पेड़ों की रक्षा करें तथा नये वृक्ष लगाकर पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान करने में अपना सशस्त योगदान करे ।

बोध प्रश्न - बहुचयानात्मक प्रश्न ''सही विकल्प चुनिये ।''

प्र0 1 खेजड़ली के बलिदान से सम्बन्धित है ?

(अ) बाबा आम्टे (ब) अरून्धती राय

(स) अमृतादेवी (द) उपरोक्त सभी ( )

प्र0 2 चिपको आन्दोलन से सम्बन्धित है ?

(अ) महात्मा गांधी (ब) सुन्दरलाल बहुगुणा

(स) मेघा पाटकर (द) कोई नहीं ( )

प्र0 3 खेजड़ली ग्राम किस राज्य में स्थित है ?

(अ) राजस्थान (ब) गुजरात

(स) उत्तराखंड (द) मध्यप्रदेश ( )

प्र0 4 कर्नाटक के चिपको आन्दोलन का नाम है ?

(अ) एप्पिको आन्दोलन (ब) शान्त घाटी

(स) सरदार सरोवर (द) नर्मदा बचाओ आन्दोलन ( )

18.4 टिहरी बांध

भारत सबसे अधिक बांध बनाने वाले देशों में अग्रणी है । एक गणना (Estimation) के अनुसार भारत में बड़े-बड़े बांध बनने के कारण लगभग 37,500 वर्ग कि.मी. भूमि (स्वीट्जरलैण्ड के बराबर) डूब क्षेत्र में आ गई है । लाखों लोग इसके कारण विस्थापित हो चुके है ।

इन दो महत्वपूर्ण कारणों की वजह से यहां बसने वाले लोग इन बांधों को लेकर आन्दोलन कर रहे है ।

18.4.1 भौगोलिक स्थिति --

उत्तराखंड के गढ़वाल हिमालय क्षेत्र में भागीरथी नदी पर टिहरी बांध बनाने की स्वीकृति योजना आयोग द्वारा 1972 में प्रदान की गई । यह बांध विश्व में 5वां सबसे बड़ा बांध है । प्रारम्भिक अनुमानों के अनुसार परियोजना से 600 मेगावाट विद्युत उत्पादन तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 2.7 लाख हैक्टेयर में कृषि सिंचाई का लक्ष्य रखा गया ।

यह बांध बनने के बाद पुराना टिहरी कस्बा और 112 गांव जलमग्न हो जाएंगे । जिसकी वजह से लगभग 1,00,000 लोग विस्थापित हो जाएंगे ।

टिहरी बांध भागीरथी नदी पर बना है व इससे हिन्दुओं की आस्था जुड़ी है । इस बांध की वजह से भागीरथी नदी का पानी केवल 0.2 प्रतिशत ही (1000ft3/s) नीचे आकर अलकनंदा नदी से मिलेगा और हिन्दू अवधारणा के अनुसार भागीरथी नदी ही गंगा नदी है । इसे गंगा नाम अलकनंदा के साथ देवप्रयाग में मिलने के बाद ही दिया गया ।

18.4.2 टिहरी बांध के लक्ष्य

कृषि उत्पादन में वृद्धि, लोगों के जीवन स्तर में सुधार रोजगार के अवसरों में वृद्धि, शुद्ध पेयजल की उपलब्धता, विद्युत उत्पादन आदि योजना के प्रारम्भिक लक्ष्य निर्धारित किए गए । इन लक्ष्यों का प्रभाव इन रूपों में देखा जा सकता है–

1. एक विशाल भू–भाग में पीने तथा अन्य घरेलू कार्यो हेतु नहरी पानी की उपलब्धता
2. नहरी क्षेत्रों में अधिक फसलें उगाना
3. क्षेत्र का तीव्र औद्योगिक विकास
4. निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों का तीव्र विकास
5. लोगों के सामाजिक–आर्थिक स्तर में परिवर्तन
6. लोगों की आय में वृद्धि, जिसका परिणाम उनकी जीवन–शैली, शिक्षा तथा व्यवहार में परिलक्षित होगा ।
7. कृषि तकनीक में सुधार
8. क्षेत्रीय लोगों के सामाजिक संबंधों में गतिशीलता
9. भूगर्भीय जल की गुणवत्ता में सुधार
10. उत्पादकता में वृद्धि

परियोजना का विरोध करने वाले पर्यावरणविदों की दृष्टि में उपर्युक्त लाभ बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत किए गए है । उनकी दृष्टि में तटस्थ दृष्टि से विचार करने पर यह परियोजना गंभीर चुनौतियों से भरी दिखाई देती है

1. यद्यपि बांध निर्माण भूकम्परोधी तकनीक पर आधारित है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि हिमालय क्षेत्र नई परतदार चट्टानों से निर्मित है तथा भूगर्भीय गतिविधियों की दृष्टि से बहुत संवदेनशील है । इन भूगर्भीय हलचलों का पूर्वानुमान लगा पाना संभव नहीं है । इसलिए इस परियोजना की सुरक्षा के लिए हमेशा खतरा बना रखेगा । इस खतरे में अपार जन-धन की हानि की आशंका छिपी हुई है ।
2. हिमालय क्षेत्र अत्याधिक भूस्खलन तथा भूमि कटाव का क्षेत्र है जिससे बांध के पैंदे में बहुत जल्दी मिट्टी भर जाएगी जिससे लम्बि अवधि तक योजना का लाभ नहीं मिल पाएगा ।
3. भूस्खलन, चट्टानों के गिरने तथा नदी मार्गो में आकस्मिक प्राकृतिक अवरोधों के कारण बांध की सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लगते है ।
4. इस विशाल बांध के कारण सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्र की जलवायु, पर्यावरणीय संतुलन, वनस्पति तथा जीव-जंगल पर व्यापक विपरीत पडेगा ।
5. वृहद् स्तर पर मानव तथा पशुओं का विस्थापन होगा जिनका पुनर्वास करना जटिल काम है ।
6. नहरों के पैदे में गाद–जमाव, कृषि भूमि में जल–भराव, कृषि रसायनों में वृद्धि, औद्योगिकरण के फलस्वरूप वायु, जल तथा भूमि प्रदूषण में वृद्धि आदि अन्य कुप्रभाव उत्पन्न होगें ।
7. योजना का विरोध करने वालों का एक बड़ा तर्क यह है कि परियोजना की रूपरेखा में ही खामियां है । दूसरा यह परिणाम है कि परियोजना का विद्युत उत्पादन लक्ष्य 1972 के 600 मेगावाट से चार गुना बढ़ाकर 1986 में 2400 मेगावाट कर दिया गया, जो योजनाकारों की निर्णय लेने की कमजोरी को इंगित करता है ।

सुन्दरलाल बहुगुणा के शब्दों में "यह ऐसा बांध है जो हमारे आसूओं से बनाया जाता है ।"

18.5 नर्मदा परियोजना

प्रस्तावना– नर्मदा या नरबुदा मध्य भारत में बहने वाली नदी है । यह नदी उत्तरी व दक्षिणी भारत की Traditional Boundary बनाती है । यह 1289 किमी लम्बी है । यह उन तीन नदियों में से एक है जो पूरब (East) से पश्चिम (West) की तरफ बहती है । यह मध्यप्रदेश के अमरकंटक स्थान से निकलती है जो सतपुडा पहाड़ियों पर स्थित है । यह नदी जबलपुर के पास (Marble Rock) भेडाघाट का प्रसिद्ध जलप्रपात बनाती है । यह मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र व गुजरात में भरूच जिले से बहती हुई अरब सागर में जाकर मिलती है । यह नदी हिन्दुओं के धार्मिक आस्था से भी जुडी है ।

18.5.1 सरदार सरोवर बांध

1947 में नर्मदा घाटी विकास परियोजना का गठन, नर्मदा नदी पर 30 बड़े, 135 मझोलें और 3000 छोटे बांध बनाने के लिए पं. जवाहरलाल नेहरू के समय किया गया । 1961 में इस पर कार्य शुरू हुआ । मध्यवर्ती-पश्चिमी भारत में बनने वाली यह परियोजना अब तक की सबसे बड़ी विकास

परियोजना है । जिसे पूर्ण होने में सौ वर्ष लगेगे । इन बांधों में से 5 बांधों से 2750 मेगावाट बिजली उत्पन्न की जाएगी और इससे विस्तृत क्षेत्र में सिंचाई सुविधा उपलब्ध होगी ।

किन्तु 1987 में 41,500 परिवारों के विस्थापित होने की आशंका से नर्मदा बचाओ आंदोलन का गठन हुआ, जिसके नेता थे मेघा पाटकर व बाबा आम्टे ।

बांध के विरोध में हरसुर शहर (जो अब डूब चुका है) में 50 हजार लोग नर्मदा सरोवर परियोजना के विरोध में इकट्ठा हुए । 1995 में सुप्रीम कोर्ट ने नर्मदा बांध का काम रोकने का फैसला दिया । इसी घटनाक्रम में 31 मई 1995 को मेघा पाटकर सहित 500 लोगों को मध्यप्रदेश पुलिस ने गिरफ्तार किया।

कई घनटाक्रमों के बाद 17 अप्रैल 2006 को सुप्रीम कोर्ट द्वारा नर्मदा बांध पर काम जारी रखने और विस्थापिनों के पुर्नवास का काम 3 महीने में पूरा करने का निर्देश दिया गया ।

18.5.2 पुर्नवास

नर्मदा बचाओ आन्दोलन बांध निर्माण के कारण विस्थापित होने वाले लोगों के राहत एवं पुनर्वास को पहले जरूरी मानता है और इसलिये बांध की ऊंचाई बढाने के नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण के 8 मार्च के फैसले पर रोक लगाने की मांग कर रहा है ।

पुर्नवास को लेकर हो रही इस लडाई में आंदोलनकारियों का कहना है कि पिछले 45 वर्षो में अब तक कई हजार परिवारों को मुआवजा नहीं मिला है । परियोजना के कारण विस्थापित होने वाले गांवों की संख्या लगभग 245 है । इनमें से कुछ पहले ही जल समाधि ले चुके है बाकि बांध की ऊंचाई बढाने पर जलमग्न हो जाएगें । इन गांवों में 19 गुजरात, 33 महाराष्ट्र में और 193 मध्यप्रदेश में स्थित है ।

बांध निर्माण अधिकारियों के अनुसार अब तक 1.5 लाख हेक्टेयर भूमि इस परियोजना से सिंची जा चुकी है ।

यदि मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान को नर्मदा जल से लाभान्वित होना है और नर्मदा घाटी परियोजना की लक्षित मेगावाट क्षमता को प्राप्त करना है तो हजारों लोगों को अपने पुरखों का घर छोड़ना होगा और विस्थापन का दंश झेलना ही पड़ेगा ।

18.5.3 नर्मदा बचाओं आन्दोलन --

पिछले 5–7 वर्षा में नर्मदा नदी पर 30 भीमकाय बांध बनाने की योजना बनाई गई है जिनमें से निर्माणाधीन दो मुख्य बांधों– गुजरात के भडौच जिले में सरदार सरोवर परियोजना तथा मध्यप्रदेश के खंडवा जिले में इन्दिरा सागर परियोजना ने नर्मदा घाटी के जन-सामान्य में जबरदस्त संघर्ष खडा कर दिया है । इसी उपलब्धि का परिणाम है- नर्मदा बचाओ आन्दोलन । इस आन्दोलन के नेता बाबा आम्टे ने गुजरात और मध्यप्रदेश में इन परियोजनाओं के विरूद्ध न्यायिक वाद दायर कर रखे है ।

इन परियोजनाओं से होने वाले हानियों को पर्यावरण तथा वन मंत्रालय द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट से जाना जा सकता है । इस रिपोर्ट के अनुसार इन्दिरा सागर से 20923 करोड़ रूपये तथा नर्मदा सागर से 8190 करोड़ रूपये मूल्य की पर्यावरणीय क्षति केवल वन–विनाश से होगी । अत: वन मंत्रालय द्वारा गठित वन संरक्षण सलाहकार समिति ने जनवरी 1990 में यह राय दी कि इन परियोजनाओं पर कार्य तुरन्त रोक दिया जाए क्योंकि इन्होंने मंत्रालय के दिशा–निर्देशों का उल्लंघन किया है । समिति ने यह भी कहा कि 80 मिलियन पेड़ों की कटाई के कारण क्षेत्र का पारिस्थितिकीय संतुलन गंभीर रूप

से प्रभावित होगा, जलवायु बदल जाएगी, वर्षा–चक्र गड़बड़ा जाएगा तथा वायु में ऑक्सीजन की मात्रा घट जाएगी । अन्य आँकडों के अनुसार इन परियोजनाओं से लगभग 130482 हैक्टेयर जमीन जिसमें से 55681 हैक्टेयर उपजाऊ कृषि भूमि तथा 56066 हैक्टेयर वन भूमि है, जलमग्न हो जाएगी । इस जलमग्न भूमि के अतिरिक्त विस्थापितों के पुनर्वास तथा विशाल पशुधन हेतु चारागाहों के रूप में अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता पड़ेगी ।

18.5.4 परिणाम

उपर्युक्त दुष्परिणामों से बचने हेतु नर्मदा बचाओ आन्दोलन ने विभिन्न क्षेत्रों के अनुभवी विद्वानों के सहयोग से जल तथा ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक विस्तृत वैकल्पिक रणनीति की कार्य योजना प्रस्तुत की है । तद्नुसार आन्दोलन गुजरात, महाराष्ट्र तथा मध्यप्रदेश की ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वैकल्पिक ऊर्जा की रूपरेखा पर कार्य कर रहा है । इस रूपरेखा के अनुसार अपनाये गये उपायों जैसे ऊर्जा संरक्षण की विधियां, विकेन्द्रीकृत ऊर्जा उत्पादन और केन्द्रीकृत गैर परियोजना आदि विभिन्न उपायों के समन्वय द्वारा उपभोक्ताओं को बहुत सस्ती दर पर ऊर्जा उपलब्ध कराई जा सकती है । इसी प्रकार पानी की उपलब्धता के लिए आन्दोलन की रणनीति का जोर इस बात पर है कि जल संरक्षण को बढ़ावा दिया जाए; तेजी से घट रहे जल स्त्रोतों में भूमिगत जल स्तर बढ़ाने तथा नदियों में वर्ष पर्यन्त पानी की अच्छी आवक बनाए रखने हेतु बडे पैमाने पर लघु जलाशयों का निर्माण किया जाए । ये लघु जलाशय अल्प लागत के साथ–साथ पर्यावरण के लिए भी होगे । ये योजनाऐं स्थानीय लाभान्वितों के पास्परिक सहयोग से कम समय में बनाई जा सकती है । इस तरह अनेक छोटी परियोजनाएं देश के अन्य भागों के लाग की गई है जो बहुत अच्छे परिणाम दे रही है।

किन्तु वास्तविकता यह है कि अब तक इस विवाद का कोई उचित समाधान नहीं हो पाया है । परियोजना पर कार्य न तो रोका गया है और न इसमें बदलाव किया गया है जिस कारण भविष्य में किसी बड़े संघर्ष से इन्कार नहीं किया जा सकता है ।

इन दो विशाल बांधों के भविष्य में गंभीर परिणाम हो सकते हैं । नर्मदा सागर जितनी भूमि की सिंचाई करेगा उससे अधिक भूमि को जलमग्न कर देगा । साथ ही इस क्षेत्र में निवास करने वाली साठ जनजातियों को विस्थापित करना पडेगा । ये आदिवासी मूलत: कृषि, मत्स्य तथा वनोपज पर आश्रित है । इनमें से अधिकांश आदिवासियों के पास स्वयं की भूमि नहीं है । अत: इन्हें सरकार से भूमि के बदले मुआवजा भी नहीं मिलेगा । इसलिए इन बांधों से विस्थापित होने वाली लगभग 10 लाख लोगों का पुर्नवास एक जटिल समस्या है क्योंकि अधिकांश उपजाऊ जमीन पहले से ही काम में आ रही है । भारत सरकार इन बांधों से 1 करोड़ 15 लाख किसानों को सिंचाई व बिजली का लाभ प्राप्त होने की बात कहती है किन्तु बांध का विरोध करने वाले आन्दोलनकारियों की उपेक्षा करती है ।

18.5.5 उपाय

1. सामाजिक चेतना

इन इकाई में सर्वप्रथम पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं से सरकार जनता दोनों को जागरूक करना है । पर्यावरण सम्बन्धी मामलों और समस्याओं के प्रति चेतना बढ़ाने के कई उपाय करने है । इन उपायों से स्कूलों एवं कॉलेजों में विद्यार्थियों की औपचारिक शिक्षा, आम जनता के लिए रेडियो,

दूरदर्शन, समाचार पत्र आदि जैसे प्रचार साधनों का उपयोग और पर्यावरण प्रबन्ध के क्षेत्र में, काम कर रहे कार्यकर्ताओं के माध्यम से जागरूकता उत्पन्न की जा सकती है ।

पर्यावरण के विषय से सामाजिक चेतना एक अभिनव घटना है । प्रारम्भ में इसके सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक व प्रौद्योगिक पहलू भी शामिल है । सन् 1950 से पर्यावरण के विषय में चेतना उत्पन्न करने के सीमित प्रयास किये गये । इससे समस्त वर्ग में चेतना अवश्य आई परन्तु यह जन आन्दोलन नहीं बन सका । पर्यावरण सम्बन्धी संसाधनों के संरक्षण हेतु पर्यावरण चेतना आवश्यक हैं।

बोध प्रश्न

प्र0 1 टिहरी बांध कहां व किस नदी पर स्थित है ?

प्र0 2 भागीरथी व अलकनन्दा मिलकर कौनसी नदी कहलाती है ?

प्र0 3 नर्मदा नदी की लम्बाई कितनी है तथा यह कहां से निकलती है ?

प्र0 4 नर्मदा घाटी विकास परियोजना का गठन कब किया गया ?'

प्र0 5 नर्मदा बचाओ आन्दोलन के नेता कौन--कौन है ?

18.6 सारांश (Summary)

1. भारत में पर्यावरण सम्बन्धी आन्दोलन का उद्भव जन जागृति व जन चेतना के माध्यम से हुआ है तथा ये जन आन्दोलन पारिस्थिति तंत्र में संतुलन बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं ।
2. प्राचीनकाल से ही भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु कई आन्दोलन हुए जिसमें खेजड़ली के बलिदान के पश्चात् 1973 में उतराखण्ड में महिलाओं ने वृक्षों की सुरक्षा हेतु चिपको आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसे सुन्दरलाल बहुगुणा ने आगे बढ़ाया ।
3. इसी प्रकार का आन्दोलन कर्नाटक में चला जिसका नाम एप्पिको था ।
4. खेजड़ली का बलिदान वनों की सुरक्षा के लिये आदर्श है तथा प्रेरणा देते हैं । चिपको आन्दोलन की जड़ें राजस्थान में हैं । वर्तमान में इस आन्दोलन को वनों के ठेकेदारों, उद्योगपतियों और उनके साथ देने वाली प्रशासनिक शक्तियों के संगठित विरोध का सामना करना पड़ रहा है ।
5. विश्व के 20 प्रतिशत लोग सुरक्षित पेयजल से वंचित हैं, इनमें से आधे से अधिक लोग चीन या भारत में रह रहे हैं विश्व पेयजल रिपोर्ट में कहा गया है ग्रामीण अंचल से शहरों की ओर आबादी इस तरह अग्रसर हो रही है कि सन् 2030 तक यह दुनिया की कुल आबादी की दो तिहाई हो जायेगी इससे शहरों में पानी की मांग बढने से पेयजल संकट भी विकराल रूप ले लेगा ।
6. पेयजल समस्या समाधान हेतु विभिन्न विकास परियोजनाएं टिहरी बांध, नर्बदा घाटी परियोजना इत्यादि बनाई गई जिसके कई लाभ भी हैं । अत: विस्थापित होने वाले लोगों व इनसे होने वाली पर्यावरणीय हानियों को ध्यान में रखते हुए विकास योजनाओं का क्रियांवयन करना होगा ।
7. नर्मदा योजना में दो बांधों का निर्माण किया गया है । (1) नर्मदा सागर का निर्माण मध्य प्रदेश के खंडवा में व (2) सरदार सरोवर बांध का निर्माण गुजरात के भड़ौच गांव में किया गया ।
8. इन बांधों के निर्माण से विस्थापितों के पुर्नवास की विकट समस्या हेतु मेघा पाटकर व बाबा आम्टे ने आन्दोलन किया जिसे नर्मदा बचाओ आन्दोलन का नाम दिया गया । अत: ऐसी परियोजनाओं

की स्वीकृति से पूर्व पर्यावरण पर प्रभाव पारिस्थितिकीय साक्ष्य पर प्रभाव, पुर्नवास की समस्या आदि पर सूक्ष्म रूप से चिन्तन करने की आवश्यकता है ।

18.7 शब्दावली

(1) पुर्नवास (Rehabilitation)

(2) पर्यावरण (Environment)

(3) बांध (Dam)

(4) विस्थापन (Resettlement)

(5) सामाजिक आन्दोलन (Social Movement)

(6) जलग्रहण प्रबन्ध (Watershed Management)

(7) आन्दोलन (Movement)

(8) पर्यावरणीय समस्याएं (Environment Problem)

चारा	–	Fodder
ईधन	–	Fuel
खाद	–	Fertilizer
रेशे	–	Fibre
गणना	–	Estimation

18.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. Sharma P.D. - Ecology and Environment
2. Shivaji Roa T - Tehri Dam a boom or Curse for India
3. गुर्जर रामकुमार जाट बी.सी. - पर्यावरण अध्ययन
4. बाकरे, बाकरे तथा वाधवा - पर्यावरणीय अध्ययन
5. रघुवंशी अरूण व रधुवंशी चन्द्र लेखा - पर्यावरण प्रदूषण
6. वर्मा, गेना, रावत - पर्यावरण अध्ययन
7. बांधनामा - समसामयिकी जून 2006

18.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बहु चयनात्मक प्रश्न –

   (1) स (2) ब (3) अ (4) अ

2. (1) भागीरथी व गंगा - गढ़वाल उत्तरांचल

   (2) गंगा

   (3) (3)1,289 किमी व अमरकंटक

   (4) सन् 1947

   (5) मेघा पाटकर व बाबा आम्टे

18.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 चिपको आन्दोलन पर एक लेख लिखिए ।

प्रश्न 2 नर्मदा घाटी परियोजना के लक्ष्य कौन–कौन से है?

प्रश्न 3 यह एक ऐसा बाँध है जो हमारे आंसुओं से बनाया गया है ।" इस वाक्य की सार्थकता पर प्रकाश डालिये ।

प्रश्न 4 'पुनर्वास' पर एक लेख लिखिए ।

प्रश्न 5 बाँधों व नदी घाटी परियोजनाओं पर लेख लिखिये ।

ISBN : 13/978-81-8496-083-9